Impact Factor : 7.834

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा पटियाला, श्रीगंगानगर व नेपाल से प्रसारित
साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

ISSN : 2321-8037
May-June 2025
Volume 13, Issue 5-6

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Editor :
Dr. Rekha Soni

Chief-Editor :
Dr. Naresh Sihag Adv.

संस्थापक सम्पादिका :
स्मृति शेष
डॉ. विश्वकीर्ति

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

www.ginajournal.com

संस्थापक संरक्षक :
स्मृति शेष
श्री हरविन्द्र कमल चौधरी

वर्ष : 13 | अंक : 5 – 6 | मई – जून : 2025 | आईएसएसएन : 2321 – 8037

सम्पादक :
डॉ. रेखा सोनी
शिक्षा विभाग, टांटिया वि.वि.,
श्रीगंगानगर – 335001 (राज.)

प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सचिव, गीना देवी शोध संस्थान,
भिवानी (हरियाणा)

मार्गदर्शन :
डॉ. राजेन्द्र गोदारा
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. लक्ष्मी जोशी
त्रिभुवन वि.वि. काठमाण्डू।

डॉ. सृष्टि चौधरी
लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स
एंड कम्युनिकेशन,
सरकारी पॉलिटेक्निक कॉलेज फॉर
गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।

श्री श्रेष्ठ चौधरी,
सीनियर मैनेजर,
स्टेट बैंक ऑफ इंडिया,
साहिबजादा अजित सिंह नगर,
मोहाली, पंजाब।

कानूनी सलाहकार :
डॉ. रामफल दलाल एडवोकेट,
श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट

सलाहाकार समिति (Advisory Committee)

डॉ. सुलक्षणा अहलावत
अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
नूंह (हरियाणा)

डॉ. अरूणा अंचल
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. सुशीला
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी।

डॉ. अल्पना शर्मा
आईएएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर

डॉ. विजय महादेव गाडे
बाबा साहेब चितले महाविद्यालय
भिलवडी (महाराष्ट्र)

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कॉलेज
धारवाड़ (कर्नाटक)

डॉ. रीना कुमारी
दशमेश गर्ल्स कॉलेज,
अल्ला बक्श, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

श्री हेमराज न्यौपाने
नेपाल।

डॉ. ममता तनेजा
अबोहर, पंजाब।

डॉ. प्रियंका खंडेलवाल
बराण, राजस्थान।

डॉ. संदीप
ओम विश्वविद्यालय, हिसार।

प्रो. मधुबाला
राजकीय महिला महाविद्यालय, हिसार।

डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी
जगद्गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग
विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तरप्रदेश

डॉ. हवासिंह ढाका
राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत प्रवक्ता, शिक्षा विभाग हरियाणा

डॉ. राजेश शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मोहिनी दहिया
माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय,
सूरतगढ़ (राजस्थान)

डॉ. मुद्दस्सिर अहमद भट्ट
हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, कश्मीर

डॉ. सीहेच वी. महालक्ष्मी
सीहेच एसडीएसटी थेरेसा महिला
महाविद्यालय, एलुरू, आंध्र प्रदेश

डॉ. मोरवे रोशन के.
यूनाईटिड किंगडम।

डॉ. अनुपमा, पूर्व प्रोफेसर,
अंकारा विश्वविधालय, अंकारा, टर्की

डॉ. आर.के विश्वास
अध्यक्ष होम्योपैथिक, टांटिया, वि.वि.

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, पुराना बस स्टैण्ड रोड़, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से जारी किया।

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

(Journal of Literature, Arts, Science, Commerece, Culture, Humanities and Social Sciences)

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्त्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा।
सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. रेखा सोनी	07–07
2.	मोहन राकेश के साहित्य में प्रेम, अकेलापन और संबंधों की जटिलता	डॉ. विनोद कुमार	8–12
3.	तेजेन्द्र शर्मा कृत "सपने मरते नहीं" कहानी संग्रह में प्रवास की अन्तर्वेदना एवं स्त्री का संघर्ष	डॉ. मधु बाला	13–16
4.	**Miscibility Studies of Polymer Solution Blends**	**Gautam Kumar Sah**	**17-24**
5.	हिन्दी विज्ञापन लेखन के स्वरूप एवं प्रकार का अध्ययन	डॉ. महेश सिंह बारेठ	25–28
6.	**FASHION FORECASTING**	**Daljeet Kaur**	**29-33**
7.	ग्रामीण समाज में महिलाओं की आर्थिक स्थिति का अध्ययन (मिर्जापुर के संदर्भ में)	डॉ. चन्द्रशेखर सिंह	34–39
8.	राष्ट्र निर्माण में शिक्षा की भूमिका : एक भारतीय अनुभव	आरती यादव	40–44
9.	हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श : ऐतिहासिक विकास, अवधारणाएं और विविध आयाम	डॉ. कविता देवी	45–50
10.	सुरक्षा और सेहत, विकसित भारत के लिए महत्वपूर्ण **" Happiness has many roots, but none more important than security"**	डॉ. राजेश कुमार सिन्हा	51–54
11.	जिंदा मुहावरे उपन्यास में अभिव्यक्त विभाजन की त्रासदी	खान रेशमा बानो	55–57
12.	**The Enduring Legacy of Ashoka : Art and Architecture in a Transformative Era**	**Harish Kumar**	**58-63**
13.	**Women Empowerment: A Journey Toward Equality and Growth**	**Pawan, Dr . Meena**	**64-68**
14.	भारत की विदेश नीति एवं पड़ोसी देशों के साथ सम्बन्धों का ऐतिहासिक अवलोकन	डॉ. अभिषेक अग्रवाल	69–75
15.	हरियाणा की माटी का लोक संगीत और नृत्य परम्परा	डॉ० उषा	76–79
16.	डॉ. नगेन्द्र की आलोचना में प्रगतिशील मूल्य	डॉ. सुशीला	80–84
17.	अंतर्राष्ट्रीय प्रवास की स्थानिक गतिशीलता और उसके परिणामों का अध्ययन	कुलदीप सिंह	85–88

18.	राजनीति में युवाओं की भूमिका	राजेश कुमार	89–90
19.	शहरी बुनियादी ढांचे और सेवाओं पर जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव	सुनील कुमार	91–93
20.	जैन मंदिर की ऐतिहासिक परम्परा एवं पृष्ठभूमि	शीशराम	94–99
21.	**The Synergistic Role of Artificial Intelligence and Robotics in Modern Technological Advancement**	**Dr. Piyush Gupta**	**100-102**
22.	महिलाओं के संवैधानिक एवं विधिक अधिकार	डॉ. शैलेश पाण्डेय	103–106
23.	मीराकांत के नाटकों में स्त्री चेतना	परमिन्द्रजीत कौर, डॉ. विनोद कुमार	107–112
24.	स्वयं सहायता समूह और सूक्ष्म उद्यमिता : ग्रामीण रोजगार सृजन में भूमिका (बिहार जीविका के विशेष संदर्भ में)	प्राची आदित्य	113–118
25.	काशी तमिल संगमम : एक परिचय	प्रो. पी. राजरत्नम	119–122
26.	ਸਵਰਾਜਬੀਰ ਦੇ ਨਾਟਕ ਕੱਲਰ ਦਾ ਵਿਸ਼ੈਗਤ ਅਧਿਐਨ	ਅਮਨਦੀਪ ਕੌਰ, ਡਾ. ਗੁਰਪ੍ਰੀਤ ਕੌਰ	123–133
27.	भूमंडलीकरण, सांप्रदायिकतावाद एवं युद्ध की विभीषिका : आधुनिक जीवन की त्रासदी	डॉ. रीना कुमारी	134–139
28.	**A Survey Paper on Depression Detection among Elderly People Using Automated Machine Learning**	**Shifa Anjum, Sajida Nazneen**	**140-146**
29.	**Smart but Unfair: Tackling AI's Bias and Privacy Blind Spots**	**Mohammadi Begum**	**147-152**
30.	**Emotional Toll: Women, Work-Life Balance, and Well-being in MNCs & Academia Using Machine Learning**	**Sajida Nazneen, Shifa Anjum**	**153-156**
31.	मनुष्यजीवने आचारः	Dr. C. Venkatesan.	157-161
32.	राजस्थानी लोक गीत में भक्ति भावना	रविन्द्र, डॉ. मरजीना	162–164
33.	**The Role of Folklore in Modern English Fiction**	**Kiran**	**165-167**
34.	**Possibilities of Rapid Data Analysis in Data Science Using Vedic Mathematical Formulas: An Innovative**		

	Study from an Indian Perspective	**Kavita Arya Ramani**	**168-173**
35.	**ENHANCING LIFE SKILLS IN ADOLESCENTS**	**Dr. Harpreet Kaur**	**174-177**
36.	**आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विज्ञान शिक्षा की प्रासंगिकता**	**दुर्गेश कुमारी, डॉ. जयप्रकाश सिंह**	**178–181**
37.	**शहरीकरण से सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन और गाँधी**	**डॉ. बिन्दी कुमारी**	**182–185**
38.	**मध्य गंगा के मैदान में पुरातात्विक लौह संग्रह का एक ऐतिहासिक महत्व**	**राम निवास नायक**	**186–190**
39.	**भारत छोड़ो आन्दोलन में संयुक्त बिहार के महिलाओं का योगदान**	**डॉ. पूजा प्रेरणा**	**191–196**
40.	**संवेदनाओं के शिल्पी विद्यावत्स जी**	**अञ्जनी कुमार चतुर्वेदी**	**197–204**
41.	**वेदों में योग का महत्व**	**डॉ. राम कृपाल**	**205–210**
42.	**Importance of Innovative Activities in Higher Education**	**Dr. Satish Chand Mangal, Dr. Mukesh Kumar Sharma, Mrs. Rukmani Sharma**	**211-217**
43.	**राष्ट्रीय चेतना और मैथिलीशरण गुप्त का काव्य**	**डॉ. बालकृष्ण शर्मा**	**218–221**
44.	**PROBLEM OF CHILD LABOUR IN INDIA IN INFORMAL AND UNORGANISED SECTORS AND LAWS: ISSUES AND CHALLENGES**	**Dr. Mukta Verma**	**222-228**
45.	**पर्यावरण संरक्षण के प्रति जैनधर्म का वैज्ञानिक दृष्टिकोण**	**Dr. Mukesh Kumar Dhaka**	**229-235**
46.	**Sustainable Development and Geography : Theoretical Foundations and Frameworks**	**Nikita**	**236-247**
47.	**डॉ. मंजू चौहान : नारी संवेदना, सांस्कृतिक चेतना और आत्मबोध की सशक्त कवयित्री**	**डॉ. नरेश कुमार सिहाग**	**248–249**
48.	**नैतिक दर्शन एवं साहित्य**	**डॉ. अजित कुमार विश्वकर्मा**	**250–255**

सम्पादक की कलम से.....

परिवर्तन के संधि–क्षण में शोध की भूमिका

आपके हाथों में 'गीना शोध संगम' का यह 'मई–जून 2025' अंक एक नए युग की आहट के साथ पहुंचा है। जब बाहर दुनिया तेजी से बदल रही है–चुनावी हलचल से लेकर जलवायु परिवर्तन तक, तकनीक की उड़ान से लेकर मानव संबंधों की बदलती प्रकृति तक–तो शोध की भूमिका केवल अकादमिक जगत तक सीमित नहीं रह जाती, वह समाज की आत्मा में उतरती है। इस अंक की थीम है : 'समय की चाल और शोध की दिशा।' यह केवल एक वाक्य नहीं, बल्कि एक चुनौती है, जो हम सबके सामने खड़ी है। आज जब सोशल मीडिया पर क्षणिक जानकारी की बाढ़ है, तब शोध का कार्य–सत्य की पड़ताल और दीर्घकालिक समझ विकसित करना और भी जरूरी हो जाता है।

शोध : एक सामाजिक उत्तरदायित्व :– शोध केवल विश्वविद्यालयों और प्रयोगशालाओं तक सीमित नहीं है, वह एक सामाजिक उत्तरदायित्व है। जब एक ग्रामीण शिक्षक अपनी पाठशाला में पढ़ने की शैली बदलता है, जब एक किसान परंपरागत तरीकों की जगह नवाचार करता है, या जब कोई लेखक जनसंघर्षों को दस्तावेज करता है–ये सभी रूप अपने–अपने स्तर पर शोध ही हैं।

आज आवश्यकता है उस शोध की, जो समाज के हाशिये पर खड़े लोगों की आवाज बने, जो केवल आंकड़ों की नहीं बल्कि अनुभवों की भी पड़ताल करे। इसीलिए गीना शोध संगम का यह अंक शिक्षा, समाजशास्त्र, पर्यावरण, और भारतीय भाषाओं के विविध विमर्शों को समेटते हुए आपके समक्ष प्रस्तुत है।

समय की नब्ज पहचानना जरूरी है :– आज का युग 'डेटा' का युग है, परंतु इस असीम डेटा में 'दृष्टि' खो ना जाए, यह चिंता की बात है। इस अंक में प्रकाशित कुछ लेख इस द्वंद्व को बेहतरीन ढंग से उजागर करते हैं–कैसे तकनीक मानवता का साधन बन सकती है, और कैसे यह मानवता पर हावी भी हो सकती है। शोध तभी सार्थक है जब वह प्रश्न उठाने का साहस रखे और उत्तरों को समय के कसौटी पर परखे।

नवाचार और परंपरा का संगम :– शोध में नवाचार की बात होती है, लेकिन क्या नवाचार परंपरा को नकार कर ही संभव है? भारतीय ज्ञान परंपरा में शोध का अर्थ 'स्वाध्याय' रहा है–अपने भीतर झांकना, संसार को देखने का नया दृष्टिकोण पाना। यह दृष्टिकोण जब हमारी जड़ों से जुड़ता है, तब वह केवल शोध नहीं, वह एक सांस्कृतिक आंदोलन बन जाता है। हमारे इस अंक में शामिल कुछ लेख जैसे 'लोक साहित्य में पर्यावरण चेतना' या 'गांधी और वर्तमान शिक्षा प्रणाली' इसी दृष्टिकोण को सामने लाते हैं–जहाँ परंपरा के आलोक में वर्तमान की दिशा तय होती है।

शोध को जनभाषा से जोड़ना होगा :– यह भी एक विचारणीय प्रश्न है कि आज भी अधिकतर शोध अंग्रेजी में होते हैं, जिससे वे समाज के बड़े हिस्से से कट जाते हैं। शोध यदि जनकल्याण का माध्यम है, तो उसे जनभाषा से जुड़ना ही होगा। गीना शोध संगम इस दिशा में प्रतिबद्ध है कि शोध केवल विद्वानों के बीच न सिमटे, बल्कि गाँव–शहर, छात्र–शिक्षक, युवा–वृद्ध सभी तक पहुंचे।

हमारी भाषा में वह शक्ति है जो शोध को जनांदोलन बना सकती है। हमें हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में अधिक से अधिक गंभीर शोध सामग्री तैयार करनी चाहिए, ताकि शोध भारतीय संदर्भों में नई जमीन तोड़ सके। अंत में..इस अंक को पढ़ते समय एक बात याद रखें–शोध केवल तथ्य नहीं है, वह दृष्टि है। जब तक यह दृष्टि समाज को बेहतर बनाने की ओर न जाए, तब तक वह अधूरा है। आईए, हम सब मिलकर शोध को एक आंदोलन बनाएं–जिसका लक्ष्य हो ज्ञान से कल्याण तक।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 8–12

मोहन राकेश के साहित्य में प्रेम, अकेलापन और संबंधों की जटिलता

डॉ. विनोद कुमार
सहायक आचार्य – हिन्दी साहित्य, विद्या संबल योजना, राजकीय महाविद्यालय, श्रीकरणपुर।

शोध सार :–

मोहन राकेश हिंदी साहित्य के नई कहानी आंदोलन के प्रमुख स्तंभों में से एक हैं, जिनके साहित्य में प्रेम, अकेलापन और मानवीय संबंधों की जटिलता केंद्रीय विषयों के रूप में उभरती है। यह शोध पत्र उनके साहित्यिक कार्यों विशेष रूप से उनकी कहानियों, उपन्यासों और नाटकों जैसे आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, और उसकी रोटी–का विश्लेषण करता है, ताकि प्रेम और संबंधों के विभिन्न आयामों, अकेलेपन की मनोवैज्ञानिक गहराई, और आधुनिक जीवन की जटिलताओं को समझा जा सके। राकेश के पात्र प्रायः सामाजिक बंधनों, व्यक्तिगत अपेक्षाओं और आत्मिक खोज के बीच संघर्ष करते हैं, जो उनके साहित्य को अस्तित्ववादी और मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से समृद्ध बनाता है। यह शोध पत्र प्रेम को केवल रोमांटिक संदर्भ तक सीमित न रखकर, उसे आत्मीयता, आत्म–संघर्ष और सामाजिक अलगाव के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखता है। साथ ही, यह अकेलेपन को व्यक्तिगत और सामाजिक संदर्भों में विश्लेषित करता है, जो आधुनिक मानव की असुरक्षा और संवादहीनता को दर्शाता है। राकेश के साहित्य में संबंधों की जटिलता को उनके पात्रों के अंतर्द्वंद्व, संवादों और प्रतीकों के माध्यम से उजागर किया जाएगा। इस शोध में गुणात्मक विश्लेषण और साहित्यिक सिद्धांतों का उपयोग करते हुए यह स्थापित करने का प्रयास किया जाएगा कि राकेश का साहित्य न केवल व्यक्तिगत भावनाओं को अभिव्यक्त करता है, बल्कि आधुनिक समाज की संरचनात्मक और मनोवैज्ञानिक चुनौतियों को भी चित्रित करता है। इस अध्ययन का उद्देश्य हिंदी साहित्य में राकेश के योगदान को पुनर्मूल्यांकन करना और उनके साहित्य को समकालीन संदर्भों में प्रासंगिकता प्रदान करना है।

मुख्य शब्द :– मोहन राकेश, प्रेम, अकेलापन, संबंधों की जटिलता, नई कहानी, हिंदी साहित्य, मनोविश्लेषण, अस्तित्ववाद।

प्रस्तावना :–

मोहन राकेश हिंदी साहित्य के उन विशिष्ट रचनाकारों में से एक हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से मानवीय संवेदनाओं को गहराई से उकेरा। उनकी रचनाएँ, विशेष रूप से कहानियाँ, नाटक और उपन्यास, प्रेम, अकेलापन और संबंधों की जटिलता जैसे विषयों को केंद्र में रखकर आधुनिक मनुष्य के अंतर्द्वंद्व और उसकी

भावनात्मक उलझनों को प्रस्तुत करती हैं।

1. मोहन राकेश का साहित्यिक परिचय :-

मोहन राकेश (8 जनवरी 1925 – 3 दिसंबर 1972) हिंदी साहित्य में 'नई कहानी' आंदोलन के अग्रणी लेखक थे। उनकी प्रमुख रचनाओं में नाटक जैसे आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, और आधे–अधूरे, उपन्यास जैसे अंधेरे बंद कमरे और न आने वाला कल तथा अनेक कहानियाँ शामिल हैं। राकेश का साहित्य आधुनिक जीवन की जटिलताओं और व्यक्तिगत संबंधों में उत्पन्न होने वाली संवेदनात्मक चुनौतियों को प्रतिबिंबित करता है। उनकी रचनाएँ यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ–साथ मनोवैज्ञानिक गहराई लिए हुए हैं।

2. प्रेम का स्वरूप :-

मोहन राकेश के पात्रों के बीच प्रेम संबंध किसी आदर्श या त्याग की भावना पर आधारित नहीं होते, बल्कि वे जटिल भावनाओं, असमंजस और अधूरेपन से ग्रस्त होते हैं। उनके नाटकों में प्रेम एक आकांक्षा की तरह उपस्थित होता है, परंतु वह पूर्णता नहीं प्राप्त कर पाता।

'आधे–अधूरे' की सावित्री अपने पति महेंद्रनाथ से असंतुष्ट है और अन्य पुरुषों में वह उस संपूर्णता की तलाश करती है, जो उसे जीवन में नहीं मिल पाती। यह प्रेम की तलाश कम, आत्मसंतोष और पहचान की जिजीविषा अधिक है।

'लहरों के राजहंस' में सुंदरी और नंद का संबंध प्रेम की एक परंपरागत छवि को तोड़ता है। यहां प्रेम त्याग से टकराता है और पात्रों के भीतर नैतिक और आत्मिक द्वंद्व उत्पन्न करता है। नंद बुद्ध बनने के मार्ग पर है और सुंदरी अपने प्रेम और सामाजिक भूमिका के बीच बंट जाती है। यह द्वंद्वात्मकता मोहन राकेश के साहित्य को विशिष्ट बनाती है जहाँ प्रेम केवल रोमांटिक भाव नहीं बल्कि मानसिक और दार्शनिक द्वंद्व है।

मोहन राकेश के साहित्य में प्रेम एक जटिल और बहुआयामी भावना के रूप में उभरता है, जो अक्सर सुख और दुख के बीच झूलता हुआ दिखाई देता है। उनकी रचनाओं में प्रेम केवल रोमांटिक नहीं है, बल्कि यह व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं, सामाजिक दबावों और आत्म–संघर्ष के साथ उलझा हुआ है। 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में कालिदास और मल्लिका के बीच का प्रेम केंद्रीय विषय है। कालिदास एक रचनाकार के रूप में अपनी सफलता और प्रेम के बीच चयन करने के द्वंद्व में फँस जाते हैं। प्रेम और वियोग में डूबी मल्लिका, कालिदास के लौटने पर कुछ कोरे पन्ने सौंपती है, उस समय दोनों के मध्य जो संवाद होता है, वह प्रेम की पराकाष्ठा है– कालिदास : जो अभाव वर्षों से मुझे सालते रहे हैं, वे आज और बड़े प्रतीत होते हैं, मल्लिका! मुझे वर्षों पहले यहाँ लौट आना चाहिए था ताकि यहाँ वर्षा में भीगता, भीगकर लिखता––वह सब जो मैं अब तक नहीं लिख पाया और जो आषाढ़ के मेघों की तरह वर्षों से मेरे अंदर घुमड़ रहा है।

निःश्वास छोड़कर आसन पर रखे ग्रंथ को उठा लेता है और उसके पन्ने पलटता है।

परंतु बरस नहीं पाता। क्योंकि उसे ऋतु नहीं मिलती। वायु नहीं मिलती।... यह कौन–सी रचना है? ये तो केवल कोरे पृष्ठ हैं।

मल्लिका : ये पन्ने अपने हाथों से बना कर सिये थे। सोचा था तुम राजधानी से आओगे, तो मैं तुम्हें यह भेंट दूँगी। कहूँगी कि इन पृष्ठों पर अपने सबसे बड़े महाकाव्य की रचना करना। परंतु उस बार तुम आकर भी नहीं आये और यह भेंट यहीं पड़ी रही। अब तो यह पन्ने टूटने भी लगे हैं, और मुझे कहते संकोच होता है

कि ये तुम्हारी रचना के लिए हैं। कालिदास पन्ने पलटता जाता है।

कालिदास : तुमने ये पृष्ठ अपने हाथों से बनाए थे कि इन पर मैं एक महाकाव्य की रचना करूँ!

पन्ने पलटते हुए एक स्थान पर रुक जाता है।

स्थान–स्थान पर इन पर पानी की बूँदें पड़ी हैं जो निःसंदेह वर्षा की बूंदें नहीं हैं। लगता है तुमने अपनी आँखों से इन कोरे पृष्ठों पर बहुत कुछ लिखा है। और आँखों से ही नहीं, स्थान–स्थान पर ये पृष्ठ स्वेद–कणों से मैले हुए हैं, स्थान–स्थान पर फूलों की सूखी पत्तियों ने अपने रंग इन पर छोड़ दिये हैं। कई स्थानों पर तुम्हारे नखों ने इन्हें छीला है, तुम्हारे दाँतों ने इन्हें काटा है।"

मल्लिका का प्रेम निस्वार्थ और समर्पित है, जो टूटने के बाद भी अपनी गरिमा बनाए रखता है। यहाँ प्रेम एक बलिदान और आत्म–त्याग के रूप में सामने आता है। मल्लिका का यह चरित्र हिंदी साहित्य में प्रेम की एक अविस्मरणीय छवि प्रस्तुत करता है। 'आधे–अधूरे' इस नाटक में प्रेम वैवाहिक संबंधों की जटिलता में उलझा हुआ दिखता है। सावित्री और महेंद्रनाथ का रिश्ता प्रेम की कमी और आपसी समझ की खाई को दर्शाता है। यहाँ प्रेम एक अधूरी चाहत बनकर रह जाता है, जो पात्रों को अकेलेपन की ओर धकेलता है। मोहन राकेश का प्रेम चित्रण पारंपरिक प्रेम कहानियों से हटकर आधुनिक संदर्भों में मानव मन की गहराइयों को टटोलता है। यह प्रेम कभी पूर्णता की ओर नहीं बढ़ता, बल्कि उसकी अपूर्णता ही उसे विशिष्ट बनाती है।

3. अकेलापन :–

मोहन राकेश के साहित्य में अकेलापन एक केंद्रीय भाव है, जो उनकी अधिकांश रचनाओं में परिलक्षित होता है। यह अकेलापन केवल भौतिक नहीं बल्कि मानसिक और भावनात्मक है।

'आधे–अधूरे' का प्रत्येक पात्र अपने–अपने स्तर पर अकेला है। महेंद्रनाथ अपने आत्मगौरव की क्षीणता से ग्रस्त है, सावित्री संबंधों की तलाश में भटक रही है, और बच्चे माता–पिता की असंगति के बीच असहज हैं। यह सब मिलकर पारिवारिक इकाई को विघटित करते हैं।

मोहन राकेश की कहानियों में यह अकेलापन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। 'एक और जिंदगी' में पात्र अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में गहरे अकेले हैं, जहाँ संवाद होते हुए भी वास्तविक संवाद नहीं होता।

आधुनिक मनुष्य की नियति मोहन राकेश के साहित्य में अकेलापन एक ऐसी भावना है जो उनके पात्रों के जीवन का अभिन्न अंग बन जाती है। यह अकेलापन शारीरिक नहीं, बल्कि भावनात्मक और मानसिक स्तर पर व्यक्त होता है। राकेश स्वयं मानते रहे हैं कि उनकी अधिकांश कहानियाँ संबंधों की यंत्रणा को अपने अकेलेपन में झेलते लोगों की कहानियाँ हैं। कहानी 'मिस पाल' में नायिका का अकेलापन उसके प्रेम और सामाजिक स्वीकृति के अभाव से उत्पन्न होता है। वह अपने भीतर एक खालीपन को अनुभव करती है, जो उसे दूसरों से जोड़ने के बजाय अलग कर देता है। उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे' में पात्रों का अकेलापन उनके संबंधों की असफलता और व्यक्तिगत असंतुष्टि से उपजता है। अकेलेपन की पीड़ा को सुषमा के इस कथन से समझा जा सकता है ""तुम नहीं जानते मधुसूदन कि मैं अब तक कितनी थक चुकी हूँ।" वह बोली। "मैं पहले इस बात का बहुत पक्षपात करती रही हूँ कि एक लड़की को बिल्कुल स्वतंत्र जीवन बिताना चाहिए। किसी भी व्यक्ति के साथ बँधकर उसके शासन में रहना मुझे बहुत गलत लगता था। और तुम जानते हो कि हर पुरुष किसी ने किसी रूप में स्त्री पर शासन करना चाहता है। मैं सोचती थी कि मैं एक अपवाद बन सकती हूँ। पुरुषों के शासन से बचकर

उन्हें अपने शासन में रख सकती हूँ। मैंने इसका प्रयोग करना चाहा, तो वह प्रयोग मुझे काफी हद तक सफल भी लगा। मुझे लगा कि मैं जिस किसी को चाहूँ, अपने इशारे पर नचा सकती हूँ। मैंने कुँआरी रहकर जिंदगी काटने वाली लड़कियों के रूखे चेहरे देखे थे और मुझे लगता था कि उन्हें वास्तव में जीना नहीं आता। मगर बहुत जल्द मुझे लगने लगा कि मैं जिसे अपना शासन समझती हूं, वह भी शासन नहीं, एक मांग है, और वह माँग सदा मुझी को हीन करती है।"

उपन्यास का शीर्षक ही इस अकेलेपन का प्रतीक है। बंद कमरे में फँसा हुआ मनुष्य, जो बाहर की रोशनी से वंचित है। राकेश का अकेलापन केवल व्यक्तिगत नहीं है; यह आधुनिक समाज में बढ़ती अलगाव की भावना का भी प्रतिबिंब है। शहरीकरण और बदलते सामाजिक ढाँचे ने व्यक्ति को अपने ही भीतर कैद कर दिया है, जिसे राकेश ने बड़ी संवेदनशीलता से चित्रित किया है।

4. संबंधों की जटिलता :-

मोहन राकेश के पात्रों के बीच संबंधों में स्थायित्व नहीं होता। पारंपरिक संबंध जैसे पति–पत्नी, माता–पिता और संतान, प्रेमी–प्रेमिका सभी संबंधों में असंतोष और तनाव की स्थिति बनी रहती है।

'आधे–अधूरे' इस दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण नाटक है, जहाँ एक मध्यवर्गीय परिवार में पति–पत्नी के संबंध टूटन की कगार पर हैं। सावित्री अपने पति में असफलता देखती है और उसका मन अन्य पुरुषों की ओर आकृष्ट होता है। वहीं महेंद्रनाथ अपनी असफलताओं को स्वीकार कर चुप्पी ओढ़े रहता है। बच्चों का अपनी माँ के प्रति विरोध और पिता के प्रति उपेक्षा यह सब संबंधों के विघटन की ओर संकेत करता है। इस संबंध–जटिलता को मोहन राकेश केवल सतही संवादों से नहीं, बल्कि पात्रों के मौन, उनके हाव–भाव, और उनके मानसिक द्वंद्वों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं।

राकेश के साहित्य में संबंधों की जटिलता एक ऐसा धागा है जो प्रेम और अकेलेपन को आपस में जोड़ता है। उनके पात्र अक्सर अपने संबंधों में संतुष्टि की तलाश करते हैं, 'अँधेरे बंद कमरे' उपन्यास के मधुसूदन की मनः स्थिति संबंधों की जटिलता और दुविधा को उजागर करती है–"वह तुम्हारा दोस्त है।" "उसने कहा, "इसलिए ज्यादा तुम उसी से पूछ लेना मैं सिर्फ इतना जानती हूँ कि उस जैसे आदमी के साथ मेरी मित्रता हो ही नहीं सकती थी।"

मैंने उसे बात को ज्यादा तूल नहीं दिया। यह जानते हुए की हरबंस मेरा मित्र है, वह उसके बारे में ज्यादा बात कर भी कैसे सकती थी? मेरे मन में अगर दुविधा थी, तो वह अपनी बात सोच कर ही थी। क्या मैं सुषमा जैसी लड़की के साथ विवाहित जीवन की जिम्मेदारी उठाने के लिए तैयार था? मेरे मन में इसके विपक्ष में दलील कोई नहीं थी, फिर भी न जाने क्यों एक हिचक–सी थी। मैं अपने से पूछता था कि क्या मेरे मन में सुषमा के लिए उस तरह की भावना है जैसी कभी किसी और के लिए थी।" लेकिन ये संबंध उन्हें और उलझन में डाल देते हैं। 'लहरों के राजहंस' नाटक में नंद और सुंदरी के बीच का संबंध प्रेम, विश्वास और आध्यात्मिकता के प्रश्नों से जूझता है। नंद का आध्यात्मिक जीवन और सुंदरी का भौतिक प्रेम एक–दूसरे के विरोधी बन जाते हैं, जिससे उनके संबंधों में जटिलता उत्पन्न होती है। यहाँ राकेश जीवन की सार्थकता और संबंधों के अर्थ को खोजने का प्रयास करते हैं।

'आधे–अधूरे' नामक नाटक पारिवारिक संबंधों की जटिलता का उत्कृष्ट उदाहरण है। सावित्री का अपने

पति और बच्चों के साथ रिश्ता आपसी समझ और संवाद की कमी से ग्रस्त है। यहाँ संबंध न तो पूर्ण रूप से टूटते हैं और न ही जुड़ते हैं, बल्कि एक अधूरी स्थिति में लटके रहते हैं। राकेश के साहित्य में संबंधों की यह जटिलता आधुनिक जीवन की अनिश्चितता और परिवर्तनशीलता को दर्शाती है। उनके पात्र संबंधों में स्थिरता की तलाश करते हैं, लेकिन यह स्थिरता उन्हें कभी प्राप्त नहीं होती।

5. विश्लेषण और निष्कर्ष :-

मोहन राकेश का साहित्य प्रेम, अकेलापन और संबंधों की जटिलता को न केवल व्यक्तिगत स्तर पर, बल्कि सामाजिक और मनोवैज्ञानिक संदर्भों में भी प्रस्तुत करता है। उनकी रचनाएँ आधुनिक मनुष्य की उस मनोदशा को उजागर करती हैं, जहाँ वह अपनी भावनाओं और संबंधों के बीच संतुलन नहीं बना पाता। प्रेम उनके लिए एक आकर्षण और पीड़ा दोनों है, अकेलापन उनकी नियति बन जाता है और संबंध उनकी जटिलताओं में उलझे रहते हैं। राकेश की यह विशेषता उन्हें हिंदी साहित्य में अद्वितीय बनाती है। उनकी रचनाएँ पाठकों को आत्म–चिंतन के लिए प्रेरित करती हैं और आधुनिक जीवन की चुनौतियों को समझने का एक नया दृष्टिकोण प्रदान करती हैं। मोहन राकेश का साहित्य प्रेम, अकेलापन और संबंधों की जटिलताओं को जिस संवेदनशीलता और यथार्थ के साथ चित्रित करता है, वह उन्हें आधुनिक हिंदी साहित्य में विशिष्ट स्थान प्रदान करता है। उन्होंने संबंधों की पारंपरिक परिभाषाओं को तोड़ा और मनुष्य के भीतर की अस्थिरता, असंतोष और आत्मसंघर्ष को उजागर किया। उनका साहित्य आज भी उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि आज भी व्यक्ति इन्हीं भावनात्मक संकटों और संबंधों की जटिलताओं से जूझ रहा है।

संदर्भ :-

1. राकेश, मोहन. आषाढ़ का एक दिन. संपा रवींद्र कालिया, मोहन राकेश संचयन, प्रका. भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली. प्र. सं 2010, पृ सं–254–255
2. राकेश, मोहन. अँधेरे बन्द कमरे. संपा रवींद्र कालिया, मोहन राकेश संचयन, प्रका. भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली. प्र. सं 2010, पृ. सं–549
3. राकेश, मोहन. अँधेरे बन्द कमरे. संपा रवींद्र कालिया, मोहन राकेश संचयन, प्रका. भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली. प्र. सं 2010, पृ सं–538
4. राकेश, मोहन, आधे–अधूरे. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. राकेश, मोहन, लहरों के राजहंस. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. नागर, अमृतलाल, मोहन राकेश और उनका साहित्य. किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. शर्मा, रामचंद्र. नई कहानी : सिद्धांत और संदर्भ. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. गुप्त, नलिनी – मोहन राकेश के नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, राजकमल प्रकाशन।
9. शर्मा, रवीन्द्र – हिन्दी नाटक का आधुनिक विमर्श, वाणी प्रकाशन।
10. मेहता, दीपक – आधुनिक नाटक में संबंधों का टूटता ताना–बाना, साहित्य सदन।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 13–16

तेजेन्द्र शर्मा कृत "सपने मरते नहीं" कहानी संग्रह में प्रवास की अन्तर्वेदना एवं स्त्री का संघर्ष

डॉ. मधु बाला
सहायक आचार्य, राजकीय महिला महाविद्यालय, हिसार, हरियाणा।

सृष्टि के प्रारंभ से ही मनुष्य अपने मूल स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवास करता रहा है। प्रवास एक सहज एवं सामान्य प्रक्रिया रही है। कारण चाहे कोई भी हो, मनुष्य के जीवन में नवीन संकल्पनाओं व प्रवृत्तियों के सृजन का मार्ग प्रशस्त होता रहा है। 21वीं सदी में हिंदी साहित्य में विविध विमर्श उभरकर सामने आए हैं, जिनमें प्रवासी विमर्श का अपना विशेष स्थान है। प्रवासी शब्द का इतिहास बहुत पुरानी है। प्रवासी साहित्य को हम दो आधार विभक्त कर सकते हैं। पहला– उन गिरमिटिया मजदूरों के वंशजों के लेखन का है जो अपने समाज से काटकर मॉरिशस, फिजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद आदि स्थानों पर बसा दिए गए। उन गिरमिटिया मजदूरों की दूसरी पीढ़ी जो वहीं पैदा हुई, लेकिन अपने पूर्वजों की पीड़ा को भूला नहीं पाई और उस दर्द को कहानी, उपन्यास, कविता आदि साहित्यिक विधाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया। दूसरा आधार,उन भारतीय लोगों का है, जो शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य से गए थे या जो जीविकोपार्जन के लिए व सुख–सुविधाओं की चाह में विदेशों में तो बस गए, लेकिन जल्द ही उन्हें एहसास हो गया कि अपनी भाषा, संस्कृति और समाज की संवेदना उनसे छूट रही है, लिहाजा उन्होंने लिखना शुरू कर दिया। अतः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि प्रवासी साहित्य वह साहित्य है जो विदेशों की धरती पर रहकर भारतीयों द्वारा लिखा जाता है।

बीज शब्द :– प्रवासी, साहित्य, अन्तर्वेदना, संघर्ष, संस्कृति, भाषा और संवेदना आदि।

वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों में भारत के लोग निवास कर रहे हैं। प्रवासी भारतीय जो संवेदनशील थे, उन्होंने विदेश में अपने प्रवास काल के दौरान आने वाली विभिन्न समस्याओं को और अपने आसपास घटने वाली घटनाओं को आधार बनाकर साहित्य सृजन किया।

प्रवासी साहित्यकारों में अभिमन्यु अनन्त, सुषमा बेदी, सुधा ओम ढींगरा, रामदेव धुरंधर, गुलाब खंडेलवाल, अचला शर्मा, कीर्ति चौधरी व तेजेन्द्र शर्मा आदि साहित्यकार है, जो विदेश में रहकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में अपना उल्लेखनीय योगदान दे रहे हैं। मृदुला गर्ग 'प्रवासी साहित्य' के बारे में लिखती है, "प्रवासी साहित्य को अलग करके देखने की बजाय उसे हिंदी की मुख्यधारा में स्थान दिया जाए।" वहीं निर्मल वर्मा 'साहित्य' के विषय में लिखते है, "साहित्य हमें पानी नहीं देता,वह सिर्फ हमें अपनी प्यास का बोध कराता है।" तेजेन्द्र शर्मा ब्रिटेन के साहित्यकारों में अपना विशेष स्थान रखते हैं। उन्होंने अपने साहित्य के लेखन की शुरुआत

कविता लिखने से शुरू की और एक कहानीकार के रूप में ख्याति प्राप्त की। इनके प्रमुख कहानी संग्रह में "तू चला चल", "मृत्यु के इंद्रधनुष", "स्मृतियों के घेरे", "नई जमीन नया आकाश", "सपने मरते नहीं", "देह की कीमत", "काला सागर" आदि कहानी संग्रहों के माध्यम से लेखक ने ब्रिटेन की प्रशासन व्यवस्था, वहां की संस्कृति व स्त्री जीवन की समस्याओं के साथ–साथ वहॉ पर विभिन्न देशों से आकर प्रवास कर रहें लोगों की अंतर्वेदना का मार्मिक चित्रण किया है।

"सपने मरते नहीं" कहानी संग्रह के अंतर्गत 'खिडघ्की' कहानी के माध्यम से लेखक ने अकेलेपन की पीड़ा से जूझते हुए एक नायक की मनोदशा का वर्णन किया है। कथा का नायक अकेलेपन से पीड़ित है। नायक का स्टेशन पर टिकट की खिड़की पर बैठने का निर्धारित जीवन चक्र एक बंधी–बंधी जिंदगी जीते–जीते ऊब चुका है। जिंदगी में कहीं कोई रोमांच नहीं है, अपनी मिट्टी से दूर विदेश की जमीन पर वह स्वयं को अकेला महसूस कर रहा है। रिश्तों का अभाव उसे कल रहा है। निम्नलिखित पंक्तियों के माध्यम से दृष्टव्य है, "न जाने उससे कहां गलती हो गई कि सब रिश्ते जीवित होते हुए भी वह अपना परिवार खोज रहा है। उसने अब सोचना बंद कर दिया है कि गलती किसकी थी दो रिश्तो के बीच पैदा हुई दरार के बारे में सच्चाई उन दोनों को ही मालूम होती है। बाकी सब तो झूठ ही कहा जाएगा।" नायक के इन शब्दों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उसने रिश्तो के टूटने की पीड़ा को सजा है, जिसके बारे में वह अब सोचना नहीं चाहता। रात–दिन भर संघर्ष करता है। किसी तरह उसके जीवन में उल्लास हो। कहानी का नायक अपने सहकर्मियों से मिलता है। वह अपनी सोच का दायरा बढ़ाता है। उनसे मिलने से उसका अकेला अकेलापन दूर होने लगता है। वह एक और एक ग्यारह होने में विश्वास करता है। उसके जीवन को नई दिशा मिलती है। उसके जीवन से अकेलेपन और उदासी के बदले छट जाते हैं। जरूरी नहीं है कि हम अपनी खुशियां अपने खून के रिश्तों के संग ही बांटे। प्रस्तुत कहानी दर्द के रिश्तों को एक बंधन में बांधती है और यह संदेश देती है कि हमें इस खिड़की की प्रेम से बाहर निकल कर बाहर की दुनिया से जुडघ्ना होगा और चौखट को बड़ा करना होगा यानि कि अपने विचारों को और विस्तृत करना होगा।

तेजेंद्र शर्मा ने इस कहानी के माध्यम से ब्रिटेन की रेल व्यवस्था से भी पाठकों को रूबरू करवाते हैं। साथ ही आम पाठक को पश्चात जीवन शैली और वहां की जीवन व्यवस्था से अवगत कराते हैं। नायक का साठवां जन्मदिन उसके लिए जिंदगी की नई खुशियां लेकर आता है, क्योंकि वह अपने सोच के दायरे को बढ़ा लेता है। अब वह खिड़की की चौखट से बाहर आ जाता है। वह अपना जन्मदिन उन सभी बच्चों के साथ बनता है जो उसे यात्रा के दौरान मिलते थे। वह खिड़की जो अब तक उसे तन्हाई और सन्नाटा बनकर सालती थी, "उसे जीने का कारण मिल गया हैं। हैच एंड स्टेशन की यह खिड़की अचानक स्वर्ग का द्वार बन गई है।" कहते हैं कि जब हमारा मन प्रफुल्लित होता है तो संपूर्ण प्रकृति हमें खुश नजर आती है। यही इस नायक के साथ हुआ। उसे जीवन का उद्देश्य मिला। अब वह खिड़की को केवल खिड़की नहीं बनी रहने देगा। अब खिड़की से बाहर निकलना होगा। यहां पर 'वासुदेव कुटुंब' वाली उक्ति चरितार्थ होती है। वह अपनी फ्रेम से बाहर निकाला। जहां खुशियां उसका इंतजार कर रही थी जिन्हें अब तक वह पराया समझता था, आखिर वे ही उसके सुख–दुख के साथी थे। वह अकेला–अकेलेपन का दंश झेल रहा था। विशेष कर यह कहानी आज के दौर में जहां अवसाद के रहते लोग जो आत्महत्या जैसा कदम उठा रहे हैं, यह उन्हें प्रेरणा प्रदान करती है।

जीवन भुरभुरी क्यों हैं?' कहानी के अंतर्गत लेखक ने स्त्री मनोविज्ञान तथा स्त्री के अंतद्वंद्व को लेकर स्त्री जीवन की विसंगतियों को सजींदगी के साथ चित्रित किया है। इस कहानी में कोकिलाबेन के पति राजन को अपराधी साबित हो जाने पर चौदह माह की सजा हो जाती है। इन चौदह माह के दौरान कोकिला बेन किन–किन संघर्षों से गुजरती है, उसका संघर्ष का सूक्ष्म चित्रण लेखक ने किया है। कोकिला बेन दोहरा संघर्ष झेलती है। एक ओर पति के अपराधी होने का, घर की व्यवस्था तथा समाज का सामना करना, वहीं दूसरी ओर पति की बेवफाई का, आखिर उसने एक भारतीय पतिव्रता नारी होते हुए इन सभी कर्तव्यों को ईमानदारी से निभाती है।

हमारे समाज की हम बात करें तो ऐसे अवसरों पर सहयोग के हाथ कम उठते हैं। चारों ओर से गर्म हवाएं आती है। समाज अपराधी के परिवार को भी अपराधी साबित करने पर तुल जाता है। राजन के जेल जाने पर समाज द्वारा कदम–कदम पर उसके परिवार को उलाहना मिलता है, जिससे उन्हें हर जगह अपमान सहन करना पडघ्ता है। कोकिला बेन का परिवार इस दंश को झेल रहा है। आज समाज उसके परिवार के लिए जहरीला सर्प की तरह कुंडली लिए बैठा है। "अजी यह तो पूरा खानदान ही मुजरिमों का है। एक भाई ने अपने मालिक का पूरा बिजनेस हथिया लिया, बड़े साले ने दिवाला निकाल कर लाखों खा लिए और आज देखिए न जाने कब से पोस्ट आफिस को चूना लगा रहा था.....देखों तो कोकिला बेन क्या रोने का नाटक कर रही है। एक लाख पाउंड पार कर मगरमच्छ के आंसू बहाते उसे लाज नहीं आती।" सबसे बड़ी बात यह है कि राजन चौदह माह बाद जेल से छूट गया। उसका जीवन सामान्य गति से चलने लगा। मगर आज भी कोकिला बेन का संघर्ष जारी है।

व्यक्ति की लालसा बुरी नहीं है। वह लालसा को किस तरह पूरा करता है, यह इस बात पर निर्भर करता है। बात–बात में पत्नी को नीचा दिखाना, मानों वह अपना पौरुष समझता है। उसके बाद भी कोकिला बेन सब कुछ सहन कर रही है। जैसे पत्नी सहन करती है। किन्तु पति के अपराध में बार–बार आयरिश महिला का नाम आना उसकी भावनाओं को जख़्मी कर जाता है। आखिर कौन है वह.....? यह उसके चिंतन का विषय है। उसका ह्रदय जो ज़ख्मी हुआ है, पति के इस विश्वासघात से, अब समाज से भी आंखें चुरानी होगी। पूरी कथा इसी को केंद्र में लेकर चलती है।

जब पति पत्नी के रिश्तों में किसी तीसरे की पदचाप सुनाई देने लगती है तो उनके आपसी रिश्ते ही नहीं पूरा परिवार ही बिखर जाता है और स्त्री मेहनत से बसी अपनी गृहस्थी को बिखरते देख भला कैसे न चिंतित होती? कोकिला बेन की चिंता निम्नलिखित पंक्तियों के माध्यम से देखी जा सकती है, "कोकिला बेन को चिंता है पता नहीं किस की नजर लग गई। अच्छी भली जिन्दगी चल रही थी। अब न जाने कल अखबारों में क्या–क्या छपेगा। अगर गुजरात समाज में छप गया तो सारे समाज में वायरस फैल जाएगा।" इन पंक्तियों में कोकिला बेन का भय समाज के प्रति नजर आता है। समाज का भय ही वह भय है, जो एक इंसान को सही रास्ते पर चलने के लिए बाध्य करता है।

इसी कहानी में एक स्थान पर कोकिला बेन का अंतद्वंद्व देखने को मिलता है। जो निम्नलिखित पंक्तियों में दृष्टव्य है, "कोकिला बेन आप से पूछ बैठी है कि प्रतीक्षा क्यों कर रही है राजन की। उसे आना है आ जाएगा। क्या उसके कहने पर गया है जो वह इंतजार में विरह गीत गाए, डायनिंग टेबल पर राजन की पंसद के डिनर

सेट की प्लेटे सजा रही है, आयरिश ब्लॉड का चेहरा आंखों के सामने आने लगता है। कोकिला के दिमाग में बस एक सवाल है मुझ में क्या कभी थी।" कोकिला बेन मन ही सोचती है कि उसने राजन के साथ एक लम्बा जीवन जिया है। कैथलीन के आने पर कोकिला बेन का घर तहस–नहस हो जाता है।

कोकिला बेन अपने पति के अपराधी हो जाने पर व मानसिक तनाव झेलती है। तब राजन का भाई अशोक कोकिला बेन को समझाता है। यह कथन उनका व्यवहारिक है। यह कथन केवल कोकिला बेन के लिए ही नहीं बल्कि सभी के लिए समझने और अनुकरण करने का है। "भाभी देखिए, अब खबर छपी है तो लोग बातें तो करेंगे ही। लेकिन लोगों की याददाश्त बहुत कमजोर होती है। आज अपने राजन के बारे में बात करेंगे तो कल उनको कोई दूसरा राजन मिल जाएगा। दुनिया में राजनों की कमी नहीं है।" इस कथन से स्पष्ट होता है कि विषय किसी देश की सीमा से बंधा नहीं है।

निष्कर्ष :-

तेजेन्द्र शर्मा की कहानियां देखने में तो छोटी–छोटी लगती है लेकिन जरूरी बातों के बीच नई राह बनाती हुई चलती है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। सही मायने में प्रवासी साहित्यकार हिंदी साहित्य को समृद्ध कर पाठकों लोगों को पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति, वहां की प्रशासनिक व्यवस्था व उस समाज की विशेषताओं से अवगत करवाने का कार्य कर रहे हैं। लेखक ने इस कहानी संग्रह में लंदन की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर वहां रह रहे प्रवासी भारतीय परिवारों व अन्य देशों से आकर बसे प्रवासियों की समस्याओं को उजागर किया है। जिसमें अकेलेपन की समस्या, वहां की प्रशासन व्यवस्था व स्त्री जीवन की समस्याओं को उजागर किया है। इनकी कहानियों से एक बात स्पष्ट होती है कि इन्सान कहीं भी रहे भारत, लंदन या कहीं ओर समस्याएं एक ही है। कारण है मानव का मनोविज्ञान। मानव का मनोविज्ञान एक ही है।

संदर्भ :-

1. www.bohalshodmanjusha.com., Aug. 2023, Page. 45.
2. निर्मल वर्मा, धुंध में उठती धुन, पृ. 14
3. तेजेन्द्र शर्मा, सपने मरते नहीं, पृ.
4. वही, पृ. 28
5. वही, पृ. 30
6. वही, पृ. 35
7. वही, पृ.
8. वही, पृ. 38

ईमेल – madhudhillon87@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 17-24

Miscibility Studies of Polymer Solution Blends

Gautam Kumar Sah
C.M. Science College, Darbhanga, India

Abstract :

Coefficient of Viscosity of polymer solution blends at 303.15 K and 313.15 K have been measured. Measured parameters are used to estimate few other related physical quantities like Huggin´s constants and interaction parameters μ and α proposed by Chee and Sun et al. to identify the molecular interaction arising in the mentioned Polymer blends in solution form. The peculiar deviation confirms the structural changes in the solution of blends.

Key words : Viscosity, polymer blend, molecular interaction.

1. INTRODUCTION :

In continuation of our work [1] on miscibility study of blends PVC/PMMA by viscometry etc. we have now studied the miscibility of PC/PMMA blends in THF by viscometry, FTIR and SEM analysis. As we know, Polymer blending is one of the most important contemporary ways for the development of new polymeric materials. Schurer *et al* [2] studied the addition of methyl methacrylate and its polymer (PMMA) to improve the thermal and mechanical properties of PVC, who concluded that PVC was partially miscible with atactic and syndiotactic PMMA but almost completely immiscible with

isotactic PMMA. Polymers are playing an important role in all branches of industry today. Miscibility characteristics of Methylcellulose (MC) and Poly (vinyl alcohol) (PVA) have been investigated by viscometry, ultrasonic velocity, density and refractmetric techniques at 30°C and 40°C. Blend films of Methylcellulose/ Poly (vinyl alcohol) were prepared by solution casting method and studied by Scanning electron microscopy (SEM)[3]. PVC/ PMMA polymer blends are characterized at molecular level by FTIR-ATR spectroscopy providing important insight into the molecular interactions responsible for the enhancement of its mechanical properties. The changes in mechanical properties are reflected by the changes in the FTIR-ATR spectrum. The mechanical properties of such poly blends revealed a substantial increase in Young's modulus and ultimate tensile strength after initial drop at 10% of PMMA. A comparative study of mechanical properties of PVC/ PMMA polymer blends with different weight percentage are carried out and their results are co-related with FTIR – ATR spectral studies and important conclusions are drawn about the possible molecular interactions between constituent polymers[4]. The manifestation of superior properties depends upon the miscibility of homo-polymers at the molecular scale. The miscibility results in different morphology of the blends, ranging from a single phase system to two phase or multiphase systems. Polymer nanocomposite prepared by melt compounding using Twin screw extruder [5] exhibit superior mechanical, electrical, thermal, and morphological properties as shown by DSC, TGA, FTIR, SEM analysis. The basis of polymer-polymer miscibility may arise from several different interactions, such as hydrogen bonding, dipole-dipole forces, and charge transfer complexes for homo-polymer mixtures. In present case also, FTIR study shows that PPO/PS blends are physical blends, because there is no only obvious interactions between components. SEM study supports the formation of physical blends of PPO and PS.

2. Experimental :

Viscometry :- A dilute polymer solution of 1% w/v was prepared for viscometric studies. Stock solutions of polymers and the blends of different compositions, 0/100, 20/80, 40/60, 60/40, 80/20 and 100/0 were prepared in benzene. Viscosity measurements at 303.15 K and 313.15 K were carried out using an Ostwald viscometer. The total weight of the two components in the solution was always maintained at 1 g/dL. Different temperatures were maintained in a thermostat bath, with a thermal stability of ±0.05 K.

2.1. Results and discussion :

Viscometry is a simple and effective technique for monitoring the interactions in polymer blend's solutions. From viscometric measurements, relative and reduced viscosities of pure polymers and their blends were obtained. Figures 1 and 2 shows the Huggin´s plots for the PPO/PS at 303.15 K and 313.15 K for different weight fractions of polymer 1 and polymer 2 (W_1: W_2), respectively. The values of K_H were determined by extrapolation to infinite dilution of the Huggin's plots and the values of 'b' are the slopes of the plots. This has been compared by results obtained from calculation from Huggin´s equation. The figure indicates the considerable higher slope variation for blend compositions. This may be attributed to the mutual attraction of macromolecules in solution, because of the increase of hydrodynamic and thermodynamic interaction. Hence blend is found to be miscible, Below this critical concentration, a sharp decrease in the slope is observed in the Huggin's plot because of the phase separation. To quantify the miscibility of the polymer blends Chee (1990)[6] suggested that the general expression for interaction parameter when polymers are mixed in weight fractions W_1 and W_2 is as follows :

$$\Delta B = \frac{b - \bar{b}}{2w_1w_2}$$

Where $\bar{b} = W_1b_{11} + W_2b_{22}$ in which, b_{11} and b_{22} are the slopes of the viscosity curves for the pure components. The coefficient b is related to the Huggins's coefficient K_H as

$b = K_H [\eta]^2$

for ternary system, the coefficient b is also given by

$b = w1^2 b11 + w2^2 b22 + 2\, w1w2b12$

where b_{12} is the slope for the blend solution. Using these values, Chee (1990) defined a more effective parameter as follows

$$\mu = \frac{\Delta B}{\{[\eta]_2 - [\eta]_1\}^2}$$

where $[\eta]_1$ and $[\eta]_2$ are the intrinsic viscosities for the pure component solutions. The blend is miscible when $\mu \geq 0$ and immiscible $\mu < 0$.

The reduced viscosity data for blends at different compositions at 303.15 K and 313.15 K have been recorded in tables 1 and 2 respectively. Recently, Sun et al. (1992) have suggested a new formula for the determination of polymer miscibility as follows:

$$\alpha - km - \frac{k_1[\eta]^2{}_1 w_1{}^2 + k_2[\eta]^2{}_2 w_2{}^2 + 2\sqrt{k_1 k_2}\,[\eta]_1[\eta]_2 w_1 w_2}{\{[\eta]_1 w_1 + [\eta]_2 w_2\}^2}$$

Table 1.

The reduced viscosity data for and their blends at 303.15 K at different concentrations

Concentration (g/dl)	Composition of blends 303.15 K					
	100/0(PPO)	80/20	60/40	40/60	20/80	0/100(PS)
0.2	0.44980	0.42361	0.41808	0.48129	0.37266	0.34045
0.4	0.46270	0.43702	0.42466	0.51059	0.38470	0.34592
0.6	0.47560	0.45044	0.43125	0.53988	0.39811	0.35133
0.8	0.48850	0.46385	0.43783	0.56918	0.40910	0.35681
1.0	0.50130	0.47727	0.44442	0.598481	0.42177	0.38308

Table 2.

The reduced viscosity data of blends in benzene at 313.15 K at different concentrations

Concentration (g/dl)	Composition of blends 313.15 K					
	100/0(PPO)	80/20	60/40	40/60	20/80	0/100(PS)
0.2	0.40174	0.3645	0.3583205	0.4446483	0.3583594	0.32441

		5834	29	92	87	
0.4	0.42354	0.3891 3833	0.3703240 26	0.4671860 64	0.3703266 97	0.33009
0.6	0.44533	0.4137 1831	0.3823275 23	0.4897237 36	0.3822938 99	0.33577
0.8	0.46713	0.4382 9830	0.3943310 2	0.5122614 08	0.3942611 08	0.34145
1.0	0.48893	0.4628 7829	0.4063345 18	0.5347990 81	0.4062283 14	0.37543

Where K_1, K_2 and Km are the Huggins's constants for individual component 1, 2 and the blend respectively. The long-range hydrodynamic interactions are considered while deriving this equation. Sun et al. (1992) have suggested that a blend will be miscible when $\alpha \geq 0$ and immiscible when $\alpha < 0$.

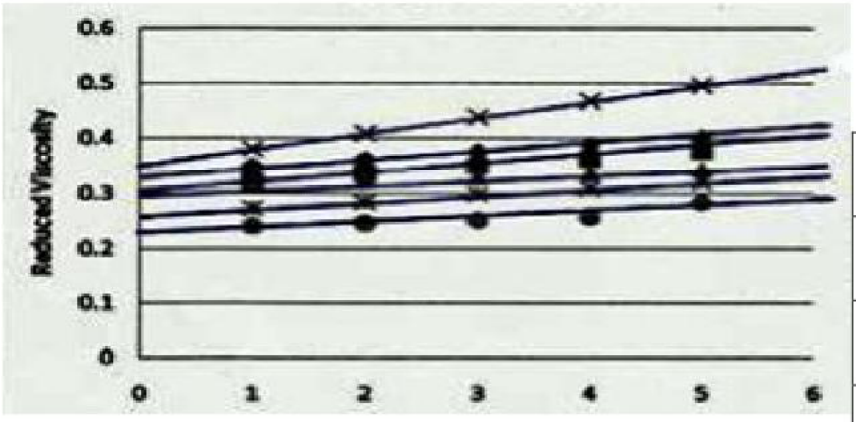

Figure 1. Plot of ηsp/C *vs.* concentration for ternary systems at 303.15 K

100/0
80/20
60/40
40/60
20/80
0/100

100/0
80/20

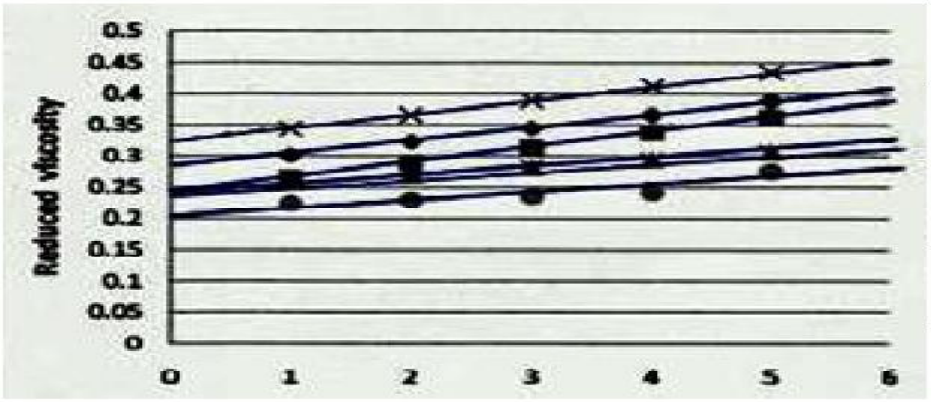

Concentration (g/dl)

Figure 2. Plot of ηsp/C *vs.* concentration for ternary systems at 313.15 K

Table 3 Interaction parameters and Huggins's constants at 303.15 K.

PPO/PS 303.15K	[η]	K_H	μ	α
100/0(PC)	0.43668	0.67181	-	-
80/20	0.41019	0.79711	2.38991	0.085999
60/40	0.411492	0.43934	-5.35556	-0.44108
40/60	0.45199	2.182301	16.55101	0.52952
20/80	0.36047	1.90384	3.35459	0.071105
0/100(PMMA)	0.32615	1.95694	-	-

Table 4 Interaction parameters and Huggins's constants of Blends at 313.15 K.

PC/PMMA 313.15K	[η]	K_H	μ	α
100/0(PC)	0.37995	2.39054	-	-
80/20	0.33997	3.13406	15.06064	0.84914

60/40	0.34631	1.989210	-12.07531	-0.48944
40/60	0.42211	2.08609	14.34568	-0.38553
20/80	0.34639	1.985617	-5.81296	-0.478072
0/100(PMMA)	0.306702	2.35465	-	-

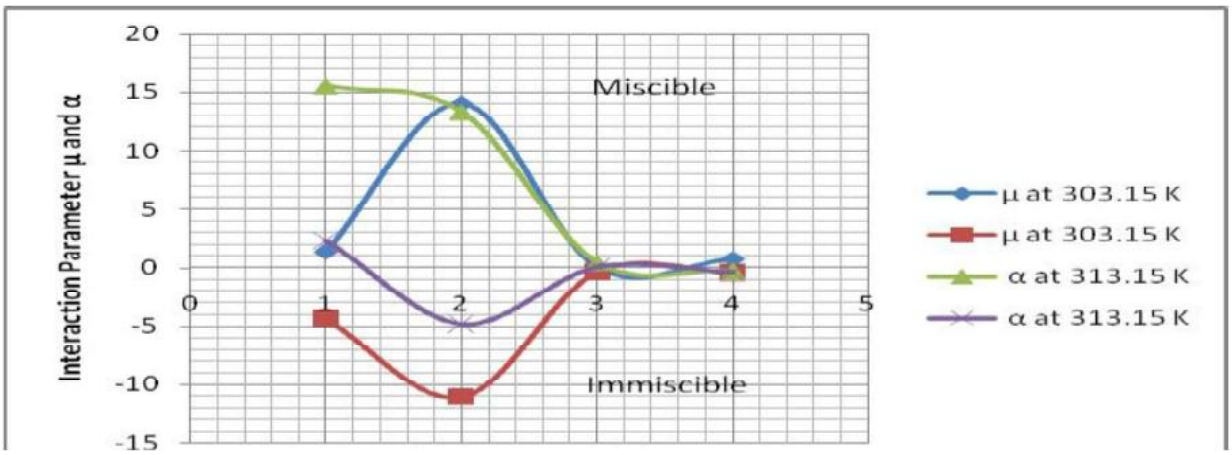

Figure 3. Effect of temperature on the interaction parameter μ and α of blend in at 303.15 K and 313.15 K.

3. Conclusion :

Viscometric study shows the miscibility of blends of all compositions except few at both temperatures. However, at high temperature small negative values of interaction parameter not in consistent manner at some composition indicate some degree of immiscibility. Hence, composition blend shows miscibility.

References :

1. Gautam kumar sah., Ashok kumar Gupta. Miscibility study of blends PVC/PMMA by viscometric etc. Nanosystem: Physics, Chemistry, Mathematics, 2013, 4 (2), P. 288–293.

[2. J.W. Shurer., A. de Boer., and G. Challa. Influence of tacticity of poly (methylmetharylate) on the compatibility of poly (vinyl chloride)", Polymer, 16, 201 (1975).

3. GS. Guru1., P. Prasad., HR. Shivakumar., and SK. Rai., Miscibility, Thermal and Mechanical Studies of

Methylcellulose/Poly (vinyl alcohol) Blends IJRPC 2012, 2(4),P. 957-968.

4. Patel Gaurang, M. B. Sureshkumar and N. L. Singh. Spectroscopic Correlation of Mechanical Properties of PVC/PMMA Polymer Blend Journal of International Academy of Physical Sciences Vol. 14 No.1 (2010), PP. 91-100.
5. Gautam kumar Sah., S.Vijaykanth., Ashok kumar Gupta. Mechanical, Electrical, Thermal, and Morphological Properties of PP, PP-g-Mah and Mica silicate Nanoclay Nanocomposite: J. Environ. Nanotechnol. Volume 1, No. 1 (2012) pp. 13-19.
6. Chee, Sun et al., Sun Z., Wang W., Feng Z. Criterion of polymer-polymer miscibility determined by viscometry. Eur. Polym. J., 28(10), (1992) P. 1259–1261.
7. K. Kaniappan., S.Latha. Certain investigation on the formulation and characterization of PS/PMMA blends International journal chemtech research 2011, 3(2), P.708-711.
8. Mohammad Saleem Khan., Raina Aman Qazi., Mian Said Wahid. African Journal of Pure and Applied Chemistry Vol. 2 (4), pp. 041-045, April, 2008.
9. Silverstein, R.; Bassler, G. Spectrometric Identification of Organic Compounds; Wiley: New York,1963.
10. Schnell, H. Chemistry and Physics of Polycarbonate; Interscience: New York, 1964.
11. Adoor S G., Manjeshwar LS., Krishna Rao KSV, Naidu BVK. J.appl polymer sci, 100 (2006) 535.

gautamdar@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 25-28

हिन्दी विज्ञापन लेखन के स्वरूप एवं प्रकार का अध्ययन

डॉ. महेश सिंह बारेठ
सहायक आचार्य, श्री खु ालदास वि ववद्यालय, पीलीबंगा, हनुमानगढ़।

ोध आलेख सार :-

विज्ञापन के स्वरूप का ध्यान हमें विज्ञापन निर्मित करते समय रखना चाहिए, क्योंकि विज्ञापन उपभोक्ता के सीधे दिमाग पर जाकर प्रभाव डालते हैं। किसी भी पत्रिका या समाचार पत्र के मुख पृश्ठ पर जो विज्ञापन छपते हैं वे उपभोक्ताओं को अधिक प्रभावित करते हैं। यही कारण है कि उपभोक्ता उपरोक्त सामान या वस्तु को खरीदने के लिए तैयार हो जाता है। इसीलिए विज्ञापनों का रोचक और आकर्शक होना जरूरी है।

मूल शब्द – विज्ञापन, स्वरूप एवं प्रकार।

भूमिका :-

विज्ञापन को तभी उत्तम माना जाएगा जब यह विज्ञापन के उद्देभयों की प्राप्ति में सहायक हो। विज्ञापन लेखन में उपभोक्ता तक संदेभा पहुँचाने तथा उत्पाद के पक्ष में निर्णय लेने के लिए विवभा करने की क्षमता होनी चाहिए। विज्ञापन अपने छोटे से रूप में बहुत कुछ समाहित किये रहते हैं। बहुत कम भाब्दों में बहुत कुछ कह जाते हैं विज्ञापन ग्राहकों के अवचेतन मन पर अपनी छाप छोड़ जाते हैं। विज्ञापन आलेख को इतना रुचिकर और आकर्शक होना चाहिए कि वह पाठक व श्रोता का ध्यान अपनी ओर आकर्शित कर ले। इसके लिए सुन्दर भाब्दों, मनमोहक चित्रों तथा आकर्शक नारों व भीर्शकों का प्रयोग किया जाना चाहिए। विज्ञापन आलेख ऐसा होना चाहिए जो लम्बे समय तक श्रोताओं और दर्भाकों को स्मरण रहे। ब्रान्ड का नाम, व्यावसायिक चिन्ह तथा पैकिंग महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। आलेख में इतनी भाक्ति होनी चाहिए कि वह ठोस तर्कों के आधार पर श्रोता की धारणा, विज्ञापित उत्पाद के पक्ष में बना सके। हिन्दी विज्ञापन लेखन का स्वरूप इतना संवदेनभील होना चाहिए कि वो लक्षित उपभोक्ता के हृदय को छू सके। इसके लिए परम्परा, राश्ट्रीयता, पौरूशत्व या नारीत्व के मनोभावों का उपयोग किया जाना चाहिए।

जीवन स्तर को ऊपर उठाने के लिए दिए गए भौक्षणिक संदेभा, विज्ञापनों के लिए काफी लाभदायक सिद्ध होते हैं खाना पकाने की गैस का प्रयोग कैसे करें, परिवहन साधनों में ईंधन कैसे बचाएं, पर्यावरण संरक्षण से संबंधित विज्ञापन इसी श्रेणी में आते हैं। विज्ञापन आलेख में श्रोता व दर्भाक को जो सर्वाधिक प्रभावित व आकर्शित करता है वह होता है आलेख का भीर्शक। भीर्शक में सम्पूर्ण विज्ञापन–संदेभा का सारांभा समाहित होता है भीर्शक का निर्माण काफी सोच–विचार के साथ करना चाहिए अधिकतर श्रोता या दर्भाक विज्ञापन पर मात्र एक नजर डालते हैं अतः भीर्शक को इतना आकर्शक, प्रभावी व रोचक होना चाहिए कि वह दर्भाक व श्रोता को विज्ञापन

की कथावस्तु पढ़ने/देखने को प्रेरित कर सके।

स्वरूप विज्ञापन लेखन में चित्रों का प्रयोग प्राचीन काल से किया जाता रहा है इसका महत्वपूर्ण कारण यह है कि चित्र ध्यानाकर्शण का सबसे सभाक्त माध्यम है। विज्ञापन की ओर श्रोता का ध्यान आकर्शित करने तथा आलेख में उसकी रुचि जगाने आदि के लिए विज्ञापन में चित्रों का प्रयोग किया जाता है। विज्ञापन–आलेख तैयार करने की प्रक्रिया को विज्ञापन लेखन कहते हैं। विज्ञापन लेखन के दो प्रमुख अंग होते हैं – प्रत्यक्षीकरण (दृभय कल्पना करना) तथा विज्ञापन आलेखन (कॉपीराइटिंग)। एक विज्ञापन में निम्नलिखित तीन मुख्य तत्व होते हैं– दृभय कल्पना, विज्ञापन आलेख व कलात्मक प्रस्तुति।

विज्ञापन आलेख स्पश्टवादी होना चाहिए। स्पश्टवादी आलेख में सरल व तार्किक ढंग से संदेभा को श्रोता या दर्भाक के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। इसमें तथ्यों को सीधे व स्पश्ट रूप से बताया जाता है और कृत्रिम व कलात्मक भाशा का प्रयोग नहीं करते हैं। चूँकि इसमें मुख्य बिन्दु तथ्य होते हैं अतः इसे तथ्यात्मक आलेख भी कहते हैं। विज्ञापन का आलेख तैयार करते समय आलेख लेखक को पांच तथ्यों (कब, कैसे, क्या, कौन, कहाँ) पर भली–भाँति विचार व मनन कर लेना चाहिए, क्योंकि इससे एक प्रभावी उद्देभयपूर्ण आलेख लेखन में सहायता मिलती है। विज्ञापन की विशय वस्तु का चयन उत्पाद गुणवत्ता व मूल्य आदि के आधार पर किया जाता है।

विज्ञापन का आज के युग में अपना अलग ही स्वरूप है प्रायः हम देखते हैं कि विज्ञापन कला है और विज्ञापन व्यवसाय भी। व्यवसायिक उद्देभयों को वहन करते हुए भी अपनी संरचना और प्रस्तुति देने में सभाक्त माध्यम है। विज्ञापन बहुमुखी होते हैं सभी पक्षों के लिए लाभदायक होते हैं। सामाजिक चेतना विज्ञापनों से समाज में चेतना जाग्रत होती है।

महत्व :–

'वर्तमान समय में विज्ञापन एक महान व्यापार है इसमें कई करोड़ व्यक्ति किसी न किसी रूप में जुड़कर अपनी जीविका चला रहे हैं केवल जनता के समक्ष अपने उत्पादक और उसके कार्यों की कहानी प्रस्तुत करने के लिए अनुमानतः प्रतिवर्श विज्ञापन पर 15 खरब डॉलर खर्च किये जाते हैं। भारत का जहाँ तक संबंध है वर्श 1984 में 403 करोड़ खर्च किए गए आभाा है कि इस भाताब्दी के अंत तक यह खर्च 500 करोड़ तक पहुँचेगा एक प्रभावी विज्ञापन अपने सकारात्मक योगदान के रूप में बेचने वाले तथा खरीदने वाले दोनों को ही आर्थिक लाभ पहुंचाने में सक्षम होता है।' अतः हम यह कह सकते हैं कि विज्ञापन एक प्रकार से व्यापार की दृश्टि से बोलने वाला मनुश्य है। विज्ञापन के बिना व्यापार नहीं किया जा सकता, क्योंकि विज्ञापन के द्वारा ही हम सूचनाओं या खबरों को मानव तक पहुंचाते हैं जिससे उपभोक्ता सामान या वस्तु खरीदने के सम्बन्ध में कोई निर्णय लेता है। इस प्रकार विज्ञापन एक प्रभावभााली माध्यम है।जो विज्ञापन को लाभ पहुँचाने के लिए आवश्यक है। 'विज्ञापन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक प्रगति व विकास का आयना बन रहे हैं। सामाजिक विपणन की अवधारणा के तहत सामाजिक एवं विकास कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिए विपणन के दृश्टिकोण को अपनाने पर सामाजिक विपणन और विज्ञापन का संबंध सुदृढ़ हुआ किसी सामाजिक विचार कार्यक्रम और योजनाओं को प्रभावी बनाने के लिए उसका लाभ सामान्य जनता तक पहुँचाने के लिए विज्ञापन तंत्र पर पूरा ध्यान दिया जाने लगा। सामाजिक महत्व के विभिन्न मुद्दों के प्रचार–प्रसार के लिए विज्ञापन की भूमिका प्रमुख हो गई हैं।'

आज का समाज कम्प्यूटर युग में जी रहा है विज्ञापन जनसंपर्क का सबसे प्रभावशाली माध्यम है। जनसंचार के समस्त संसाधनों में विज्ञापन को बहुत महत्व दिया जाता है। विज्ञापनों का सबसे अधिक प्रभाव युवाओं पर ही पड़ता है पहले सुन्दर दिखने की चाहत केवल महिलाओं और लड़कियों में पाई जाती थी, लेकिन विज्ञापनों ने अब पुरुशों में सुन्दर दिखने की ललक पैदा कर दी है।

विज्ञापन एक भाब्द, चित्र, पत्रिका, दूरदर्भान अथवा मानव व्यवहार का मनोवैज्ञानिक अनुसंधान मात्र ही नहीं है, बल्कि विज्ञापन एक ऐसा सम्प्रेशण का भाक्तिभाली माध्यम है यदि आप समाज में बहुत बड़े वर्ग से कुछ करवाना चाहते हैं तो विज्ञापन व्यक्तियों को निरंतर अपने उद्देभयों के अनुरूप मनाने की एक कला है। विज्ञापन व्यापार की दृश्टि से बोलने वाला मानव है। यह इस प्रकार की सूचनाओं को प्रदान करता है जिसमें उपभोक्ताओं खरीदने के संबंध में सही निर्णय ले सके। विज्ञापन एक प्रभावभाली माध्यम है, जिसके आधार पर उत्पादित वस्तु के सम्बन्ध में जनता की स्वीकृति निर्मित की जा सके।'

इस प्रकार आधुनिक समय में विज्ञापन का स्वरूप हमें हर क्षेत्र में दिखाई देता है और वर्तमान समय में हमें और हमारी भावी पीढ़ी को विज्ञापन का ज्ञान होना अति आवभयक है। क्योंकि ज्ञान के अभाव में हम आगे नहीं बढ़ सकते हैं। विज्ञापन का ज्ञान हमें अपने सीमित धन को असीमित विकल्पों में से किसी एक उचित विकल्प पर खर्च करने का सहयोग करता है। विज्ञापन के द्वारा ही हम एक समझदार, चतुर बहुमुखी प्रतिभा के धनी सर्वगुण सम्पन्न उपभोक्ता बन सकते हैं। विज्ञापन की जानकारी होना अच्छे नागरिक की पहचान होती है।

सारांश :-

'विज्ञापन का स्वरूप व्यवसायिक और रचनात्मक दोनों ही है व्यवसायिक उद्देभयों को वहन करते हुए भी अपनी संरचना और प्रस्तुति में विज्ञापन सृजनात्मक माध्यम है इसका संबंध लोगों के सपनों, आभाओं रुचियों और आवभयकताओं से है उनके जीवन जगत, संस्कृति और रिवाजों से भी है इसीलिए विज्ञापन की संरचना के लिए विभिश्ट रचनात्मक प्रतिभा चाहिए जो भाव और भाशा की क्षमताओं को संचार तकनीकों से प्रभावभाली ढंग से जोड़ पाए भाशिक अभिव्यक्ति के रूप में विज्ञापन की अपनी अलग सत्ता है।'

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

क्र.सं.	पुस्तक	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्श
1.	कामकाजी हिन्दी का स्वरूप	डॉ. भिल्पा महाले	कादम्बिरी प्रकाभान दिल्ली	2002
2.	संचार माध्यमों में हिन्दी का प्रयोग	डॉ. लक्ष्मीकान्त पाण्डेय	साहित्य रत्नालय गिलिभा बाजार कानपुर	2003
3.	मीडिया और समाज	संजय गुलावठी	सन्मार्ग प्रकाभान	2003
4.	रंगकर्म और मीडिया	डॉ. जयदेव तनेजा	तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली	2003
5.	इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में कैरियर समाचार लेखन, फीचर लेखन	पी.के. आर्य	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली	2003
6.	प्रयोजन मूलक हिन्दी व्यवहारिक हिन्दी	ओम प्रकाभा सिंघल	जगतराम एण्ड संस प्रकाभान नई दिल्ली	2003

	व्यवहारिक हिन्दी			
7.	विभव भाशा हिन्दी	हजारी प्रसाद द्विवेदी	प्रभात प्रकाभा दिल्ली	2003
8.	हिन्दी और हम	विद्यानिवास मिश्र	प्रभात प्रकाभा दिल्ली	2003
9.	जनसंचार : कल आज और कल	चन्द्रकान्त सरदाना	प्रभात प्रकाभा दिल्ली	2003
10.	जनसंपर्क विज्ञापन एवं प्रसार माध्यम	एन.सी.पंत	तक्षभिला प्रकाभान नई दिल्ली	2004
11.	आधुनिक विज्ञापन और जनसंपर्क	डॉ. तारेभा भाटिया	तक्षभिला प्रकाभान नई दिल्ली	2004
12.	विज्ञापन की दुनिया	कुमुद भार्मा	प्रतिभा प्रतिश्ठान नई दिल्ली	2004

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 29-33

FASHION FORECASTING

Daljeet Kaur
Assistant professor in fashion design department
College Dasmesh Girls College, Chak Alla Baksh, Mukerian, Hoshiarpur, Punjab.

Introduction :

Fashion forecasting is like predicting the weather, but for clothing styles. It involves anticipating what people will want to wear in the future, including popular colors, fabrics and designs. This helps designers and stores prepare items that customers will love. Fashion forecasting is a critical aspect of the fashion industry, involving the prediction of future trends to guide designers, manufacturers and retailers in their decision-making processes. Below is an overview of fashion forecasting, its importance, methodologies, types, key agencies, and the specific role of color forecasting.

Why is Fashion Forecasting Important?

1. **Staying Trendy** : By knowing what styles will be popular, brands can create clothes that match what customers are looking for, keeping them fashionable and satisfied.
2. **Smart Planning** : Predicting future trends allows companies to plan their production efficiently, reducing waste and ensuring they have the right products available.
3. **Competitive Edge** : Brands that can foresee upcoming trends can introduce new styles before others, attracting more customers and standing out in the market.
4. **Understanding Customers** : By studying what consumers might want in the future, companies can better meet their needs, leading to increased loyalty and satisfaction.

In simple terms, fashion forecasting helps the industry stay ahead by understanding and preparing for what customers will want to wear next.

Definition and Importance of Fashion Forecasting :

Fashion Forecasting is the process of predicting upcoming trends in the fashion industry, including colors, fabrics, textures, materials, prints, accessories, footwear, street style, and other styles that will be presented on the runway and in stores for upcoming seasons.

Steps in Fashion Forecasting :

Fashion forecasting follows a structured process to predict future trends accurately. The steps involved are :

1. Research and Data Collection - The first step is gathering information about current trends, consumer preferences, and 'market behaviour. Sources of research include: Fashion shows and designer collections , Street fashion and social media trends **,** Market reports and sales data **&** Cultural and economic influences.

2. Identifying Key Influences - Fashion trends are influenced by multiple factors, such as :

- **Social and Cultural Changes :** Events, movements, and lifestyles shape fashion choices.
- **Technology :** Innovations in fabrics, digital fashion, and AI impact future trends.
- **Art and History :** Past fashion styles often come back in new forms.

3. Analyzing Past Trends - Looking at previous fashion cycles helps predict future styles. For example, vintage styles often return after a few decades with modern updates.

4. Observing Consumer Behavior- Understanding what people are wearing and buying helps predict what will sell in the future.

Fashion forecasters study : Consumer preferences through surveys and online shopping data **,** Influencer and celebrity fashion choices **&** Social media engagement on fashion-related posts.

5. Developing Trend Forecasts - Based on the collected data, fashion experts create reports predicting upcoming trends in : Colors, Fabrics and textures, Silhouettes and garment styles, Accessories and footwear

6. Testing and Validation - Before launching new designs, brands often test trends through limited product releases, celebrity endorsements, or influencer marketing to see how consumers react.

7. Implementation and Production - After a trend is confirmed, companies use the forecast to create clothing lines, manufacture products, and market them to consumers.

Short-Term vs. Long-Term Forecasting :

Fashion forecasting is divided into short-term forecasting and long-term forecasting, each serving different purposes in the industry.

1. Short-Term Fashion Forecasting (Micro Trends)

Time : Frame : 1 to 2 years

Focus : Immediate and seasonal fashion trends

Scope : Involves specific details like colors, fabrics, and styles.

Application : Guides immediate design and merchandising decisions for upcoming seasons.

Purpose : Helps designers and brands prepare for the next fashion season.

Influences : Fashion shows, celebrity styles, social media trends, street fashion.

Example : Predicting pastel colors and floral prints for the next summer season.

Predicting the popularity of a specific color or fabric for the next summer season.

2. Long-Term Fashion Forecasting (Macro Trends)

Time Frame : 5 years or more.

Scope : Concentrates on broader societal shifts, technological advancements and cultural movements.

Application : Informs strategic planning, brand positioning, and long-term product development.

Focus : Broader social, cultural, and technological influences on fashion.

Purpose : Guides brands in long-term product development and sustainability strategies.

Influences : Global economic shifts, cultural movements, technology, climate change.

- **Example :** The rise of sustainable fashion and eco-friendly materials over the next decade

Anticipating the impact of sustainability on fashion over the next decade.

Both types of forecasting are essential for brands to stay relevant and plan their fashion collections effectively.

Agencies of Fashion Forecasting :

Fashion forecasting agencies specialize in analyzing and predicting upcoming trends in fashion, colors, fabrics, and consumer preferences. These agencies provide valuable insights to designers, brands, and retailers to help them stay ahead in the competitive fashion industry.

Top Fashion Forecasting Agencies :

1. WGSN (Worth Global Style Network) It is One of the most influential trend forecasting agencies in the world. Which Provides insights into fashion, beauty, interiors, and lifestyle trends. Uses data-driven research, runway analysis, and consumer behaviour studies.

2. Fashion Snoops It is a global trend forecasting agency offering reports on fashion, home and wellness trends. Mainly Focuses on cultural movements and emerging fashion influences. Also Provides in-depth consumer behaviour analysis.

3. Trend Union It is Founded by trend expert Li Edelkoort. Which is Specializes in long-term trend forecasting with a focus on sustainability and innovation. Works with luxury brands and high-end designers.

4. Pantone Color Institute It's renowned for color forecasting and the & "Color of the Year" selection. Provides color trend reports for fashion, interiors, and product design. Influences global

color trends across multiple industries.

5. Trendstop Trendstop Offers fashion, color, and material trend forecasts. Focuses on commercial insights for brands and retailers. Provides digital reports, AI-based predictions, and runway analysis.

6. Peclers Paris - A leading fashion consulting and trend forecasting agency based in France. Analyzes emerging fashion, beauty, and lifestyle trends. Works with major international fashion brands. These agencies help brands create trend-driven collections, making fashion forecasting an essential tool for industry success. These agencies employ experts who analyze various data points, including runway shows, street fashion, cultural events, and consumer behaviour, to predict future trends.

Color Forecasting in Fashion :

Color forecasting is the process of predicting the colors that will be popular in upcoming fashion seasons. It helps designers, manufacturers, and retailers choose the right color palettes for clothing, accessories, and home décor. Color Forecasting is a specialized area within fashion forecasting that focuses on predicting the colors that will be popular in upcoming seasons.

Why is Color Forecasting Important?

Influences Consumer Choices : Colors have a strong emotional impact on buyers. Guides Designers & Brands : Ensures collections match market trends. Affects Sales & Marketing: Helps create appealing products that attract customers. Enhances Brand Identity : Consistent color use strengthens brand recognition.

Steps in Color Forecasting :

1. **Research & Trend Analysis** Studying past color trends and their success in fashion field. Analyzing global fashion shows, street style, and social media.
2. **Identifying Influencing Factors :**
   Social and cultural movements (e.g., sustainability trends promoting earthy tones).
   Economic conditions (e.g., bright colors during economic booms, neutral tones in recessions).
   Technological advancements (e.g., digital fashion inspiring neon and metallic shades).
3. **Developing Color Palettes -** Forecasting agencies create seasonal color palettes for designers. Colors are categorized into primary, accent, and neutral shades.
4. **Testing & Market Feedback** Brands test color popularity through limited product launches. Consumer response helps finalize color trends.

Key Agencies in Color Forecasting :

- **Pantone Color Institute** Announces the Color of the Year and provides global color trend reports.

2. **WGSN & Color** – Collaborate to predict color trends 2+ years in advance.

3. **Trend Union** – Focuses on long-term color trends with cultural influences.

Examples of Color Forecasting in Fashion :

- **Pantone's Color of the Year 2023 :** Viva Magenta – Symbolizing boldness and optimism.
- **Neutral & Earthy Tones :** Growing in popularity due to the rise of sustainable fashion.
- **Metallic & Futuristic Colors :** Influenced by digital and AI-driven designs.

Conclusion :-

Color forecasting is a crucial tool in the fashion industry. It ensures that fashion brands create collections that resonate with consumers, align with cultural influences, and stay ahead in the competitive market.

In conclusion, fashion forecasting is an essential practice that enables industry stakeholders to anticipate and respond to evolving consumer preferences and market trends. By understanding and applying forecasting insights, businesses can make informed decisions that drive success in the dynamic world .

Personal details
Name – Assistant professor Daljeet Kaur
Assistant professor in fashion design department
Topic - Fashion forecasting
Subject – Introduction to Fashion Merchandising
Email - daljeetkaur10399@gmail.com
Phone no 9877606345

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 34–39

ग्रामीण समाज में महिलाओं की आर्थिक स्थिति का अध्ययन (मिर्जापुर के संदर्भ में)

डॉ. चन्द्रशेखर सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, समाज कार्य विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

प्रस्तावना सारांश (Abstract) :

भारत के ग्रामीण समाज में महिलाएं पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक संरचना की रीढ़ मानी जाती हैं। वे कृषि, पशुपालन, कुटीर उद्योग एवं असंगठित क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं, किंतु उनकी आर्थिक स्थिति आज भी उपेक्षित बनी हुई है। सामाजिक रुढ़ियाँ, संसाधनों तक सीमित पहुँच, शिक्षा की कमी और निर्णय लेने की प्रक्रिया से वंचित रहना – ये सभी कारक महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण में बाधक बनते हैं।

यह शोध मिर्जापुर जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की आर्थिक स्थिति का विश्लेषण करता है। अध्ययन में यह समझने का प्रयास किया गया है कि ग्रामीण महिलाएं किन–किन आर्थिक गतिविधियों में संलग्न हैं, उनके आय स्रोत क्या हैं, और वे आर्थिक निर्णयों में किस हद तक भागीदारी करती हैं। इसके अतिरिक्त, यह शोध यह भी मूल्यांकन करता है कि क्या सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाएँ – जैसे स्वयं सहायता समूह (SHG), मुद्रा योजना, आजीविका मिशन आदि – महिलाओं की आर्थिक स्थिति को सुधारने में प्रभावी सिद्ध हो रही हैं या नहीं। शोध में वर्णनात्मक व विश्लेषणात्मक विधियों का प्रयोग करते हुए प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों के माध्यम से मिर्जापुर की ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक वास्तविकता को उजागर करने का प्रयास किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष नीति निर्माताओं एवं सामाजिक संगठनों को महिला सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करेंगे।

परिचय (Introduction) :

भारत जैसे विकासशील देश में ग्रामीण क्षेत्र देश की रीढ़ माने जाते हैं, जहाँ जनसंख्या का एक बड़ा भाग निवास करता है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, चाहे वह कृषि कार्य हो, पशुपालन, कुटीर उद्योग या घरेलू श्रम। वे परिवार और समाज की आर्थिक संरचना का अभिन्न हिस्सा हैं, लेकिन इसके बावजूद उनकी आर्थिक स्थिति आज भी कमजोर और उपेक्षित बनी हुई है।

मिर्जापुर जिला, जो उत्तर प्रदेश का एक प्रमुख जनपद है, प्राकृतिक संसाधनों, हस्तशिल्प (विशेषतः कालीन उद्योग) और कृषि गतिविधियों के लिए जाना जाता है। यहाँ की अधिकांश महिलाएं प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आजीविका के किसी न किसी साधन से जुड़ी हुई हैं, लेकिन उन्हें उनके श्रम का उचित पारिश्रमिक, स्वायत्तता

और आर्थिक निर्णय लेने का अधिकार प्रायः नहीं मिल पाता।

इस अध्ययन का उद्देश्य मिर्जापुर के ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की वर्तमान आर्थिक स्थिति, उनके आय स्रोत, घरेलू एवं सामाजिक निर्णयों में भागीदारी, तथा सरकारी योजनाओं के प्रभाव का विश्लेषण करना है। यह शोध यह समझने का प्रयास करेगा कि सामाजिक–सांस्कृतिक ढांचे और लैंगिक असमानताओं के बीच महिलाएं किस प्रकार आर्थिक रूप से सशक्त हो रही हैं अथवा किन बाधाओं से जूझ रही है।

ग्रामीण भारत में महिलाएं पारंपरिक रूप से विविध आर्थिक गतिविधियों में संलग्न रहती हैं, किंतु उनके योगदान को औपचारिक रूप से पहचान नहीं दी जाती। वे खेतों में श्रमिक, घरेलू कारीगर, पशुपालक, छोटे व्यवसायों की संचालक तथा स्वयं सहायता समूहों की सदस्य के रूप में कार्य करती हैं। फिर भी, सामाजिक मान्यताओं, शिक्षा की कमी, संसाधनों तक सीमित पहुँच और निर्णय–निर्माण से बहिष्करण जैसी समस्याओं के कारण उनका आर्थिक सशक्तिकरण अधूरा रह जाता है।

मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश का एक अर्ध–पहाड़ी और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध जिला, विशेषतः ग्रामीण और जनजातीय समुदायों का घर है। यह जिला कालीन उद्योग, लौह अयस्क खनन, एवं कृषि कार्यों के लिए प्रसिद्ध है, जिनमें बड़ी संख्या में महिलाएं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संलग्न हैं।

इस शोध में यह जानने का प्रयास किया जाएगा कि मिर्जापुर के ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाएं किस प्रकार आय अर्जित कर रही हैं, उनकी वित्तीय स्वायत्तता का स्तर क्या है, और वे किन सामाजिक, आर्थिक व पारिवारिक अवरोधों का सामना करती हैं। इसके साथ ही, यह अध्ययन यह भी विश्लेषण करेगा कि वर्तमान में चल रही सरकारी योजनाएँ – जैसे राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM), महिला स्वयं सहायता समूह (SHGs), प्रधानमंत्री मुद्रा योजना इत्यादि – किस हद तक इन महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने में सहायक हो रही हैं।

यह अध्ययन न केवल महिलाओं की आर्थिक वास्तविकता को समझने में सहायक होगा, बल्कि नीतिगत स्तर पर सशक्तिकरण की दिशा में उपयोगी सुझाव भी प्रदान करे।

साहित्य समीक्षा (Literature Review) :

ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक स्थिति पर विभिन्न शोधों एवं रिपोर्टों ने यह दर्शाया है कि भारत में महिलाओं की भूमिका अर्थव्यवस्था में अत्यंत महत्वपूर्ण होते हुए भी अक्सर अदृश्य रहती है। सामाजिक–सांस्कृतिक परंपराएँ, लिंग आधारित भेदभाव, शिक्षा एवं संसाधनों की कमी महिलाओं की आर्थिक भागीदारी में बाधक बनती हैं।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (NSSO) और राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS) की रिपोर्टों से यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण महिलाओं की श्रम भागीदारी दर नगण्य है, विशेषतः असंगठित क्षेत्र में उनका कार्य तो अधिक होता है, परंतु उसकी गणना औपचारिक अर्थव्यवस्था में नहीं होती।

Boserup (1970) द्वारा किए गए अध्ययन में यह बताया गया कि विकास की प्रक्रिया में महिलाओं की भूमिका को नजरअंदाज किया गया है, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में। इसी प्रकार, Planning Commission (2007) की रिपोर्ट में कहा गया कि ग्रामीण महिलाओं को स्वरोजगार व कुटीर उद्योगों से जोड़ना, उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने का प्रमुख माध्यम हो सकता है।

उत्तर प्रदेश के संदर्भ में, कुछ क्षेत्रीय अध्ययनों (जैसे कि वाराणसी, चंदौली, सोनभद्र आदि जिलों पर केंद्रित) में पाया गया कि महिला स्वयं सहायता समूहों (SHGs) की भागीदारी ने महिलाओं की आय में तो वृद्धि

की है, परंतु सामाजिक स्वीकृति एवं निर्णयात्मक भूमिका अब भी सीमित है।

S. Tripathi (2015) द्वारा किए गए एक अध्ययन में मिर्जापुर जिले की महिलाओं के हस्तशिल्प उद्योग में योगदान का विश्लेषण किया गया, जहाँ यह पाया गया कि महिलाओं का श्रम कालीन उद्योग में अत्यधिक है, लेकिन वे श्रम के बदले में उचित पारिश्रमिक प्राप्त नहीं कर पातीं।

साहित्य इस बात की पुष्टि करता है कि ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने के लिए केवल आय के स्रोत उपलब्ध कराना पर्याप्त नहीं है, बल्कि सामाजिक चेतना, शिक्षा, संपत्ति पर अधिकार, एवं नीति–समर्थन भी उतना ही आवश्यक है।

अनुसंधान प्रविधि (Research Methodology) :

इस शोध का उद्देश्य मिर्जापुर जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की आर्थिक स्थिति का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करना है। इसके लिए अनुसंधान प्रविधि को इस प्रकार विन्यस्त किया गया है कि यह समस्या को व्यापक, गहन और तुलनात्मक दृष्टिकोण से समझा जा सके।

1. अनुसंधान का स्वरूप (Nature of Research) :

यह अध्ययन वर्णनात्मक (Descriptive) एवं विश्लेषणात्मक (Analytical) प्रकृति का है। इसमें प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकड़ों का उपयोग किया।

2. अध्ययन क्षेत्र (Area of Study) :

उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले के 3/4 चयनित गाँवों को अध्ययन क्षेत्र के रूप में चुना जाएगा, जहाँ ग्रामीण महिलाएं कृषि, कुटीर उद्योग, मजदूरी या स्वयं सहायता समूहों से जुड़ी हुई हैं।

3. नमूना चयन (Sampling Method) :

सुविधा जनित नमूना विधि (Purposive Sampling) का प्रयोग किया जाएगा। विभिन्न आय–वर्ग, जाति एवं कार्य–क्षेत्र से लगभग 50 ग्रामीण महिलाओं को नमूने के रूप में चुना।

4. डेटा संग्रहण की विधियाँ (Data Collection Methods) :

- **प्राथमिक डेटा :**
  - प्रत्यक्ष साक्षात्कार (Structured Interviews)
  - प्रश्नावली (Questionnaires)
  - मौखिक इतिहास/जीवन अनुभव (Oral Narratives)
- **द्वितीयक डेटा :**
  - जनगणना रिपोर्ट्स, सरकारी योजनाओं की रिपोर्ट, पूर्व शोध पत्र, SHG रिपोर्ट, NFHS व NSSO आँकड़े।

5. डेटा विश्लेषण (Data Analysis) :

संग्रहित आँकड़ों का विश्लेषण सांख्यिकीय (quantitative) एवं गुणात्मक (qualitative) दोनों पद्धतियों से किया जाएगा। आवश्यकतानुसार चार्ट, ग्राफ और सारणियों का उपयोग किया जाएगा। SPSS/Excel जैसे टूल्स का सहारा लिया है।

6. सीमाएं (Limitations) :

- अध्ययन एक सीमित भौगोलिक क्षेत्र (मिर्जापुर) तक सीमित होगा।
- उत्तरदाताओं की शिक्षा या सामाजिक दबाव के कारण उत्तरों में पूर्ण पारदर्शिता न हो पाने की संभावना है।

मुख्य निष्कर्ष (Findings) :

1. आर्थिक सहभागिता सीमित है :

मिर्जापुर के ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश महिलाएं अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत हैं, जैसे कृषि मजदूरी, पशुपालन, घरेलू काम आदि। परंतु, उन्हें श्रम का उचित पारिश्रमिक नहीं मिल पाता।

2. शैक्षणिक स्तर निम्न है :

Surveyed महिलाओं में साक्षरता की दर अपेक्षाकृत कम पाई गई, जिससे उनके लिए स्वरोजगार या अन्य आय के विकल्प सीमित हो जाते हैं।

3. निर्णय लेने की भागीदारी कम :

घरेलू आर्थिक निर्णयों में महिलाओं की भागीदारी सीमित है। अधिकांश परिवारों में पुरुष ही वित्तीय निर्णय लेते हैं।

4. स्व-सहायता समूह (SHGs) की सकारात्मक भूमिका :

जहाँ महिलाएं स्व–सहायता समूहों से जुड़ी थीं, वहाँ आर्थिक आत्मनिर्भरता, बचत करने की प्रवृत्ति और आत्मविश्वास में वृद्धि देखी गई।

5. सरकारी योजनाओं की जानकारी सीमित :

अधिकतर महिलाओं को सरकारी योजनाओं (जैसे मुद्रा योजना, उज्ज्वला योजना, जनधन योजना) की पूरी जानकारी नहीं थी, जिससे वे लाभ नहीं उठा पातीं।

6. सांस्कृतिक और पारिवारिक बंधन बाधक :

पारंपरिक सामाजिक संरचना और पितृसत्तात्मक सोच के कारण महिलाएं स्वतंत्र रूप से आर्थिक गतिविधियों में शामिल नहीं हो पातीं।

7. मजदूरी में लैंगिक असमानता :

पुरुषों की तुलना में महिलाओं को समान कार्य के लिए कम मजदूरी दी जाती है, जो आर्थिक विषमता को दर्शाता है।

8. स्वरोजगार में वृद्धि की संभावना :

कुछ क्षेत्रों में महिलाओं ने छोटे व्यापार (जैसे सिलाई, बुनाई, किराना दुकान) शुरू किए हैं, जिससे आर्थिक सुधार की संभावनाएँ दिखती हैं।

सारांश :-

यह शोध मिर्जापुर जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की आर्थिक स्थिति का समग्र अध्ययन करने का प्रयास है। ग्रामीण महिलाएं कृषि, पशुपालन, कुटीर उद्योग, एवं असंगठित क्षेत्रों में सक्रिय भागीदारी निभाती हैं, किंतु सामाजिक रुढ़ियों, शिक्षा की कमी, संसाधनों तक सीमित पहुँच एवं निर्णय प्रक्रिया से बहिष्करण के कारण

उनका आर्थिक सशक्तिकरण बाधित होता है।

इस अध्ययन का उद्देश्य महिलाओं के आय स्रोतों की पहचान करना, आर्थिक निर्णयों में उनकी भागीदारी का विश्लेषण करना, और सरकारी योजनाओं जैसे स्वयं सहायता समूह (SHG), मुद्रा योजना एवं आजीविका मिशन के प्रभाव को समझना है। शोध के लिए वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक पद्धतियों का प्रयोग करते हुए प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों का उपयोग किया जाएगा।

मिर्जापुर की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में यह शोध महिलाओं की आर्थिक यथास्थिति को उजागर करेगा और यह सुझाव देगा कि किस प्रकार उनकी भागीदारी को बढ़ाकर उन्हें अधिक स्वायत्त एवं सशक्त बनाया जा सकता है। यह अध्ययन नीतिगत हस्तक्षेप, योजना निर्माण और सामाजिक जागरूकता के लिए मार्गदर्शन प्रदान करेगा।

निष्कर्ष (Conclusion) :

इस अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि मिर्जापुर जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से संलग्न हैं, जैसे कि कृषि, पशुपालन, कुटीर उद्योग और श्रमिक कार्य। हालांकि, इन महिलाओं के आर्थिक योगदान को औपचारिक रूप से मान्यता नहीं मिलती, और उनका श्रम पारंपरिक रूप से घर और समुदाय में सीमित रहता है।

महिलाओं की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं – शैक्षिक पिछड़ापन, सामाजिक रुढ़ियाँ, लिंग आधारित भेदभाव, और सीमित आर्थिक निर्णयों में भागीदारी। सरकारी योजनाएँ, जैसे स्वयं सहायता समूह (SHG), प्रधानमंत्री मुद्रा योजना और राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM), ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण के लिए महत्वपूर्ण प्रयास कर रही हैं, किंतु इन योजनाओं का प्रभाव व्यापक नहीं हो पाया है।

यह शोध यह संकेत करता है कि महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण के लिए व्यापक सामाजिक और आर्थिक बदलावों की आवश्यकता है। इसके लिए शिक्षा, स्वरोजगार अवसरों में वृद्धि, और सरकार द्वारा महिलाओं के लिए अधिक योजनाओं और संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करना अत्यंत महत्वपूर्ण होगा। इस अध्ययन के निष्कर्ष नीति निर्माताओं और सामाजिक संगठनों के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में कार्य कर सकते हैं ताकि ग्रामीण महिलाओं की स्थिति में सुधार किया जा सके और उनका सशक्तिकरण सुनिश्चित हो सके।

1. **महिलाओं का आर्थिक योगदान :** मिर्जापुर के ग्रामीण इलाकों में महिलाएँ कृषि, पशुपालन, कुटीर उद्योग, और श्रमिक कार्यों में सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं, लेकिन इनके काम की अधिकतर पहचान नहीं की जाती। महिलाएं पारिवारिक आय में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं, फिर भी आर्थिक निर्णयों में उनकी भूमिका सीमित है।
2. **सामाजिक और सांस्कृतिक अवरोध :** महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण में समाज और परिवार की ओर से कई अवरोध हैं। पारंपरिक मानसिकता, लिंग आधारित भेदभाव, और शिक्षा की कमी इन अवरोधों के मुख्य कारण हैं। इसके कारण महिलाएं अपनी पूरी क्षमता से काम नहीं कर पातीं, और उनकी आर्थिक स्थिति स्थिर नहीं रहती।
3. **सरकारी योजनाओं का प्रभाव :** सरकारी योजनाओं का महिलाओं के जीवन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ने

के बावजूद, इन योजनाओं का समुचित लाभ सभी महिलाओं तक नहीं पहुँच पाता। स्वयं सहायता समूहों और अन्य योजनाओं के जरिए महिलाओं को थोड़ा आर्थिक लाभ हुआ है, लेकिन इनकी पहुँच और प्रभाव सीमा में हैं।

4. **आर्थिक निर्णयों में भागीदारी :** अध्ययन से यह भी पता चला कि महिलाएं अक्सर पारिवारिक आर्थिक निर्णयों में भाग नहीं ले पातीं। इस परंपरागत बाधा को तोड़ने के लिए, महिलाओं को अधिक निर्णय लेने का अधिकार देना और उनके आर्थिक मामलों में भागीदारी सुनिश्चित करना आवश्यक होगा।
5. **सशक्तिकरण के रास्ते :** महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण के लिए शिक्षा, स्वरोजगार और अधिक वित्तीय स्वतंत्रता की आवश्यकता है। इसके अलावा, महिला–उन्मुख योजनाओं का विस्तार और महिलाओं की सहभागिता को बढ़ावा देना भी एक कारगर उपाय होगा।
6. **नीति स्तर पर सुधार की आवश्यकता :** ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु व्यापक नीतिगत हस्तक्षेप की आवश्यकता है। महिलाओं के लिए विशेष शिक्षा, प्रशिक्षण, और रोजगार संबंधी योजनाओं को लागू करने से उनकी आर्थिक स्थिति में वास्तविक बदलाव लाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, सरकारी योजनाओं को और अधिक पारदर्शिता और पहुंच के साथ लागू करना जरूरी है।

संदर्भ सूची (References) :

1. भारत सरकार, जनगणना 2011 – मिर्जापुर जिले की जनसंख्या, लिंगानुपात, साक्षरता दर और कार्यबल भागीदारी संबंधी आँकड़े।
2. राष्ट्रीय नमूना सर्वे कार्यालय (NSSO), 2017–18 – ग्रामीण क्षेत्रों में महिला श्रमिकों की भागीदारी और आय संबंधी आँकड़े।
3. उत्तर प्रदेश मानव विकास रिपोर्ट, 2019 – राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में महिला सशक्तिकरण और आर्थिक योगदान की स्थिति।
4. Sharma, K. (2015). Rural Women and Economic Development in India. New Delhi : Sage Publications.
5. Singh, R. & Pandey, M. (2018). "Role of Rural Women in Agricultural Economy : A Study of Eastern Uttar Pradesh". International Journal of Rural Studies, Vol. 25(1), pp. 45-60.
6. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार (2020) : ग्रामीण महिलाओं के लिए चल रही योजनाएं और आर्थिक प्रगति की रिपोर्ट।
7. Gupta, S. (2020). "Economic Empowerment of Women in Rural India", Journal of Social Economics, Vol. 12(2), pp. 78-89.
8. उत्तर प्रदेश राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन (UPSRLM) – मिर्जापुर जिले में महिला स्व–सहायता समूहों की भूमिका।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 40-44

राष्ट्र निर्माण में शिक्षा की भूमिका : एक भारतीय अनुभव

आरती यादव
शोध छात्रा, शिक्षक शिक्षा विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

सारांश :-

यह शोध पत्र राष्ट्र निर्माण में शिक्षा के योगदान पर प्रकाश डालता है, यह इस तथ्य पर जोर देता है कि राष्ट्र निर्माण में शिक्षा का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। यह बताता है कि समकालीन विश्व का ध्यान विज्ञान और प्रौद्योगिकी की दुनिया की ओर क्यों है और इसके परिणामस्वरूप लोगों के नैतिक उत्थान और पुनरुत्थान की नींव रखने की आशा है। यह एक ऐसी शक्ति और शक्ति है जो राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और यह देखा गया है कि कोई भी राष्ट्र अपनी शिक्षा के स्तर से ऊपर नहीं उठ पाता है। शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में संघीय, राज्य और स्थानीय सरकारों से उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता है ताकि इस क्षेत्र को राष्ट्रीय विकास के लिए आवश्यक शक्ति प्रदान की जा सके।

मुख्य शब्द :- शिक्षा, राष्ट्र, समाज, नैतिक, विकास इत्यादि।

परिचय :-

राष्ट्र–निर्माण में शिक्षा का सर्वाधिक महत्त्व है, जैसी शिक्षा–व्यवस्था होगी, जैसी शिक्षा की रीति–नीति होगी, जैसी शिक्षण पद्धति होगी वैसा ही बालक बनेगा, जैसा बालक बनेगा वैसा ही समाज बनेगा, जैसा समाज बनेगा वैसा ही राष्ट्र का स्वरूप निर्धारित होगा क्योंकि आज के बालक ही कल के व्यवस्थापक, इन्जीनियर, डॉक्टर, अध्यापक, व्यापारी, अधिवक्ता, जज, प्रशासनिक अधिकारी, लेखक बनेंगे। ये जैसे बनेंगे वैसा ही राष्ट्र बनेगा। शिक्षा किसी भी राष्ट्र में एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। मानव पूंजी विकास में एक प्रमुख निवेश होने के नाते, यह सूक्ष्म और वृहद दोनों स्तरों पर दीर्घकालिक उत्पादकता और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शिक्षा की स्थिति सभी स्तरों पर हमारे राष्ट्रीय प्रवचन का विषय क्यों बनी हुई है। नतीजतन, सभी स्तरों पर शिक्षा की घटती गुणवत्ता का निहितार्थ राष्ट्र की नैतिक, नागरिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थिरता पर दूरगामी नकारात्मक प्रभाव डालता है। इस बिंदु पर, यह समझना महत्वपूर्ण है कि शिक्षा और इसके सुधारों पर चर्चा, ताकि यह राष्ट्रीय विकास में सार्थक रूप से योगदान दे सके, धीरे–धीरे और व्यवस्थित रूप से राजनीतिकरण से हटकर अधिक विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण की ओर बढ़नी चाहिए, जो हमारे शैक्षिक विकास के लिए खेल और व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करने में निहित जटिलताओं की सराहना करता है। भारतीय भविष्य में, इस क्षेत्र (शिक्षा) के लिए,

सरकार के इन स्तरों का उचित रूप से एकीकरण होना चाहिए। यदि यह उचित तरीके से किया जाता है, तो विश्वविद्यालयों के शैक्षणिक कर्मचारी संघ को औद्योगिक कार्रवाई करने की कोई आवश्यकता नहीं होगी, क्योंकि प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में बेहतर बुनियादी ढाँचा होगा, कोई और प्रतिभा पलायन नहीं होगा, क्योंकि शोध गतिविधियाँ प्रभावी रूप से की जाएँगी और परीक्षा कदाचार को समाप्त या कम किया जाएगा और यह क्षेत्र राष्ट्र निर्माण में सार्थक रूप से योगदान देगा, शिक्षा क्षेत्र में कुछ जरूरी काम किया जाना चाहिए। उपरोक्त अवलोकन के बावजूद, इस शोधपत्र का मुख्य ध्यान राष्ट्र निर्माण में शिक्षा के योगदान पर है। उत्पत्ति की दृष्टि से, शिक्षा शब्द दो लैटिन शब्दों 'एजुकेयर' और 'एजुकेरे' से मिलकर बना है। तदनुसार, 'एजुकेयर' का अर्थ है प्रशिक्षित करना, ढालना।

दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ है कि समाज व्यक्ति को सामाजिक आकांक्षाओं को प्राप्त करने के लिए ढालता है। दूसरी ओर, 'एजुकेरे' का अर्थ है नेतृत्व करना, या विकास करना।

आमतौर पर, शिक्षा का उपयोग विशेष रूप से संज्ञानात्मक, आत्मकेंद्रित मनोप्रेरक और मनोवैज्ञानिक उत्पादक क्षेत्रों में मानव के विकास के लिए किया जाता है। यह मानव व्यवहार में प्रक्रिया के माध्यम से एक वांछनीय दृष्टिकोण भी विकसित करता है।

प्रत्येक पीढ़ी अपने युवाओं को क्या देती है, जिससे उनमें दृष्टिकोण, योग्यताएँ, कौशल और अन्य व्यवहार विकसित होते हैं, जो उस समाज के लिए सकारात्मक मूल्य हैं जिसमें वे रहते हैं।

शिक्षा को समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसकी योग्यताओं और रुचियों के अनुसार स्वीकार्य तरीकों और तकनीकों के माध्यम से व्यक्तिगत बच्चे के संपूर्ण विकास के रूप में देखा जाता है और व्यक्ति को अपना सही स्थान लेने और समाज की वृद्धि में समान रूप से योगदान देने के लिए प्रेरित किया जाता है। यहाँ समझाई जाने वाली एक अन्य अवधारणा राष्ट्र निर्माण है। यहाँ राष्ट्र निर्माण को राष्ट्रीय विकास के रूप में लिया जाना चाहिए। लिचमैन और मार्कोविट्ज इस बात पर जोर देते हैं कि एक विकसित समाज वह है जो अपने अधिकांश निवासियों के लिए जीवनयापन का स्रोत प्रदान करने में सफल रहा है और ऐसे समाज में गरीबी उन्मूलन, अपने सदस्यों को भोजन, आश्रय और कपड़े प्रदान करने पर अधिक ध्यान दिया जाता है। यह तर्क आधुनिकीकरण प्रतिमान से टोडारो और स्मिथ द्वारा विकास की परिभाषा से सहमत है जो विकास को एक बहुआयामी प्रक्रिया के रूप में देखता है जिसमें पूरे समाज और सामाजिक व्यवस्था का बेहतर या मानवीय जीवन की ओर निरंतर उत्थान शामिल है। वे विकास को समझने के लिए तीन बुनियादी घटकों की पहचान करते हैं।

ये घटक हैं जीविका, आत्मसम्मान और स्वतंत्रता। ये सभी व्यक्तियों और समाजों द्वारा मांगे जाने वाले सामान्य लक्ष्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके अनुसार, जीविका का संबंध बुनियादी जरूरतों को पूरा करने की क्षमता से है, आत्मसम्मान का संबंध मूल्य और आत्म–सम्मान की भावना से है, दूसरों द्वारा अपनी जरूरतों के लिए उपकरण के रूप में इस्तेमाल नहीं किए जाने से है और स्वतंत्रता का संबंध दासता से मुक्ति से है– प्रकृति, अज्ञानता, अन्य लोगों, दुःख, संस्थानों और विशेष रूप से हठधर्मी विश्वासों के प्रति दासता, कि गरीबी एक पूर्वनियति है। कोई भी विकास मॉडल जो इन सिद्धांतों को प्रतिबिंबित नहीं करता है, उसे एक प्रतिमान बदलाव की आवश्यकता है।

इस शोधपत्र का फोकस राष्ट्र निर्माण या राष्ट्रीय विकास में शिक्षा के योगदान को देखना है। यहाँ

विचारणीय बिंदुओं में सबसे प्रमुख यह है कि शिक्षा राष्ट्रीय विकास के लिए आवश्यक जनशक्ति प्रदान करती है। अफोलाबी और लोटो इस तर्क का समर्थन करते हुए कहते हैं कि एक विकसित या शिक्षित राजनीति वह होती है जिसमें पर्याप्त जनशक्ति होती है और प्रत्येक व्यक्ति समाज के विकास को बढ़ाने के लिए अपनी सही स्थिति में होता है। इसका समर्थन करने के लिए, अजयी और अफोलाबी ने यह भी टिप्पणी की है कि भारत में शिक्षा को बड़े पैमाने पर एक अपरिहार्य उपकरण के रूप में माना जाता है जो न केवल राष्ट्र की सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक आकांक्षाओं को पूरा करने में सहायता करेगा बल्कि व्यक्ति में ज्ञान, कौशल, निपुणता, चरित्र और वांछनीय मूल्यों को भी विकसित करेगा जो राष्ट्रीय विकास और आत्म–साक्षात्कार को बढ़ावा देगा। शिक्षा व्यक्ति को समाज में उपयोगी बनने तथा राष्ट्रीय विकास के लिए समाज की आवश्यकता को पूरा करने के लिए प्रशिक्षित करती है। इसलिए यह स्पष्ट होना चाहिए कि शिक्षा के बिना राष्ट्र को भौतिक उन्नति तथा नागरिकों के ज्ञानवर्धन के लिए आवश्यक जनशक्ति नहीं मिल सकती। प्रशिक्षित इंजीनियर, शिक्षक, चिकित्सक, अधिवक्ता अन्य सभी शिक्षा के उत्पाद हैं। यह बताता है कि क्यों यह तर्क दिया जाता है कि किसी राष्ट्र की शिक्षा की गुणवत्ता उसके राष्ट्रीय विकास के स्तर को निर्धारित करती है।

इसके अलावा, शिक्षा सामाजिक तथा समूह संबंधों को बढ़ावा देती है शिक्षा व्यक्तियों को समाज में दूसरों के साथ सार्थक रूप से संबंध बनाने तथा बातचीत करने तथा मानव प्रगति के लिए प्रभावी संगठन के महत्व को समझने के लिए प्रशिक्षित करती है। यहाँ, शिक्षा प्रणाली के भीतर स्कूल प्रणाली इस विकास को बढ़ावा देती है। स्कूल अलग–अलग सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के लोगों को एक साझा उद्देश्य के लिए एक साथ लाता है। यह आपसी सह–अस्तित्व को बढ़ावा देता हैं। माना जाता है कि जो शिक्षार्थी अपने विद्यालय से दृढ़ता से जुड़े होते हैं, उनका शिक्षकों, अन्य शिक्षार्थियों और संपूर्ण शैक्षिक उद्यम के प्रति अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण होता है।

विद्यालय प्रणाली में, आधिकारिक क्लब और संगठन मौजूद हैं। इन संगठनों और क्लबों में भाग लेने वाले शिक्षार्थी व्यक्तिगत संगठनों के बाहर दूसरों के साथ काम करने और कुछ हद तक न्यूनतम घर्षण के साथ बाहरी समूहों के साथ काम करने और प्रतिस्पर्धा करने का अनुभव प्राप्त करते हैं और यह राष्ट्रीय एकता और शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व को बढ़ावा देने में एक लंबा रास्ता तय करता है जो राष्ट्रीय विकास की ओर ले जाएगा। कभी–कभी, कुछ मामलों में औपचारिक रूप से विद्यालय द्वारा प्रायोजित नहीं किए जाने वाले संगठन कक्षाओं के न होने पर विद्यालय की सुविधाओं का उपयोग करने की व्यवस्था करते हैं। शिक्षार्थी इन समूहों के साथ अपने जुड़ाव से उसी तरह लाभ प्राप्त करते हैं जिस तरह से वे विद्यालय प्रायोजित संगठनों में भागीदारी से लाभ प्राप्त करते हैं। ऐसा करने से, शिक्षा एक ऐसी सेटिंग प्रदान करती है जिसके भीतर विभिन्न शिक्षार्थियों के संगठन पनपते हैं और युवा लोगों को पारस्परिक संबंधों के उचित पैटर्न सीखने में मदद करने के लिए एक संदर्भ प्रदान करते हैं। व्यक्ति–से–व्यक्ति व्यवहार पैटर्न के विकास के लिए एक मंच प्रदान करता है क्योंकि विद्यालय की कक्षाओं में विभिन्न प्रकार के व्यक्ति शामिल होते हैं। इन कक्षाओं में, शिक्षार्थी अपने से अलग सामाजिक, जातीय और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के लोगों से मिलते हैं। यहाँ, युवा लोगों के परिपक्व होने के साथ ही पुरुष–महिला संबंध विकसित होने लगते हैं। यह स्पष्ट है कि शिक्षा प्रणाली के माध्यम से शिक्षार्थियों को निर्धारित शैक्षणिक पाठ्यक्रम से परे बहुत कुछ सिखाया जाता है और सामाजिक व्यवहार के विकास को भी प्रोत्साहित किया जाता है जो वयस्क होने पर उनके लिए उपयोगी होगा।

शिक्षा व्यक्तियों को उनमें रचनात्मक क्षमताओं की खोज करने और विशिष्ट कार्यों को करने के मौजूदा कौशल और तकनीक में सुधार करने में सक्षम बनाकर उत्पादकता की संस्कृति को भी बढ़ावा देती है, जिससे उनके व्यक्तिगत सामाजिक प्रयासों की दक्षता बढ़ती है। शिक्षा लोगों को खुद के लिए और जिस समाज में वे रहते हैं उसके लिए उपयोगी होना सिखाती है या प्रशिक्षित करती है। इसके द्वारा, उन्हें उत्पादक होना चाहिए और अपनी रचनात्मक क्षमताओं की खोज करनी चाहिए और आत्म–साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए विशिष्ट कार्यों को करने के लिए इसका उपयोग करना चाहिए।

शिक्षा व्यक्तियों में उन मूल्यों का भी विकास करती है जो अच्छे नागरिक बनाते हैं, जैसे ईमानदारी, निस्वार्थता, सहिष्णुता, समर्पण, कड़ी मेहनत और व्यक्तिगत अखंडता, ये सभी ऐसी समृद्ध मिट्टी प्रदान करते हैं जिससे अच्छी नेतृत्व क्षमता तैयार होती है। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, शिक्षा व्यक्ति को समाज में जिम्मेदार बनने के लिए प्रशिक्षित करती है। इससे यह स्पष्ट है कि शिक्षा नैतिक प्रशिक्षण देती है। उपर्युक्त चर्चा राष्ट्र निर्माण की दिशा तय करने में शिक्षा की रणनीतिक स्थिति को दर्शाती है। भारतीय शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त संकट शिक्षा के वित्तपोषण में सरकार की अनदेखी, शिक्षा का राजनीतिकरण, बदलते राजनीतिक माहौल, शिक्षा नीतियों में निरंतर परिवर्तन और भ्रष्टाचार पर केंद्रित है। नीचे भारतीय शिक्षा प्रणाली को प्रभावित करने वाले चिरस्थायी संकट का स्थायी समाधान बताया गया है।

समाधानों में सबसे प्रमुख यह है कि सरकार को शिक्षा के प्रभावी वित्तपोषण के लिए प्रावधान करने के लिए दृढ़ संकल्पित होना चाहिए। फिर से, शिक्षा एक त्रिपक्षीय मामला होना चाहिए और संघीय, राज्य और स्थानीय सरकारों की जिम्मेदारी होनी चाहिए। साथ ही, निजी क्षेत्र को भी वित्तपोषण में भाग लेने के लिए बनाया जाना चाहिए। यह तभी सफल होगा जब सरकार वित्तपोषण के मामले में प्रणाली के प्रति अपनी गंभीरता और प्रतिबद्धता दिखाएगी।

स्वतंत्रता के बाद, भारत ने एकीकृत राष्ट्रीय पहचान बनाने के लिए महत्वपूर्ण शैक्षिक सुधार किए। औपनिवेशिक पाठ्यक्रम, जो क्लर्क और सिविल सेवक बनाने पर केंद्रित था, को भारत के इतिहास एवं सांस्कृतिक विरासत पर गर्व पैदा करने वाले पाठ्यक्रम से बदल दिया गया। तीन–भाषा सूत्र की शुरूआत का उद्देश्य भाषाई विविधता का सम्मान करते हुए एकता को बढ़ावा देना था। राष्ट्रहित को सर्वोपरि माना जाना चाहिए और इस प्रयास में शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है, शिक्षक और शैक्षणिक संस्थान बचपन से ही छात्रों में एकता और राष्ट्रीय गौरव की भावना पैदा कर सकते हैं, सामरिक और एकीकृत शिक्षा आयन प्रणाली को अपनाया जा सकता है जहाँ विभिन्न संप्रदायों और पृष्ठभूमि के छात्र एक–दूसरे को स्वीकार करना और सम्मान करना सीखते हैं। शिक्षकों को रोल मॉडल के रूप में माना जाता है जो छात्रों को अपने देश का सम्मान करने और सभी लोगों के साथ गरिमा और निष्पक्षता के साथ व्यवहार करने के लिए प्रभावित कर सकते हैं।

निष्कर्ष :-

भारत में शिक्षा का तात्पर्य सिर्फ ज्ञान देना नहीं है इसका अर्थ है राष्ट्र निर्माण। यह लाखों लोगों के मस्तिष्क और आकांक्षाओं को आकार देता है, देश को आगे बढ़ाता है। इस शोधपत्र का फोकस राष्ट्र निर्माण में शिक्षा के योगदान पर है और शोधकर्ताओं ने उन विशिष्ट तरीकों की पहचान की है, जिनसे शिक्षा राष्ट्र निर्माण में योगदान देती है। यह शोधपत्र इस बात पर भी जोर देता है कि राष्ट्रीय विकास में शिक्षा का योगदान भारत

में खराब वित्त पोषण, व्यवस्था के राजनीतिकरण, अस्थिर राजनीतिक माहौल और भ्रष्टाचार के कारण सीमित रहा है। शिक्षा का राष्ट्रीय विकास पर सकारात्मक प्रभाव डालने के लिए कुछ सिफारिशें की गई हैं और अगर उनका उचित तरीके से पालन किया जाए, तो भारतीय शिक्षा प्रणाली में व्याप्त संकट का समाधान हो जाएगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. के एंड नासिर। आर। (2000)। शिक्षण की स्थिति राष्ट्रीय एकता के लिए निहितार्थ, शैक्षिक अध्ययन के भूमध्यसागरीय जर्नल, टवस।
2. लाल. आर.बी. और पालोड. एस (2014)। शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य। आर. लाल बुक डिपो।
3. कौर मंदीप, आर्थिक विकास और शिक्षा (प्राथमिक शिक्षा) वाल्यूम–7 स्पेशल इश्यू, मई 2019।
4. कुमार राजेश, महिला व कमजोर वर्ग को सशक्त बनाने में शिक्षा का योगदान (2018), इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडभांस रिसर्च एण्ड डेवभलपमेंट।
5. सारस्वत एवं श्रीवास्तव (2007), भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्याएं, इलाहाबाद न्यू कैलाश प्रकाशन।
6. शील, अवनींद्र (2011), भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएं, कानपुर साहित्य रत्नालय पब्लिकेशन।

आरती यादव, शान्तिपुरम, फाफामऊ, प्रयागराज।
artiyadav8573083646@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 45–50

हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श : ऐतिहासिक विकास, अवधारणाएं और विविध आयाम

डॉ. कविता देवी
एम.ए. (हिन्दी), एम.फिल (हिंदी), बी. एड, पीएच.डी. (हिंदी)
हिन्दी विभाग, डी.एस.बी. परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल।

शोध सार :–

स्त्री विमर्श – सदियों से होते आए शोषण और दमन के प्रति स्त्री–चेतना ने ही 'स्त्री–विमर्श' को जन्म दिया है। 'स्त्री–विमर्श आत्मचेतना, आत्मसम्मान, आत्मगौरव, समता और समानाधिकारी की पहल का दूसरा नाम है। स्त्री–विमर्श का मतलब है स्त्री जीवन की समस्याओं को सामने लाना और स्त्री–अस्मिता को केंद्र में रखकर साहित्य रचना करना। स्त्री को अपने अस्तित्व के बोध ने विमर्श की प्रेरणा दी। स्त्री–विमर्श एक ऐसा लेखन है जिसके द्वारा स्त्री विमर्शकार स्त्री के उत्पीड़न के साथ–साथ उन सवालों को भी उठा रहे हैं जिनसे स्त्री की उपेक्षा हुई है। भारतीय संस्कृति की समझ स्त्री को महान बनाती है परंतु स्त्री–विमर्श उसे समान बनाने की दिशा में प्रयासरत है।

बीज शब्द :– स्त्री–विमर्श, नारीवाद, अस्तित्व बोध, पितृसत्ता।

मूल आलेख :–

आत्म समर्पण और पुरुष की एकाधिकारशाही के माहौल से स्त्री को बाहर लाने का श्रेय स्त्री–विमर्श को ही देना होगा। स्त्री–विमर्श और कुछ नहीं अपनी अस्मिता की पहचान, स्व की चिंता, अस्तित्व बोध और अधिकार को जतलाने और बतलाने का विचार–चिंतन है। "यह सदियों से स्थापित पुरुष मानसिकता का दर्पण है, भावुक स्त्री का समर्पण नहीं। 'जहाँ मैं' की चिंता का एहसास है, समझना चाहिए कि वहाँ से स्त्री–विमर्श की शुरूआत है। जब भावना की अपेक्षा बुद्धि की कसौटी पर, विषमता की अपेक्षा समता की कसौटी पर, परम्परा की अपेक्षा आधुनिकता की कसौटी पर, संस्कृति की अपेक्षा कार्य शक्ति की कसौटी और लिंगात्मक की अपेक्षा गुणात्मक कसौटी पर व्यक्ति के मूल्यांकन का सूत्रपात होगा, तभी स्त्री–विमर्श के चिंतन के लिए बल मिलेगा।"[1]

"स्त्री–विमर्श उन उन तमाम परतंत्रताओं के खिलाफ है जो एक दूरी पैदा करता है। उन कड़ियों के विरुद्ध है, जो सदियों से समाज को जकड़े हुए हैं, जहाँ एक वर्ग अपने हिस्से की जमीन और अपने हिस्से का आसमां थरथराते हाथों से माँगता है, उनकी दर्द भरी चीखें अब प्रसन्नता में बदलती जा रही है, क्योंकि पुरुष सही मायने में उनका हमसफर हो रहा है। उन्हें अब अपना साथी आत्मिक तौर पर मिलने लगा है, जो उनसे

प्रेम और उनका सम्मान करता है। दोनों की लड़ाई अब जड़ हो चुकी रूढ़ियों से है, जिन्हें अब वे मिलकर लड़ने लगे हैं। वास्तविक शत्रु की पहचान हो चुकी है, फिर भी इस दिशा में बहुत कुछ करना बाकी है।'[2]

स्त्री–प्रश्न पर केन्द्रित है 'विमर्श श्रृंखला'। स्त्री–विमर्श पर न केवल पुरुष–विचारकों ने नहीं बल्कि स्त्री –विचारकों ने भी अपना सक्रिय योगदान दिया है। स्त्री–विमर्श में न केवल स्त्री–संबंधित नये सिद्धान्त प्रतिपादित किये बल्कि स्त्री–जीवन के विभिन्न प्रसंगों पर ज्ञान, कर्म और यथार्थ का लंबा लेखा–जोखा भी प्रस्तुत किया।

"स्त्री विमर्श के संबंध में मैत्रेयी पुष्पा का कहना है –कि मनुष्य की मूलरूप स्त्री की नैसर्गिक प्रवृत्तियों को और पुरुष की स्वाभाविक वृत्तियों को समान रूप से देखना दोनों की जरूरतों को समान महत्व देना तथा दोनों की समान रूप से भागीदारी होना स्त्री–विमर्श का लक्ष्य है।'[3]

नारी मुक्ति आन्दोलनों के द्वारा भी देश में वैचारिक परिवर्तन हुए। 'नारीवाद' भी एक ऐसा ही स्त्री–मुक्ति आन्दोलन है। नारीवादी चिन्तक नारी को नारी संदर्भ में रखकर विश्लेषित करते हैं। इसका स्त्री के संघर्ष से गहरा सम्बन्ध है। स्त्री को समाज में गुलाम बनाए रखने से कोई भी देश प्रगति नहीं कर सकता है। इसलिए समाज में स्त्री भी पुरुष के समान स्वतंत्र हो, उसे पुरुषों के समान अधिकार, अवसर, सम्मान मिलना चाहिए। और आज स्त्री समाज में अपनी अस्मिता को स्थापित कर एक स्वतंत्र व्यक्तित्व स्थापित करने के लिए संघर्षरत है, उसमें अपने हित के प्रति सही और गलत निर्णय लेने की क्षमता और समाज में सिर उठाकर जीने का जज्बा है।

स्त्री–विमर्श के तहत यह प्रश्न उठाया जा रहा है कि आज तक का समूचा साहित्य अधूरा है क्योंकि उसमें दुनिया की आधी आबादी की मुक्ति से जुड़े हुए प्रश्न नहीं हैं। अतः वह साहित्य मानवीय कैसे हो सकता है? वह आधी दुनिया का ही साहित्य रहा है। एकांगी, एकपक्षीय, लिंगभेदक। उसमें स्त्री की स्थिति दोयम दर्ज की है। इसीलिए पितृक समाज उसे शील, नैतिकता, मर्यादा, मातृत्व के आदर्शों से अनुशासित करता रहता है। स्त्री–विमर्श ने उन निरंकुश मूल्यों को जाँचने, परखने का जोखिम उठाया है जो उसे निरन्तर अनुशासित करते हैं, अधीन बनाते हैं। उसको आवाजहीन, अस्मिताहीन बनाते हैं। यह एक क्रांतिकारी परिवर्तन है, जिसमें स्त्रियां अपनी स्वतंत्र सोच के तहत विचारने लगी है। अब स्त्री अपनी स्थितियों, अवस्थाओं को समझने लगी हैं कि कैसे उनके बढ़ते कदमों को अवरुद्ध किया जा रहा है।

'स्त्री-विमर्श संबंधी अवधारणा –

स्त्री–विमर्श दो शब्दों को मिलाकर बना है। नारी अर्थात् स्त्री, गृहलक्ष्मी, औरत और विमर्श अर्थात बहस, वाद–विवाद सोच–विचार–विमर्श, सलाह, मंत्रणा इत्यादि। नारी–विमर्श से अभिप्राय नारी के बारे में सोच–विचार, समाज में उसकी स्थिति क्या है, कैसी हो, उसके बारे में सलाह–मशविरा करना ही स्त्री–विमर्श है। "उत्तर–आधुनिकता के प्रवक्ता सुधीश पचौरी 'स्त्री–विमर्श' को उत्तर–आधुनिकता की देन मानते हैं, उनका मानना है कि उत्तर–आधुनिकता ने उत्तर–संरचनावाद, नव–मार्क्सवाद, नव–व्यवहारवाद, और 'फेमिनिज्म' यानी 'स्त्रीवाद 'को जन्म दिया।"[4]

स्त्री–विमर्श के संदर्भ में साहित्यकारों की अलग–अलग अवधारणाएं हैं। स्त्री की अनन्त समस्याएं हैं, जिनका संबंध स्त्री–विमर्श से है, स्त्री विमर्श अब हाशिए से उठकर केन्द्र में आ चुका है। हिन्दी की कई लेखिकाएं मृणाल पाण्डे, मृदुला गर्ग, मन्नू भंडारी, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, क्षमा शर्मा, मनीषा आदि अपने ढंग से इसमें योगदान दे रही हैं। "विमर्श के बारे में कई अवधारणाएँ है कि विमर्श के बहाने कतिपय विमर्शकारों के अंदर का

कीचड़ भी बाहर निकला है और पत्र–पत्रिकाओं में न्यूनतम शिष्टता व शालीनता के मुहानों को तोड़ते हुए बहा है। एक तरह से स्त्री–विमर्श 'सेडीज्म' और हिसाब–किताब चुकता करने का जरिया भी बना। यौन कुंठाओं की मवाद बही और विमर्श को मीनोपोज' में डुबो दिया, इस विमर्श से भनक तक नहीं लगी कि कैसी दुनिया औरत की होनी चाहिए, मर्द के साथ उसके रिश्तों की कैसी शकल होनी चाहिए?"[5]

'स्त्री–विमर्श खाली समय या आनंद के समय का विमर्श नहीं है। हिन्दी में स्त्री साहित्य और उसकी सैद्धान्तिकी अभी भी अकादमिक जगत में प्रवेश नहीं कर पाई है। स्त्री–विमर्श के नाम पर हिन्दी की साहित्यिक पत्रिकाओं में सतही और बाजारू स्त्री–विमर्श परोसा जा रहा है। इसमें स्त्री के प्रति गंभीर समझ का अभाव है। स्त्री साहित्य के मूल्यांकन के संदर्भ में सबसे बड़ी चुनौती है। अवधारणाओं में सोचने की परंपरा का निरंतर ह्रास हो रहा है।"[6]

स्त्री–विमर्श के द्वारा नए–नए प्रश्न, मुद्दे उठने लगे हैं, स्त्रियों की दुनिया में यह जो नया बौद्धिक, सांस्कृतिक जागरण हुआ है, इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। दुनिया की आधी आबादी में जो स्त्री–विमर्श छिड़ा है, उसके पीछे ठोस आर्थिक, सामाजिक, ऐतिहासिक स्थितियाँ हैं। अब वे हाशिए टूटने लगे हैं जो पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्रियों के लिए बनाए हैं। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि स्त्रियों ने स्वयं 'स्त्री–विमर्श' के लिए स्वत्वाधिकार की चेतना के विकास के लिए सदियों पुरानी तड़प से भरी हुई चुप्पी, मौन को वाणी दी है। वह अपने दबे–कुचले अनुभवों को वाणी देने लगी है। जहाँ लिंग भेद की राजनीति में जकड़ा हुआ अशिष्ट, असभ्य एवं बर्बर समाज होगा, वहां स्त्री–विमर्शों का विकास भी अनिवार्य रूप से होगा। 'स्त्री–विमर्श' स्त्री की अस्मिता का, आत्मचेतना का, अन्याय के विरोध का अस्तित्व बोध का और स्त्री का अत्याचार के विरोध में खड़े रहने की प्रवृत्ति का न केवल परिचय देता है अपितु इस चिन्तन को बल प्रदान करता है। आने वाली पीढी की नारियों में चेतना जागृति के लिए यह दर्शन निश्चित ही प्रेरणादायी सिद्ध होगा इसमें संदेह नहीं।

स्त्री-विमर्श : इतिहास एवं परम्परा :-

स्त्री विमर्श की अपनी एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है क्योंकि इससे पहले तो स्त्री की अस्मिता, अधिकार, अनुभव हाशिए पर ही थे। इस प्रकार प्राचीन काल से ही नारी अपने बहुविध रूपों में साहित्य में मौजूद रही है। भारतीय नारी कभी पुरुष के हृदय की देवी रही है, कभी चरणों की दासी, कभी गृहस्वामिनी, तो कभी बंदिनी। इस प्रकार स्त्री–विमर्श के इतिहास और परम्परा को काल की सीमाओं में बांधकर नहीं देखा जा सकता है। प्राचीनकाल ऋग्वेद काल से लेकर और आधुनिक काल तक स्त्री को लेकर साहित्य में चर्चा–परिचर्चाएं हुई है। नारी विभिन्न रूपों में साहित्य में चर्चित हुई है। ऋग्वेद काल में नारी का आगमन शुभ माना जाता था, परन्तु उत्तरवैदिक काल में कन्या का जन्म दुख का कारण समझा जाने लगा था। महाकाव्य काल में स्त्री–पुरुष की सम्पत्ति मानी जाने लगी थी, और पुराणों में नारी का जीवन और भी संकुचित परिधि में रह गया था। इस काल में नारी का कर्तव्य परिवार और पति की सेवा करना था।

आदिकाल में नारी भोग्या मात्र रह गई थी, मध्यकाल तक आते–आते नारी जीवन अनेक विसंगतियों से भर गया था। सूफियों ने नारी को प्रतीक मानकर प्रेम साधना रूप में स्वीकार किया है और कबीर, तुलसीदास, सूरदास, ने नारी को अलग–अलग ढंग से साहित्य में व्याख्यायित किया। नवोत्थान काल में कई समाज सुधारकों ने नारी मुक्ति सम्बन्धी, सामाजिक कुरीतियों के विरोध में अनेक स्त्री संगठनों की स्थापना की। आधुनिक काल

में 19वीं शताब्दी के मध्य में नारी की स्थिति को शोचनीय बनाने वाली रूढ़ियों का पुरजोर खण्डन किया गया। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में 1882 में एक क्रान्तिकारी महिला (तारा बाई शिन्दे) की पुस्तक 'स्त्री–पुरुष तुलना' छपी और 1882 में ही 'सीमंतनी उपदेश' पुस्तक में स्त्री की गुलामी और यातना के विभिन्न रूपों को उजागर किया गया। सावित्री बाई फूले, पंडिता रमाबाई आदि जागरूक महिलाओं ने स्त्रियों के विकास के लिए अनेक संगठनों की स्थापना की।

"विमर्शन'' को कभी काल की सीमाओं में बांधकर नहीं देखा जा सकता है। यह तो जीवन–संदर्भित चिन्तन का सतत प्रवाह होता है जो विभिन्न माध्यमों से विभिन्न रूपों में प्रकाशित होता है। जीवन के अनुभूतिगत प्रकाश का प्रकाशन ही विमर्शन है।"[7]

स्त्री–मुक्ति विमर्श के प्रश्न पर चिन्तन और विचारों के संघर्ष की शुरुआत दो शताब्दी से कुछ समय पहले अमेरिका और यूरोप में हुई थी। तब से लेकर अब तक विश्व के सभी देशों में स्त्री–आन्दोलनों, स्त्री–पुरुष समानता एवं स्त्री–अधिकारों के विविध पक्षों का और स्त्री–प्रश्न पर चिन्तन का लम्बा–चौड़ा इतिहास हमारे सामने फैला पड़ा है। साहित्य की लगभग सभी विधाओं, जैसे–कहानी, उपन्यास, आत्मकथा जीवनी, नाटक आदि में नारी–विमर्श का विवरण हल्के ही रूप में किया हो लेकिन नारी–विमर्श का संस्पर्श जरूर किया है।

स्त्री–विमर्श के द्वारा नए–नए प्रश्न, मुद्दे उठने लगे हैं, स्त्रियों की दुनिया में यह जो नया बौद्धिक, सांस्कृतिक जागरण हुआ है, इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। दुनिया की आधी आबादी में जो स्त्री–विमर्श छिड़ा है, उसके पीछे ठोस आर्थिक, सामाजिक, ऐतिहासिक स्थितियों हैं। अब वे हाशिए टूटने लगे हैं जो पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्रियों के लिए बनाए हैं। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि स्त्रियों ने स्वयं 'स्त्री–विमर्श' के लिए स्वत्वाधिकार की चेतना के विकास के लिए सदियों पुरानी तड़प से भरी हुई चुप्पी, मौन को वाणी दी है। वह अपने दबे–कुचले अनुभवों को वाणी देने लगी है। पितृसत्तात्मक समाज की सबसे बड़ी चिंता, बौखलाहट इसी प्रकिया से है कि स्त्री–विमर्श क्यों चर्चित हो रहा है? जहां लिंग भेद की राजनीति में जकड़ा हुआ अशिष्ट, असभ्य एवं बर्बर समाज होगा, वहां स्त्री–विमर्शों का विकास भी अनिवार्य रूप से होगा।

स्त्री-विमर्श के आयाम :-

साहित्यकार अपने आसपास जो देखता है, जो अनुभव करता है उसे साहित्य के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाने की कोशिश करता है। हिन्दी साहित्य में साहित्यकारों ने स्त्री–विमर्श पर अपने किरदारों के माध्यम से समय–समय पर काफी कुछ कहा है। बदलते समय के साथ–साथ स्त्री के प्रति लोगों का नजरिया भी बदला है, अवधारणाएँ बदली हैं और इसी से स्त्री–विमर्श के आयाम भी बदलते हैं। जो धारणा स्त्री के प्रति प्राचीन समय में थी, जो मूल्य उस समय महत्वपूर्ण थे वे आज अर्थहीन हो गये हैं।'स्त्री–विमर्श' भी मानव के जीवन–संदर्भित विमर्श का एक आयाम है। 'विमर्श' का स्वरूप अत्यंत व्यापक है। इसके अंतर्गत संसार के किसी भी विषय पर तर्कसंगत सोच–विचार विनिमय हो सकता है। सदियों से होते आए शोषण और दमन के प्रति स्त्री–चेतना ने ही स्त्री–विमर्श को जन्म दिया है। स्त्री–विमर्श बहुआयामी है। स्त्री–विमर्श ने समाज, विज्ञान, राजनीति, साहित्य, आलोचना काव्यशास्त्र की दुनिया में एक नई बहस को जन्म दिया है, कि स्त्री दृष्टि का नया परिप्रेक्ष्य क्या है? वह पुरुष दृष्टि से पृथक कैसे है? आखिर स्त्री–विमर्श की आवश्यकता क्यों पड़ी? स्त्रीत्ववादी लेखिकाओं ने अनुभव किया कि सांस्कृतिक वर्चस्व का सबसे प्रचंड दबाव स्त्री पर ही रहा है। प्रत्येक युग में स्त्री को

अलग–अलग संदर्भों में तथा अनेक रूपों में परिभाषित किया गया। प्राचीन काल से आधुनिक काल तक स्त्री–विमर्श के आयाम बदलते रहे हैं।

प्राचीन काल से ही नारी अपने बहुविध रूपों में साहित्य में मौजूद रही है। हमारे देश में नारी की स्थिति युग के अनुरूप परिवर्तित होती रही है। उसकी अवस्था में वैदिक युग से लेकर आज तक अनेक उतार–चढ़ाव आते रहे हैं। स्त्री–विमर्श के आयाम भी बदलते रहते हैं, क्योंकि समय के अनुसार परम्परा, मूल्य, धर्म, संस्कृति, बदलते हैं, क्योंकि बदलते समय के साथ मूल्य, परम्पराए संशोधित और परिवर्तित होते रहते हैं। इसी बदलाव का प्रभाव मानव जीवन में भी पड़ता है। स्त्री–विषयक मूल्य भी बदलते रहे हैं। जो मूल्य किसी समय विशेष में सती प्रथा, पतिव्रत्य स्त्री के लिए आदर्श थे, लेकिन आज तिरस्कृत है। प्राचीन समय में स्त्री के जिस गुण को आदर्श मानकर उसे पूज्य माना जाता था. आज वही गुण स्त्री को अपने प्रति हो रहे अन्याय का कारण लगता है। आज के स्त्री–विमर्श की जो अवधारणाएं हैं. वे स्त्री को स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में स्थापित करना चाहती है। स्त्री अपनी परंपरागत छवि को तोड़ती है, मूल्यों को नकारती है। इस तरह स्त्री–विमर्श के आयाम बदलते रहे हैं।

प्राचीन भारतीय संस्कृति और आध्यात्मिक साहित्य में नारी की सृजन शक्ति को आधार बनाकर उसकी अर्थवत्ता को स्वीकार करते हुए स्त्री–विमर्श की नींव रखी गई है। ऋग्वैदिक काल में नारी का आगमन पुरुष के लिए शुभ और सौरमयुक्त माना जाता था। यह काल नारी जाति की मान्य स्थिति का स्वर्णिम काल माना जाता है। आर्यों को कन्याएं उतनी ही प्रिय थी, जितने पुत्र, कन्याओं की प्राप्ति के लिए वे देवी–देवताओं की मनौती करते थे। वैदिक काल में नारी केवल गृह की सेविका ही नहीं अपितु सम्राज्ञी मानी जाती थी।

'वैदिक युग में पत्नी को बहुत आदर प्राप्त था। वे आर्य पत्नी को ही घर मानते थे–पत्नी ही घर है।' बिना नारी के गृह का अस्तित्व कहां है? और गृह के अभाव में गृहस्थ धर्म का संपादन हो तो कैसे?"[8]

परंतु उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आने लगीस कन्या का जन्म दुख का कारण समझा जाने लगा था। सूत्र कल में नारी की स्थिति में उत्तर वैदिक युग से भी अधिक अपकर्ष हुआ।

महाकाव्य कल में नारी के अधिकार पहले की अपेक्षा कम हो गए थे और अब वह पुरुष की संपत्ति मानी जाने लगी थी। इस युग में स्त्री चरित्र को माया, पापिनी चंचला, सर्पिणी, आग विष आदि संज्ञा देकर उसे घातक सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।"[9]

मनुस्मृति धर्मशास्त्र में नारी के गौरव का गान भी है और उसके प्रति कटुक्तियां भी। इन ग्रंथो में स्त्री के अधिकारों की भी विशेष चर्चा की गई है :–

मनु का यह श्लोक ही सारी नारी जाति की महानता का उदघोष है :–

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।"[10]

बौद्ध साहित्य में भी नारी को समुचित सम्मान नहीं दिया गया। बौद्ध जातक कथाओं में नारी को सार्वजनिक उपयोग की वस्तु के रूप में वर्णित किया गया है। जैन धर्म भी नारी को काम, साधना, वासना का मूल समझ कर उसे त्याज्य बताता था। कहते हैं, आदिकाल में भी नारी भोग्या मात्र ही मानी गयी थी। वह क्रय–विक्रय एवं अपहरण की वस्तु बनती जा रही थी। आधुनिक स्त्री धर्म, संस्कृति का विरोध करती है, नारी को आपत्ति है कि धर्म ने उसकी सुप्त चेतना को कभी जागृत नहीं होने दिया। आज की नारी दहेज प्रथा,

बाल–विवाह, सती प्रथा जैसी परम्पराओं से अपने को सहमत नहीं कर पाती। ये किसी समय विशेष में भले ही मूल्य रहे हो, इसकी परम्परा रही हो, लेकिन समय बदला है, समय के साथ–साथ व्यक्ति भी। ऐसे में नारी भी परम्परा व मूल्यों को परखने का उपक्रम करने लगी है। यह नारी की प्रतिक्रिया नहीं है बल्कि उसके चेतना संपन्न होते जाने का प्रमाण है।

निष्कर्ष :-

समाज के निर्माण में जितना योगदान पुरुष करता है उससे भी कहीं अधिक स्त्री करती है। स्त्री विमर्श यह मानकर चलता है कि स्त्री की गुलामी के लिए पुरुष जिम्मेदार नहीं है अपितु पितृ सत्तात्मक सिद्धांतों पर आधारित वह व्यवस्था है जो पुरुषों के हित में है और स्त्री को पराधीन बनाती है। स्त्रियों के प्रति बुनियादी नजरिया बदलने, स्त्री को पितृसता के दायरे से बाहर स्वायत्त पहचान निर्मित करने में स्त्री–पुरुष दोनों की स्त्रीवादी वैचारिकी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. अर्जुन चौहान, विमर्श के विविध आयाम, पृष्ठ –30
2. हिमप्रस्थ, जनवरी–2012, डॉ. जोराम यालाम नाबाम (स्त्री–विमर्श के वास्तविक मुद्दे) पृष्ठ 9
3. सं. राजेन्द्र यादव, हंस, नवंबर–2010 शरदसिंह (स्त्री–विमर्श का सही रास्ता दिखाता है मैत्रेयी का साहित्य) पृष्ठ 70
4. सं. डॉ. एम फीरोज अहमद, वाड्मय (स्त्री–विमर्श और मृणाल पाण्डे का कथा साहित्य) जगत सिंह बिष्ट, जुलाई–दिसम्बर–2007, पृष्ठ 86
5. सं. अरविन्द जैन, लीलाधर मंडलोई, स्त्री–मुक्ति का सपना, पृष्ठ–36
6. सुधा सिंह, ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ, पृष्ठ 93
7. स. डॉ. एम. फिरोज, वाड्मय (मध्यकालीन हिन्दी भक्तिकाव्य और नारी–विमर्श के आयाम प्रो. रमेश शर्मा, जुलाई–दिसम्बर–2007, पृष्ठ 124
8. डॉ0 कमला ऋग्वेद में नारी, पृष्ठ –42
9. वही, पृष्ठ संख्या– 64
10. अल्का प्रकाश, नारी चेतना के आयाम, पृष्ठ 88

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 51-54

सुरक्षा और सेहत, विकसित भारत के लिए महत्वपूर्ण

" Happiness has many roots, but none more important than security"

डॉ. राजेश कुमार सिन्हा
भौक्षणिक प्र ाासक, सरस्वती ि ा. वि. मंदिर खाचरौद।

शोध सारांश :-

प्रकृति महामोहमय ममतामयी मातत्व की अपार क्षमता समपन्न छाया है। वह अपने अवयवों से प्रत्येक स्वरूपों की रक्षा करती है। सुरक्षा प्राकृतिक अवधारणा है प्रकृति ने सुरक्षा की भावना को छोटे से लेकर बडे जीवों में संरक्षित किया है। यह गुण जीवों की प्रकृतिक बनावट से लेकर उनके गुणों में भी परिलक्षित होता है। सुरक्षा एक व्यापक संकल्पना है। यह नियमों और दिशा निदेशें से बाहर जाकर कार्य करने से हमे सचेत करता है। मानव ऐतिहासिक रूप से सुरक्षा के मुद्दों के प्रति संवेदनशील रहा है। वर्तमान संदर्भ में, यह समझा जा सकता है, कि सुरक्षा किन क्षेत्रों में आव यक है। यहाँ चर्चा का विशय "सुरक्षा और सेहत, विकसित भारत के लिए महत्वपूर्ण है"।

प्रमुख शब्द :- महामोहमय, ममतामयी, परिलक्षित, विश्वतोमुखः, प्रजाभ्यः, स्वस्ति, बहुआयामी।

प्रस्तावना :-

"Security isn't securites. It's knowing that someone cares whether you are oe cease to be" अर्थात, सुरक्षा का मतलब सुरक्षा नहीं है। इसका मतलब है यह जानना कि कोई आपकी परवाह करता है, चाहे आप हो या न हो। वेदों में सुरक्षा और सेहत के विषय में कई महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए गए हैं। वेदों के अनुसार, सुरक्षा और सेहत के लिए आत्म–विश्वास, आत्म–सशक्तिकरण, और आत्म–निर्भरता आवश्यक हैं। वेदों में सुरक्षा के विषय में कई मंत्रों में वर्णन किया गया है। उदाहरण के लिए, ऋग्वेद में कहा गया है। "अग्निर्मे विश्वतोमुखः संरक्षतु माम्।" अर्थात, "अग्नि मेरी सुरक्षा करे।"

इस मंत्र में अग्नि को सुरक्षा के देवता के रूप में पुकारा गया है, जो हमें सुरक्षित रखता है। वेदों में सेहत के विषय में भी कई महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए गए हैं। उदाहरण के लिए, अथर्ववेद में कहा गया है –"स्वस्ति नः प्रजाभ्यः स्वस्ति नः पशुभ्यः।" अर्थात, "हमारे लिए स्वास्थ्य और समृद्धि हो। हमारे पशुओं के लिए स्वास्थ्य और समृद्धि हो।" इस मंत्र में स्वास्थ्य और समृद्धि की कामना की गई है, जो हमें सेहतमंद और समृद्ध बनाती है। इन विचारों से यह स्पष्ट होता है कि वेदों में सुरक्षा और सेहत को बहुत महत्व दिया गया है। वेदों के अनुसार, आत्म–विश्वास, आत्म–सशक्तिकरण, और आत्म–निर्भरता सुरक्षा और सेहत के लिए आवश्यक हैं तभी कोई भी समाज या राश्ट्र उन्नति को प्राप्त होगा।

स्वामी विवेकानंद ने सुरक्षा और सेहत पर कई प्रेरक विचार व्यक्त किए हैं। उनके अनुसार, सुरक्षा और सेहत के लिए आत्म–विश्वास और आत्म–सशक्तिकरण आवश्यक हैं। उन्होंने कहा है, "स्वास्थ्य ही सबसे बड़ा धन है"। स्वामी विवेकानंद ने यह भी कहा है कि हमें अपने जीवन में संतुलन बनाने के लिए शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सेहत पर ध्यान देना चाहिए। उन्होंने कहा है,– "शक्ति जीवन है, निर्बलता मृत्यु है। विस्तार जीवन है, संकुचन मृत्यु है। प्रेम जीवन है, द्वेष मृत्यु है"। इसके अलावा, स्वामी विवेकानंद ने सुरक्षा और सेहत के लिए आत्म–निर्भरता और आत्म–सुरक्षा पर भी जोर दिया है। उन्होंने कहा है,– "आपको अपने जीवन में सुरक्षित और सेहतमंद बनाने के लिए अपने आप पर विश्वास करना चाहिए"[2]। इन विचारों से यह स्पष्ट होता है कि स्वामी विवेकानंद सुरक्षा और सेहत को बहुत महत्व देते थे। वे मानते थे कि आत्म–विश्वास, आत्म–सशक्तिकरण, और आत्म–निर्भरता सुरक्षा और सेहत के लिए आवश्यक हैं।

"विकसित भारत" भारत सरकार का सर्वोतम लक्ष्य है स्वतंत्रता की 100 वीं वर्शगाठ 1947 तक भारत को विकसित राश्ट्र बनाना है। राश्ट्रीय सुरक्षा दिवस जो भारतीय सुरक्षा परिशद द्वारा प्रत्येक वर्श 4 मार्च को मनाया जाता है ने विकसित भारत के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु कार्यस्थल सुरक्षा, सार्वजनिक सुरक्षा और पर्यावरण सुरक्षा पर विशे ा घ्यान देने की पहल की है। 54 वीं वर्शगांठ मनाते हुए, भारतीय सुरक्षा परिशद ने 2025 ने थीम दी है – "सुरक्षा और सेहत, विकसित भारत के लिए महत्वपूर्ण है"। इसकी प्राप्ति हेतु कार्यस्थल दुर्घटनाओं को रोकना, सुरक्षा जागरूकता बठाना और भौक्षिक गतिविधियों के माध्यम से सुरक्षा के प्रति जागरूक संस्कृतिक विकसित करना है। विकसित होने की अवधारणा को सुरक्षा की सामूहिक जिम्मेदारी के विना प्राप्त नहीं किया जा सकता है। हमें सुरक्षा कानूनों और विनियमों का अनुपालन सुनि ित करना होगा। किसी राश्ट्र का विकास होना सिर्फ औद्योगिक विकास से ही संभव नहीं है बल्कि इसके लिए लोगों की सुरक्षा और कल्याण की उचित व्यवस्था का भी होना जरूरी है। विकसित राष्ट्र की अवधारणा एक जटिल और बहुआयामी अवधारणा है, जिसमें कई तत्व शामिल हैं। इन तत्वों की विवेचना करने से हमें विकसित राष्ट्र की अवधारणा को बेहतर ढंग से समझने में मदद मिल सकती है।

आर्थिक विकास विकसित राष्ट्र की एक मुख्य विशेषता है। इसमें उच्च आय, कम बेरोजगारी, और उच्च जीवन स्तर शामिल हैं। विकसित राष्ट्र में शिक्षा और स्वास्थ्य की सुविधाएं उच्च स्तर की होती हैं। इसमें उच्च शिक्षा दर, कम बाल मृत्यु दर, और उच्च जीवन प्रत्याशा को बनाये रखना शामिल हैं। विकसित राष्ट्र में राजनीतिक स्थिरता होती है, जिसमें लोकतंत्र, मानव अधिकार, और न्यायपालिका की स्वतंत्रता शामिल हैं। विकसित राष्ट्र में सामाजिक न्याय उच्च कोटि की होती है, जिसमें समानता, न्याय, और मानव अधिकारों का सम्मान शामिल हैं। विकसित राष्ट्र पर्यावरण संरक्षण की व्यवस्था को भी समाहित करता है, जिसमें प्रदूषण नियंत्रण, वनस्पति संरक्षण, और जल संरक्षण शामिल हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी को भी संरक्षित प्रारूप में विकसित राष्ट्र देखना चाहता है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति पर्यावरण को ध्यान में रख कर की जाती है, जिसमें अनुसंधान, विकास और नवाचार शामिल हैं। विकसित राष्ट्र में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की सुरक्षा एक विकसित प्रणाली की व्यवस्था को द ार्शाता है, जिसमें अन्य देशों के साथ सहयोग, व्यापार, और राजनीतिक संबंध शामिल हैं। इन तत्वों की विवेचना करने से विकसित राष्ट्र की अवधारणा को बेहतर ढंग से समझने में मदद मिल सकती है। यह भी समझने में मदद करता है कि विकसित राष्ट्र की दिशा में कैसे काम किया जा सकता है। सुरक्षा के

बिना विकसित भारत की कल्पना संभव नहीं है। सुरक्षा एक ऐसी आवश्यक शर्त है जो किसी भी देश के विकास और समृद्धि के लिए आवश्यक है। सुरक्षा के कई पहलू हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं– राष्ट्रीय सुरक्षा यह देश की सीमाओं की सुरक्षा और संरक्षण के बारे में है। आंतरिक सुरक्षा यह देश के अंदरूनी हिस्सों में शांति और स्थिरता बनाए रखने के बारे में है। आर्थिक सुरक्षा यह देश की आर्थिक स्थिरता और समृद्धि के बारे में है। सामाजिक सुरक्षा यह देश के नागरिकों के सामाजिक और मानवाधिकारों के बारे में है। इन सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए, समझ सकते हैं कि सुरक्षा एक ऐसी आवश्यक शर्त है जो किसी भी देश के विकास और समृद्धि के लिए आवश्यक है। मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक सुरक्षा हमारे जीवन के महत्वपूर्ण पहलू हैं जो हमारे समग्र स्वास्थ्य और कल्याण को प्रभावित करते हैं। मानसिक सुरक्षा का अर्थ है हमारे मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा करना और मानसिक तनाव, चिंता, और अवसाद जैसी समस्याओं से बचना। मानसिक सुरक्षा के लिए हमें अपने मानसिक स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए, जैसे कि तनाव प्रबंधन के लिए योग, ध्यान, और व्यायाम करना। स्वस्थ भोजन करना और पर्याप्त नींद लेना। दोस्तों और परिवार के साथ समय बिताना और सामाजिक समर्थन प्राप्त करना। मानसिक स्वास्थ्य पेशेवरों से मदद लेना जब आवश्यक हो।

नैतिक सुरक्षा हमारे नैतिक मूल्यों और सिद्धांतों की रक्षा करना और नैतिक रूप से सही निर्णय लेने को मार्गद ान देता है। नैतिक सुरक्षा के लिए हमें अपने नैतिक मूल्यों का पालन करना चाहिए, जैसे कि सच्चाई और ईमानदारी का पालन करना। दूसरों के अधिकारों और गरिमा का सम्मान करना। नैतिक रूप से सही निर्णय लेना और अपने कार्यों के परिणामों को स्वीकार करना। नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देने वाले संगठनों और समुदायों में शामिल होना।

आध्यात्मिक सुरक्षा हमारे आध्यात्मिक विश्वासों और मूल्यों की रक्षा करना और आध्यात्मिक रूप से संतुष्ट जीवन जीना, आध्यात्मिक सुरक्षा के लिए हमें अपने आध्यात्मिक विश्वासों का पालन करने की राह दिखाता है, जैसे कि अपने धर्म या आध्यात्मिक परंपरा का पालन करना। प्रार्थना, ध्यान, और अन्य आध्यात्मिक अभ्यासों में शामिल होना। आध्यात्मिक नेताओं और गुरुओं से मार्गदर्शन प्राप्त करना। आध्यात्मिक समुदायों में शामिल होना और दूसरों के साथ आध्यात्मिक अनुभव साझा करना। आध्यात्मिक सुरक्षा का अर्थ है हमारे आध्यात्मिक विश्वासों और मूल्यों की रक्षा करना और आध्यात्मिक रूप से संतुष्ट जीवन जीना। आध्यात्मिक सुरक्षा के लिए अपने आध्यात्मिक विश्वासों का पालन करना चाहिए, जैसे कि अपने धर्म या आध्यात्मिक परंपरा का पालन करना। प्रार्थना, ध्यान, और अन्य आध्यात्मिक अभ्यासों में शामिल होना। आध्यात्मिक नेताओं और गुरुओं से मार्गदर्शन प्राप्त करना। आध्यात्मिक समुदायों में शामिल होना और दूसरों के साथ आध्यात्मिक अनुभव साझा करना। किसी भी राष्ट्र के लिए पर्यावरण सुरक्षा बहुत जरूरीहै। पर्यावरण सुरक्षा से तात्पर्य है प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा और संरक्षण, जैसे कि वायु, जल, मिट्टी, और जैव विविधता। पर्यावरण सुरक्षा के महत्व को निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है मानव स्वास्थ्य पर्यावरण सुरक्षा से मानव स्वास्थ्य की रक्षा होती है।

प्रदूषण और पर्यावरणीय क्षति से कई बीमारियाँ और स्वास्थ्य समस्याएं उत्पन्न होती हैं। आर्थिक विकास पर्यावरण सुरक्षा से आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलता है। स्वच्छ और सुरक्षित पर्यावरण से पर्यटन, कृषि, और उद्योग जैसे क्षेत्रों में विकास होता है। जैव विविधताः पर्यावरण सुरक्षा से जैव विविधता की रक्षा होती है। जैव विविधता से पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता और संतुलन बनाए रखने में मदद मिलती है। जलवायु परिवर्तन

पर्यावरण सुरक्षा से जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम किया जा सकता है।

जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न होने वाली समस्याओं जैसे कि तापमान में वृद्धि, समुद्र के स्तर में वृद्धि, और चरम मौसम की घटनाओं को कम करने में पर्यावरण सुरक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। राष्ट्रीय सुरक्षा पर्यावरण सुरक्षा से राष्ट्रीय सुरक्षा की रक्षा होती है। पर्यावरणीय क्षति और प्रदूषण से राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरा हो सकता है प्रदूषण नियंत्रण प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए कदम उठाए जा सकते हैं, जैसे कि वायु और जल प्रदूषण को कम करना।

निष्कर्ष :-

सुरक्षा और सेहत विकसित राष्ट्र के लिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये दो मूलभूत पहलू हैं जो नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। एक सुरक्षित और स्वस्थ समाज में नागरिक अपने जीवन को सामान्य रूप से जीने में सक्षम होते हैं और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक अवसर प्राप्त करते हैं। एक विकसित राष्ट्र में सुरक्षा का अर्थ न केवल शारीरिक सुरक्षा से है, बल्कि यह आर्थिक, सामाजिक, और पर्यावरणीय सुरक्षा को भी शामिल करता है। सुरक्षा के बिना, नागरिक अपने जीवन को सामान्य रूप से जीने में असमर्थ होते हैं और उनके जीवन की गुणवत्ता प्रभावित होती है। इसी तरह, सेहत भी एक विकसित राष्ट्र के लिए महत्वपूर्ण है। एक स्वस्थ समाज में नागरिक अपने जीवन को सामान्य रूप से जीने में सक्षम होते हैं और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक अवसर प्राप्त करते हैं। सेहत के बिना, नागरिक अपने जीवन को सामान्य रूप से जीने में असमर्थ होते हैं और उनके जीवन की गुणवत्ता प्रभावित होती है। इसलिए, सुरक्षा और सेहत विकसित राष्ट्र के लिए महत्वपूर्ण हैं और इन्हें प्राप्त करने के लिए सरकार और नागरिकों को मिलकर काम करना होगा। सुरक्षा और सेहत के बिना, कोई भी देश अपने नागरिकों को सुरक्षित और स्थिर जीवन प्रदान नहीं कर सकता है, जो कि विकास और समृद्धि के लिए आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. अहीर डॉ. राम, राष्ट्रीय सुरक्षा विकास पब्लिशिंग हाउस।
2. कुमार डॉ. विजय, भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा, कॉन्टेम्परेरी बुक्स।
3. कुमार डॉ. अरुण, राष्ट्रीय सुरक्षा और विदेश नीति प्रकाशक सेज पब्लिकेशन्स।
4. तिवारी, डॉ. राजीव भारत की सुरक्षा चुनौतियाँ प्रकाशक रोली बुक्स।
5. कुमार, डॉ. संजय राष्ट्रीय सुरक्षा और आतंकवाद प्रकाशक पियरसन एजुकेशन।
6. चंद्र, डॉ. राम स्वास्थ्य और सेहत प्रकाशक हिंदी पॉकेट बुक्स।
7. राष्ट्रीय सुरक्षा को मजबूत करना हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता : राजनाथ, पंजाब केसरी, 2022. अभिगमन तिथि अक्टूबर 2022।

29/3 Staff Colony Birlagram,Nagda,Ujjain pin-456331.

M. 7694901201

sinha5272@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 55–57

जिंदा मुहावरे उपन्यास में अभिव्यक्त विभाजन की त्रासदी

खान रेशमा बानो
शोधार्थी, हिंदी विभाग, श्रीमती नाथीबाई दामोदर ठाकरसी, महिला विश्वविद्यालय, मुंबई–400020

भारतीय उपमहाद्वीप का विभाजन बीसवीं सदी की सबसे वीभत्स मानवीय त्रासदियों में से एक रहा है। 1947 का यह ऐतिहासिक घटनाक्रम केवल राजनीतिक सीमाओं का पुनःर्निर्धारण नहीं था, बल्कि यह लाखों लोगों की स्मृतियों, घरों, रिश्तों और संस्कृति का विच्छेदन था। इस विभाजन ने जिस प्रकार इंसानी जिंदगियों को खंडित किया, उसे साहित्य ने बार–बार स्वर दिया है। उर्दू और हिंदी की कई महत्वपूर्ण रचनाओं में यह त्रासदी मुखर हुई है। इसी क्रम में नासिरा शर्मा का उपन्यास जिंदा मुहावरे विभाजन की पीड़ा को नए दृष्टिकोण और मानवीय संवेदनाओं के साथ प्रस्तुत करता है। जिंदा मुहावरे नासिरा शर्मा का एक ऐसा महत्त्वपूर्ण उपन्यास है, जिसमें विभाजन की त्रासदी को केवल एक ऐतिहासिक या राजनीतिक घटना के रूप में नहीं, बल्कि उसके मानवीय आयामों के रूप में देखा गया है। यह उपन्यास उन लाखों अनकहे और अनसुने लोगों की कहानियों को जीवंत करता है जो विभाजन के शिकार हुए, जिन्होंने अपनों को खोया, जड़ें उखड़ती देखीं और नई जमीन पर अपनी पहचान के लिए संघर्ष किया। नासिरा शर्मा का लेखन सामाजिक और राजनीतिक चेतना से संपन्न है। वे केवल संवेदना की अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि अपने पात्रों के माध्यम से उस समय के सांस्कृतिक, धार्मिक और वैचारिक अंतर्विरोधों को उजागर करती हैं। उपन्यास का शीर्षक "जिंदा मुहावरे" प्रतीकात्मक रूप से उन लोगों की ओर संकेत करता है जो तमाम विभाजनकारी राजनीति, हिंसा और विस्थापन के बावजूद जिंदा बचे और अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ते रहे। 1947 का विभाजन केवल भारत और पाकिस्तान के बीच सीमा रेखा खींचने का कार्य नहीं था। यह निर्णय लाखों लोगों के जीवन को तहस–नहस कर देने वाला था। इस दौरान हुई सांप्रदायिक हिंसा, हत्याएं, बलात्कार, लूट और विस्थापन ने मानवता को शर्मसार कर दिया। महिलाएं विशेष रूप से इस हिंसा का शिकार बनीं। विभाजन की इस त्रासदी ने पीढ़ियों तक लोगों को प्रभावित किया। जिंदा मुहावरे इसी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में स्थित है। उपन्यास उस कालखंड के भीतर जाकर इतिहास के कोनों में छिपी उन आवाजों को बाहर लाता है जिन्हें मुख्यधारा के इतिहासकारों ने अनदेखा किया।

नासिरा शर्मा के इस उपन्यास में चरित्र सिर्फ घटनाओं के वाहक नहीं होते, बल्कि वे इतिहास की जीवित मिसाल बनकर सामने आते हैं। जिंदा मुहावरे में विभाजन के बाद पाकिस्तान गए लोगों की मानसिक स्थिति, उनकी उलझनें, पहचान की तलाश और मातृभूमि से बिछुड़ने का दर्द बारीकी से चित्रित किया गया है। विशेष रूप से उन पात्रों पर ध्यान देना जरूरी है जो दो देशों की राजनीति के बीच फंसे हुए हैंकृजो न भारत में पूरी

तरह अपने हैं, न पाकिस्तान में। ये पात्र बार–बार इस सवाल से जूझते हैं कि उनकी असल पहचान क्या है? क्या धर्म के आधार पर देश का बंटवारा वाजिब था? क्या उनके सपनों, स्मृतियों और रिश्तों का कोई मूल्य नहीं? एक पात्र जो भारत से पाकिस्तान गया और वर्षों बाद भारत लौटता है, अपने गाँव को पहचान नहीं पाता। वह अपनी ही धरती पर अजनबी बन चुका होता है। यह स्थिति दर्शाती है कि विभाजन केवल भौगोलिक नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक विभाजन भी था। जिंदा मुहावरे में महिला पात्रों की पीड़ा और संघर्ष को विशेष स्थान दिया गया है। विभाजन के दौरान महिलाओं ने दोहरा त्रास झेला–एक ओर उनका घर–परिवार उजड़ा, दूसरी ओर वे खुद भी हिंसा, बलात्कार और अपमान की शिकार हुईं। उपन्यास में महिलाओं की आत्मगाथाओं के माध्यम से यह बताया गया है कि विभाजन के दंश से पुरुषों के साथ–साथ महिलाएं भी कितनी बुरी तरह प्रभावित हुईं, बल्कि कई मामलों में उनसे भी अधिक प्रभावित हुई हैं। नासिरा शर्मा ने उन औरतों की आवाज को अभिव्यक्ति दी है जिन्हें इतिहास ने गूंगा बना दिया था। वे औरतें जो दो देशों की नीतियों और पुरुषों की सत्ता के बीच केवल "सम्मान" के नाम पर मार दी गईं या फिर त्याग दी गईं।

उपन्यास में यह भी बताया गया है कि विभाजन ने केवल लोगों की भौतिक स्थिति नहीं बदली, बल्कि उनकी सांस्कृतिक और भाषाई पहचान को भी झकझोर कर रख दिया। भारत में उर्दू बोलने वाले मुसलमानों को शक की नजरों से देखा जाने लगा, जबकि पाकिस्तान में हिंदीभाषी मुसलमानों को "भारतीय" समझकर हाशिये पर डाल दिया गया। नासिरा शर्मा इस मुद्दे को उठाकर पाठकों को यह सोचने पर विवश करती हैं कि भाषा, जो कि सांस्कृतिक समृद्धि का प्रतीक होती है, कैसे राजनीति का शिकार बन जाती है। उपन्यास के पात्रों की बातचीत, उनके मुहावरे और बोलचाल विभाजन की इस भाषा–राजनीति को बखूबी रेखांकित करते हैं। नासिरा शर्मा का लेखन शैली भावनाओं और विचारों का संतुलित संयोजन है। वे एक पत्रकार की दृष्टि से सटीक तथ्यों को रखती हैं और एक रचनात्मक साहित्यकार की तरह उन तथ्यों को मानवीय संवेदना से जोड़ती हैं। जिंदा मुहावरे किसी एक पात्र या कहानी का आख्यान नहीं है, बल्कि यह उन तमाम अनुभवों का कोलाज है जो विभाजन की विभीषिका से उपजे। इस उपन्यास में संवादों की ताकत स्पष्ट रूप से झलकती है। पात्रों की बातों में स्थानीय मुहावरों और कहावतों का प्रयोग उपन्यास को लोकजीवन से जोड़ता है। यही मुहावरे उपन्यास के शीर्षक का औचित्य सिद्ध करते हैं। ये 'जिंदा मुहावरे' उन जिंदगियों के प्रतीक हैं, जो समय की मार झेलकर भी मौन नहीं रहीं, बल्कि उन्होंने अपनी व्यथा को अभिव्यक्ति दी।

जिंदा मुहावरे केवल अतीत की बात नहीं करता, बल्कि वह वर्तमान को भी आईना दिखाता है। आज जब धर्म और पहचान की राजनीति फिर से सर उठा रही है, तब यह उपन्यास हमें आगाह करता है कि हम इतिहास की गलतियों से सबक लें। यह उपन्यास विभाजन के घावों को कुरेदकर उन्हें भुलाने के लिए नहीं, बल्कि समझने और उनसे सीखने के लिए प्रेरित करता है। वर्तमान समय में जब सीमाएँ फिर से कड़ी हो रही हैं, और इंसान–इंसान के बीच दीवारें खड़ी की जा रही हैं, तब जिंदा मुहावरे जैसे उपन्यास सामाजिक–सांस्कृतिक समरसता की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं।

जिंदा मुहावरे एक ऐसा साहित्यिक दस्तावेज है जो विभाजन की त्रासदी को मानवीय दृष्टि से देखता है। नासिरा शर्मा ने इस उपन्यास के माध्यम से उन लोगों की आवाज को शब्द दिए हैं जिन्हें इतिहास की मुख्यधारा ने भुला दिया था। उपन्यास विभाजन के केवल हिंसात्मक पहलुओं पर नहीं, बल्कि उस सामाजिक,

सांस्कृतिक और मानसिक विघटन पर केंद्रित है जो आज भी हमारे समाज में विद्यमान है। यह उपन्यास हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि क्या हम आज भी उस त्रासदी से उबर पाए हैं? या फिर हमने केवल उसके घावों पर पर्दा डाल दिया है? जिंदा मुहावरे हमें झकझोरता है, सोचने पर मजबूर करता है और अंततः हमें यह समझाता है कि विभाजन सिर्फ एक ऐतिहासिक दुर्घटना नहीं, बल्कि एक सतत् मानसिक संघर्ष है—जो आज भी जीवित है।

Mobile 9137510965
rk3989205@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 58–63

The Enduring Legacy of Ashoka : Art and Architecture in a Transformative Era

Harish Kumar
Research Scholar, Monad Univesity, Hapur

An important period in Indian history, the reign of Emperor Ashoka Maurya (c. 268–232 BCE) was characterized by significant political, social, and religious changes. Ashoka converted to Buddhism after the bloody Kalinga War, which had a substantial impact on his policies and, in turn, the aesthetics and architectural design of his enormous empire. In addition to being beautiful works of art, Ashokan architecture and art are potent visual representations of the emperor's dedication to Dhamma, or the values of compassion, righteousness, and non-violence, and his desire to spread these ideals throughout his realm and beyond. Even though Indian art and architecture had distinctive features before Ashoka, they were mostly made of ephemeral materials like brick and wood, leaving little physical evidence for contemporary researchers. The widespread use of stone, which guaranteed the durability of imperial declarations and religious constructions, underwent a dramatic change throughout the Mauryan period, and especially during Ashoka's rule. This change demonstrates Ashoka's wish to produce timeless representations of his reign and religion and reflect the empire's economic and technological achievements.

The artistic and architectural endeavors under Ashoka can be broadly categorized into several key forms: the monolithic pillars bearing his edicts, the stupas enshrining Buddhist relics, the rock-cut caves serving as abodes for monks, and the monumental sculptural works adorning these structures. Each of these forms played a crucial role in disseminating Ashoka's message and shaping the visual culture of the time.

The Majestic Pillars of Ashoka: Voices in Stone :

Perhaps the most iconic and distinctive contribution of Ashokan art and architecture is the series of monolithic sandstone pillars erected throughout the empire. These towering shafts, typically ranging between 40 to 50 feet in height, were meticulously crafted from single blocks of buff-colored sandstone quarried primarily from Chunar, near Varanasi. Their transport and erection across vast

distances speak volumes about the organizational capacity and engineering prowess of the Mauryan administration. Each pillar comprises three main components: a circular or lotus-shaped base, a tapering cylindrical shaft, and an intricately carved capital. The shafts are remarkable for their smooth, highly polished surfaces, a characteristic Mauryan finish that lends them a distinctive luster and grandeur. The absence of mortar in their construction, with the capital held in place by its own weight and a dowel, further attests to the sophisticated engineering involved.

The capitals of the Ashokan pillars are masterpieces of Mauryan sculpture, typically featuring animal figures such as lions, elephants, bulls, and horses, often seated on an abacus adorned with floral or geometric motifs. The most celebrated of these is the Lion Capital of Sarnath, which has been adopted as the national emblem of India. This capital depicts four majestic lions standing back-to-back, symbolizing power, courage, pride, and confidence. Below the lions is a drum adorned with four chakras (wheels) and the same four animals in profile, separated by smaller inverted lotus motifs. The chakra, often interpreted as the Wheel of Dhamma, represents the Buddha's teachings and Ashoka's commitment to spreading them.

The primary purpose of these pillars was to disseminate Ashoka's edicts – his pronouncements on matters of law, administration, morality, and religious policy. Inscribed in Prakrit language using the Brahmi script, these edicts served as a direct communication channel between the emperor and his subjects. They articulate Ashoka's remorse over the Kalinga War, his commitment to non-violence and compassion, his principles of righteous conduct, and his efforts to promote the welfare of all beings. The strategic placement of these pillars along important trade routes and in significant urban centers ensured that Ashoka's messages reached a wide audience.

Beyond their didactic function, the pillars also served as potent symbols of imperial authority and the emperor's adherence to Buddhist principles. Their imposing scale and exquisite craftsmanship projected an image of power and stability, while the Buddhist symbolism embedded in their capitals subtly reinforced Ashoka's religious leanings and his vision of a righteous empire. The pillars, therefore, stand as remarkable examples of how art and architecture were consciously employed to serve political and religious agendas.

The Sacred Stupas: Relics and Remembrance :

Another significant architectural contribution of Ashoka's reign is the proliferation of stupas – dome-shaped structures originally built to enshrine relics of the Buddha or other important Buddhist figures. While stupas existed before Ashoka, his patronage led to a dramatic increase in their number and scale, transforming them into prominent features of the religious landscape. Legend attributes the construction of 84,000 stupas to Ashoka, though the accuracy of this figure is debated.

Nevertheless, archaeological evidence suggests a widespread building activity during his rule. The core concept of the stupa is rooted in the funerary mounds of ancient India. Ashoka adapted this form to create monuments that symbolized the Buddha's parinirvana (final liberation) and served as focal points for Buddhist devotion. The basic design of an early Ashokan stupa typically consisted of a hemispherical dome (anda) resting on a circular or square base (medhi). The andha was surmounted by a harmika, a square railing enclosing a mast (yashti) that supported a series of chatras (ceremonial umbrellas), symbolizing royalty and high status. The entire structure was often enclosed by a circumambulatory path (pradakshinapatha) and one or more gateways (toranas).

The most famous surviving stupa that received significant enhancements during Ashoka's time is the Great Stupa at Sanchi. While the original brick stupa is believed to have been commissioned by Ashoka to house relics of the Buddha, the massive stone casing and elaborate toranas were added in later periods. However, the foundational structure and the initial impetus for its construction are attributed to Ashoka. The Sanchi Stupa exemplifies the evolution of stupa architecture over centuries, with Ashoka's contribution laying the groundwork for its subsequent grandeur. Other notable stupas associated with Ashoka include the Dhamek Stupa at Sarnath, believed to mark the spot where the Buddha delivered his first sermon, and the stupas at Bharhut and Bodh Gaya. These structures, though often modified or expanded in later periods, bear the hallmarks of early stupa architecture and underscore Ashoka's commitment to establishing tangible reminders of the Buddha's presence and teachings across his empire. The stupas served not only as reliquaries but also as centers for monastic communities and pilgrimage, fostering the growth and spread of Buddhism.

The Austere Beauty of Rock-Cut Caves: Abodes of Ascetics :

In his efforts to support the burgeoning Buddhist monastic order, Ashoka also initiated the practice of carving rock-cut caves into cliffs and hillsides. These caves provided simple yet durable shelters for monks, offering them a conducive environment for meditation and study. The earliest examples of rock-cut architecture in India are attributed to the Ashokan period, primarily in the Barabar and Nagarjuni hills of Bihar.

The Barabar caves, notably the Sudama and Lomash Rishi caves, are characterized by their simple rectangular or circular plan, rock-cut benches for the monks to rest, and highly polished interiors that mirror the finish of the Ashokan pillars. The Lomash Rishi cave is particularly significant for its intricately carved facade, which replicates the form of contemporary wooden architecture, featuring chaitya arches and lattice work. This suggests that early rock-cut architecture drew inspiration from existing building traditions in perishable materials. The Nagarjuni caves, located nearby, were dedicated to the Ajivika sect, another ascetic group that Ashoka also patronized, reflecting his broader

policy of religious tolerance. These caves, such as the Gopi and Vapiya caves, share similar architectural features with the Barabar caves, highlighting the prevailing architectural style for monastic dwellings during this period.

The rock-cut caves represent a departure from earlier building practices and demonstrate a new approach to creating permanent and functional spaces for religious communities. Their austere simplicity reflects the ascetic ideals of early Buddhism and the emperor's support for spiritual pursuits. These caves not only provided shelter but also fostered a sense of community and facilitated the preservation and transmission of Buddhist teachings.

Monumental Sculpture: Animating the Sacred Landscape :

While the pillars and stupas themselves represent significant sculptural achievements, the Ashokan era also witnessed the creation of numerous standalone sculptures and relief carvings that adorned these architectural structures. The animal capitals of the pillars are prime examples of the high level of craftsmanship and naturalistic rendering achieved by Mauryan sculptors. The powerful and serene depictions of lions, elephants, bulls, and horses convey a sense of majesty and authority, aligning with the imperial symbolism of the pillars. The abaci beneath the animal figures are often adorned with intricate carvings of floral motifs, geometric patterns, and animal processions, showcasing the artistic sensibilities of the time. The depiction of the chakra, both on the pillar capitals and as standalone motifs, underscores its importance as a symbol of Dhamma and Ashoka's righteous rule.

Relief carvings on stupa railings and gateways, though largely belonging to post-Ashokan periods, often depict scenes from the Buddha's life, Jataka tales (stories of the Buddha's previous lives), and auspicious symbols. While the earliest stupas under Ashoka might have been simpler in their ornamentation, the foundations laid during his reign paved the way for the elaborate sculptural programs that characterized later Buddhist monuments. Fragments of monumental Yaksha and Yakshi figures (male and female nature spirits) have also been attributed to the Mauryan period, suggesting the continuation of earlier indigenous sculptural traditions alongside the new Buddhist-inspired art. These figures, often depicted as robust and sensuous, highlight the syncretic nature of early Indian art, where local beliefs and deities coexisted with the emerging Buddhist iconography.

The Legacy of Ashokan Art and Architecture: A Lasting Influence :

The art and architecture of the Ashokan era left an indelible mark on the subsequent artistic and cultural development of India and beyond. The adoption of stone as a primary building material set a precedent for monumental constructions that would continue for centuries. The highly polished Mauryan finish became a distinctive characteristic of the period and influenced later sculptural styles.

The pillar edicts established a unique form of public communication, blending imperial authority with ethical and religious principles. The symbolism embedded in the pillar capitals, particularly the Lion Capital of Sarnath and the chakra, became potent national symbols, embodying the ideals of peace, righteousness, and strength. The stupa, popularized and propagated under Ashoka's patronage, evolved into a central architectural form in Buddhist traditions across Asia. Its basic design and symbolic significance were adopted and adapted in various regions, from Sri Lanka to Southeast Asia and East Asia, playing a crucial role in the dissemination of Buddhist faith and art. The rock-cut caves initiated a long tradition of carving monastic dwellings and chaitya halls (prayer halls) into natural rock formations, a practice that flourished in subsequent periods, particularly in western India. The early examples from Ashoka's time provided a model for the more elaborate cave complexes that followed.

The art and architecture of the Ashokan period represent a transformative phase in Indian history. Under the patronage of Emperor Ashoka, art and architecture were consciously employed as powerful tools for disseminating religious ideology, asserting imperial authority, and creating enduring monuments that reflected the values of a righteous and compassionate ruler. The legacy of Ashoka's artistic and architectural endeavors continues to resonate today, providing invaluable insights into a pivotal era that shaped the religious, political, and cultural landscape of India and left an enduring imprint on the artistic traditions of Asia. The pillars stand as silent yet eloquent reminders of an emperor who sought to conquer not through force but through the power of Dhamma, leaving behind a visual legacy that continues to inspire awe and reflection.

References:

- Allchin, F. R. (1995). "*The Mauryan State and Empire*", In Allchin, F. R. (ed.), *The Archaeology of Early Historic South Asia: The Emergence of Cities and States*. Cambridge University Press.
- Avari, Burjor (2007), *India, the Ancient Past: A History of the Indian Sub-continent from C. 7000 BC to AD 1200*. Taylor & Francis.
- Basham, Arthur Llewellyn Basham (1951), *History and doctrines of the Ājīvikas: a vanished Indian religion,* foreword by L. D. Barnett, London.
- Boesche, Roger (2003), *The First Great Political Realist: Kautilya and His Arthashastra*. Lexington Books.
- Coningham, Robin; Young, Ruth (2015), *The Archaeology of South Asia: From the Indus to Asoka, 6500 BCE–200 CE,* Cambridge University Press.
- Dyson, Tim (2018), *A Population History of India: From the First Modern People to the Present Day,* Oxford University Press.

- Irfan Habib; Vivekanand Jha (2004), *Mauryan India. A People's History of India. Aligarh Historians Society* / Tulika Books, New Delhi.
- Jansari, Sushma (2023), *Chandragupta Maurya: The creation of a national hero in India,* UCL Press, London.
- John Cort (2010), *Framing the Jina: Narratives of Icons and Idols in Jain History,* Oxford University Press.
- Kailash Chand Jain (1991), *Lord Mahāvīra and His Times,* Motilal Banarsidass, Delhi.
- Kosambi, D.D. (1988), *The Culture and Civilization of Ancient India in Historical Outline*, New Delhi: Vikas Publishing House.
- Malalasekera, Gunapala Piyasena (2002), *Encyclopaedia of Buddhism:* Acala, Government of Ceylon
- Mookerji, Radha Kumud (1988) [first published in 1966], *Chandragupta Maurya and his times* (4th ed.), Motilal Banarsidass, Delhi.
- R. C. Majumdar (2003) [1952], *Ancient India*. Motilal Banarsidass, Delhi.
- R.K. Mookerji (1966). *Chandragupta Maurya and His Times,* Motilal Banarsidass, Delhi.
- Thapar, Romila (2001), *Asoka and the Decline of the Mauryas,* New Delhi, Oxford University Press.

Mobile-7988778389

mk471918@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 64–68

Women Empowerment: A Journey Toward Equality and Growth

Pawan, Research Scholar,
Dr . Meena, Research Supervisor,
Department of Economics, Om Sterling Global University

Abstract :

Women empowerment is pivotal for the advancement of gender equality and global development. This paper delves into the various facets of women's empowerment, from social and cultural factors to economic independence and legal rights. It explores historical barriers, the influence of education, and the importance of political participation. Through a review of existing challenges and solutions, the paper highlights how empowering women can positively impact societies and economies. The paper concludes with policy recommendations and the need for a more inclusive global framework.

Introduction :

Women empowerment refers to the process of granting women the agency, resources, and opportunities to make choices in their lives and communities. This research paper aims to address the key drivers of women's empowerment, the obstacles women face, and the importance of global initiatives aimed at achieving gender equality. Empowerment transcends just gender equality; it is also linked to broader societal benefits like improved economic growth, poverty reduction, and social stability. While the international community has made significant strides in promoting women's rights, challenges persist, particularly in developing countries.

- **Social and Cultural Factors Impacting Women's Empowerment :**

Patriarchal Systems and Gender Norms : Patriarchy continues to be the dominant cultural system that restricts women's autonomy and access to opportunities. In many societies, entrenched gender norms assign women roles of domesticity and caregiving, which limits their potential in public life. Despite changing attitudes globally, many communities continue to hold onto these traditional

gender roles, hindering women's progress in various sectors.

Gender Stereotypes : Social expectations rooted in outdated gender stereotypes perpetuate the idea that women are better suited for domestic tasks rather than leadership roles. Such stereotypes can limit women's career choices, while also discouraging personal growth and empowerment. These norms shape the personal and professional opportunities available to women, making it difficult for them to aspire to higher positions in politics, business, and academia.

Religion and Cultural Constraints : In some cultures, religious interpretations have been used to justify restrictions on women's roles in society. However, the evolving interpretations of religious teachings in many parts of the world have led to progress in women's rights. There is a growing movement to reclaim religious teachings that promote gender equality and empower women to participate fully in society.

- **The Role of Education in Women Empowerment :**

Education as a Tool for Empowerment : Education is a powerful instrument of empowerment. It provides women with the knowledge and skills required to make informed decisions, participate in the workforce, and contribute to their communities. However, a large gap remains in education access between men and women, especially in low-income countries. According to UNESCO, 130 million girls globally are out of school, many due to poverty, early marriage, and societal attitudes toward girls' education.

Barriers to Accessing Education : Many girls face significant barriers in accessing education. These include cultural biases favoring boys, economic barriers such as school fees, and safety concerns when traveling to school. In some regions, gender-based violence is a significant deterrent to girls' education, further contributing to the disparity in educational attainment between men and women.

Impact of Education on Economic and Social Empowerment : An educated woman is more likely to enter the workforce, become a business owner, and make informed decisions about her health and family life. Educated women contribute more to the economy and society, and the ripple effect of education benefits entire communities. Educating girls leads to improved health outcomes, economic stability, and increased gender equality.

- **Economic Empowerment and Financial Independence :**

Economic Disparities and Gender Pay Gap : Economic empowerment is critical for gender equality. Despite progress, the gender pay gap remains a major challenge globally. Women continue to earn less than men for equal work and are underrepresented in high-paying industries. Additionally, women are more likely to be employed in informal sectors where labor laws and protections are less robust, further limiting their financial independence.

The Rise of Women Entrepreneurs : In recent years, there has been a growing number of women entrepreneurs, especially in developing countries. Microfinance and entrepreneurship programs have played a key role in helping women start their own businesses, creating jobs, and contributing to the local economy. Despite this, women entrepreneurs still face difficulties such as limited access to financing, networks, and mentorship.

Financial Literacy and Independence : Financial independence is a key driver of women's empowerment. Women who are financially independent have greater control over their decisions, from healthcare to personal and family planning. Financial literacy programs aimed at women have helped increase their ability to manage finances, invest, and participate more effectively in economic activities.

- **Legal Rights and Women's Empowerment :**

Property Rights and Economic Participation : In many societies, women face restrictions when it comes to owning property or inheriting assets. Laws that limit women's rights to property perpetuate economic dependence on male family members. Legal reforms that ensure equal property rights are critical for empowering women and enhancing their economic participation.

Reproductive Rights and Health : Control over reproductive health is a fundamental aspect of women's empowerment. Women who can make informed choices about reproduction—whether to have children or how many to have—are more likely to pursue education and career opportunities. Reproductive rights also extend to access to family planning services, maternal care, and sexual health education.

Violence Against Women : Violence against women, including domestic violence, sexual harassment, and trafficking, is a significant barrier to empowerment. Legal frameworks to combat gender-based violence have been introduced globally, but implementation remains uneven, especially in regions where cultural attitudes still tolerate or normalize violence against women.

- **Political Empowerment and Leadership :**

Representation in Politics : Political empowerment is key to achieving gender equality. Women's underrepresentation in political decision-making bodies means that policies often fail to address their unique needs. Women in leadership positions not only advocate for policies that support gender equality but also inspire future generations of women to pursue political careers. However, women continue to face significant barriers in entering politics, such as gender biases and family responsibilities.

Barriers to Political Participation : The political participation of women is hindered by factors such as a lack of financial resources, gender stereotypes, and political networks dominated

by men. These challenges prevent women from taking on leadership roles, despite their abilities and qualifications. In many regions, women also face social stigma for pursuing careers in politics, as it is seen as contrary to traditional gender norms.

Policy Interventions for Political Empowerment : Countries such as Rwanda and Sweden have introduced gender quotas, policies that mandate a certain percentage of political candidates or officeholders to be women. Such policies have significantly increased the number of women in politics and public leadership. Promoting women's political empowerment through quotas, mentorship programs, and public advocacy can break down systemic barriers.

Conclusion :

Women empowerment is a fundamental right that contributes significantly to the well-being and growth of societies globally. As this paper has demonstrated, key areas such as education, economic independence, legal rights, and political participation are central to advancing gender equality. While significant progress has been made, challenges remain—particularly in developing countries and regions where gender norms are deeply entrenched.

The global community must continue to push for reforms that promote women's rights and eliminate barriers to their full participation in society. By investing in education, legal protections, economic opportunities, and political representation, we can create a world where women are fully empowered to live their lives with autonomy and dignity. Achieving gender equality is not just a moral imperative but an essential component of global development.

References

1. Ahmed, S. (2015). *Empowering women: A global perspective*. Oxford University Press.
2. Duflo, E. (2012). *Women's empowerment and economic development*. Journal of Economic Literature, 50(4), 1051–1079. https://doi.org/10.1257/jel.50.4.1051
3. UN Women. (2020). *Gender equality and women's empowerment: Progress and challenges*. United Nations Entity for Gender Equality and the Empowerment of Women. https://www.unwomen.org/en
4. UNESCO. (2019). *Education for sustainable development: Gender equality in education*. United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization. https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000265775
5. World Bank. (2018). *Women, business and the law 2018: Empowering women by improving legal protections*. World Bank Group. https://www.worldbank.org/en/publication/wbl
6. Sen, A. (1999). *Development as freedom*. Alfred A. Knopf.

7. Nussbaum, M. C. (2000). *Women and human development: The capabilities approach*. Cambridge University Press.
8. United Nations Development Programme (UNDP). (2019). *Human development report 2019: Beyond income, beyond averages, beyond today: Inequalities in human development in the 21st century*. UNDP. https://www.undp.org
9. Kabeer, N. (2005). *Gender equality and women's empowerment: A critical analysis of the third millennium development goal*. Gender & Development, 13(1), 13-24. https://doi.org/10.1080/13552070512331332273
10. Mosedale, S. (2005). *Assessing women's empowerment: Towards a conceptual framework*. Journal of International Development, 17(2), 243-257. https://doi.org/10.1002/jid.1214
11. United Nations (UN). (2015). *The 2030 agenda for sustainable development: Transforming our world*. United Nations. https://www.un.org/sustainabledevelopment/sustainable-development-goals
12. Thomas, L. A. (2016). *Economic empowerment and the fight for gender equality: A global challenge*. The Journal of Development Studies, 52(5), 757–772. https://doi.org/10.1080/00220388.2016.1181511

resupawan@gmail.com
dr.meena@osgu.ac.in

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 69–75

भारत की विदेश नीति एवं पड़ोसी देशों के साथ सम्बन्धों का ऐतिहासिक अवलोकन

डॉ. अभिषेक अग्रवाल
सहायक प्राध्यापक (इतिहास विभाग), कला एवं मानवीकि संकाय,
कलिंगा वि वविद्यालय, कोटनी, नया रायपुंर (छ.ग.)

किसी भी दे ा की विदे ा नीति तीन प्रमुख कारकों के पारस्परिक सम्बन्धों से निर्धारित होती है, जिनमें राश्ट्रीय हित, दे ा की भू–राजनीतिक, अनिवार्यता, पड़ोसी दे ा तथा अंतर्राश्ट्रीय वातावरण और वि व भाक्ति सन्तुलन भाामिल है। एक वैध तथा प्रभावकारी विदे ा नीति के निर्धारण में राश्ट्रीय हित की अनिवार्यता, क्षेत्रीय भाक्ति सन्तुलन के परिवर्तित होते स्वरूप, अन्तर्राश्ट्रीय घटनाओं में निरन्तर बदलाव तथा खिचांव और दबावपूर्ण परिस्थितियों के बीच अपने व्यापक राश्ट्रीय हितों की सुरक्षा तथा प्रगति के लिए दे ा अपनी नीतियों का नियमित रूप से समय–समय पर पुनर्मूल्यांकन करते रहते हैं।

भारतीय विदे ा नीति के वैचारिक आधार और मूलभूत परिप्रेक्ष्य को राश्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन से माना जा सकता है। 20 वीं भाताब्दी के तीसरे द ाक में 'तीसरे द ाक में' भारतीय राश्ट्रीय कांग्रेस ने मुक्ति आंदोलन के रूप में वर्श–प्रतिवर्श अपने अन्तर्राश्ट्रीय दृश्टिकोण और नीति का विकास किया।

दिल्ली में 1921 ई. में भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक एक ऐतिहासिक घटना थी, जिसने भारत की विदे ा नीति को प्रभावित किया। पहली बार कांग्रेस ने भारत की विदे ा नीति के बारे में आम प्रस्ताव पास किया, जिसमें यह निहित था कि वर्तमान भारतीय सरकार किसी भी तरह से भारतीय जनमत का प्रतिनिधित्व नहीं करती। इसलिए, भारत ने साम्राज्यवाद के विरूद्ध खिलाफत आंदोलन को सहायता दी और साथ ही उसने अन्य साम्राज्यवादी दे ाों के विरूद्ध इस्लामी अरब राज्यों को अपना समर्थन दिया।

सन् 1927 ई. मद्रास अधिवे ान में कांग्रेस ने प्रस्ताव पास किया जो कि चीन, मेसोपोटामिया और पि िया में भारतीय सेनाओं के प्रयोग के विरूद्ध था। इसके साथ ही इसमें बड़े स्तर पर युद्ध की तैयारी से सम्बन्धित ब्रिटि ा नीति का विरोध किया गया। नेहरू ने बहुत पहले ठीक ही कहा था कि भारतीय विदे ा नीति का मुख्य आधार 1927 ई. का मद्रास अधिवे ान है। इसी वर्श अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने पार्टी के अंदर ही नेहरू की अध्यक्षता में एक ''विदे ा मंत्रालय'' बनाया। उसी समय से 1964 ई. तक विदे ाों के साथ भारत के सम्पर्क में नेहरू की आवाज मुख्य हो गई। 1928 ई. के कलकत्ता अधिवे ान में कांग्रेस ने पि चमी साम्राज्यवाद के विरूद्ध मिस्त्र, सीरिया व ईराक के स्वतंत्रता संघर्श को अपना समर्थन दिया और यह भी कहा गया कि 1929 ई. में राश्ट्र

संघ की दूसरी वि व कांग्रेस का प्रतिनिधित्व साम्राज्यवाद के विरूद्ध था। अतः यहाँ पर कुछ ऐसे चिह्न मिलते हैं, जो यह बताते हैं कि भारतीय नेता एक ऐसे सर्व–एि ायाई आंदोलन के बारे में सोच रहे थे, जो कि यूरोपीय साम्राज्यवाद के विरूद्ध हो।

सन् 1930 ई. के अन्त में कांग्रेस ने खुले रूप से नाजी व फासीवादी गतिविधियों की भर्त्सना की। कांग्रेस ने यह घोशणा की कि वह साम्राज्यवादी युद्ध का समर्थन नहीं करती। इसके साथ ही कांग्रेस ने नि चत किया कि वह अपने आपको फासीवाद तथा साम्राज्यवाद के प्रभाव से दूर रखकर भाान्ति तथा स्वतंत्रता के मार्ग की ओर बढ़ेगी।

जुलाई, 1945 ई. को कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने अपने प्रस्ताव में संयुक्त राश्ट्र संघ के निर्माण को अपना समर्थन दिया। 1946 में पहली बार भारतीयों को अपनी विदे ा नीति स्वतंत्र रूप से निर्धारण करने का अवसर मिला तो उस समय तक संसार लगभग दो गुटों में बंट चुका था। सन् 1946 ई. में जब अन्तरिम सरकार नेहरू के नियंत्रण में थी, तब उनके विचार भीत–युद्ध व भाक्ति राजनीति के बारे में बहुत स्पश्ट थे। 1946 ई. में अपने आका ावाणी भाशण में नेहरू जी ने कहा–''हम यह प्रतिज्ञा करते हैं कि हम यथासम्भव अपने आपको उन गुटों की भाक्ति राजनीति से अलग रखेंगे, जो एक–दूसरे के विरूद्ध हैं। जिसके कारण पहला वि व युद्ध हुआ और जो अब फिर बड़े स्तर पर ना ा का करण बन रही है।'' इसमें कोई भाक नहीं है कि नेहरू का यह कथन भारतीय विदे ा नीति को विगत 70 वर्शा से निरन्तरता व स्थिरता प्रदान कर रहा है।

नेहरू का भारतीय विदे ा नीति के उद्भव और विकास में मुख्य योगदान था कि उन्होनें निश्पक्षता अथवा समदूरी की नीति को अपनाया तथा भारत को दोनों गुटों से दूर रखा। निश्पक्ष्ता की नीति का मुख्य तत्व यह था कि प्रत्येक प्र न पर स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय लिया जाए तथा किसी एक गुट के प्रभाव में आकर निर्णय न लिया जाए। नेहरू तथा भारत की नीति मुख्य रूप से यही रही है कि भाान्ति, निरस्त्रीकरण तथा जातीय समानता का पक्ष लिया जाए, तथा अंतर्राश्ट्रीय सहयोग दिया जाए ताकि अन्तर्राश्ट्रीय झगड़े भाान्तिपूर्वक सुलझाए जा सकें।

भारत के विदेश नीति एवं पड़ोसी देशों से सम्बन्ध :–

पड़ोसियों के साथ संबंध भारत की मुख्य चिंता थी। सौभाग्य से 1962 तक, पाकिस्तान को छोड़ उसके संबंध अन्य पड़ोसी दे ाों के साथ अच्छे थे। नेपाल के साथ 1950 में उसने भाांति एवं मित्रता की संधि की। इससे नेपाल को वाणिज्यिक आवाजाही के लिए भारत से अबाध रास्ता मिला। साथ ही नेपाल को पूर्ण सार्वभौमिकता मिली, और दोनों दे ा एक दूसरे की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार बनाए गए। बर्मा के साथ भारतीय निवासियों और अ–रेखांकित लंबी सीमा की समस्याऐं भी मित्रता की भावना के तहत हल कर ली गई। श्रीलंका में तमिल मूल के निवासियों की समस्या का हल आसान नहीं था। तनाव बना रहा, लेकिन इस दौर में फूट नहीं पड़ी। उनका हल भी मित्रतापूर्वक हो गया। लेकिन पाकिस्तान के साथ और बाद में चीन के साथ समस्याऐं गंभीर बनी रहीं।

भारत-पाकिस्तान सम्बन्ध :–

भारत और पाकिस्तान की घरेलू राजनीतिक समस्याओं ने दोनों दे ाों के द्विपक्षीय सम्बन्धों पर सीधा प्रभाव डाला है। भारत और पाकिस्तान की दो विभिन्न राश्ट्रीय विचारधारायें हैं, जो दक्षिण एि ाया में परस्पर स्वीकृत भाक्ति समानता स्थापित करने में असमर्थ है। भारत के बहुलवाद, लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता तथा पाकिस्तान में इस्लाम की राश्ट्रीय विचारधारायें कांग्रेस और अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के बीच स्वतंत्रता पूर्व संघर्श के दौरान

उत्पन्न हुईं। आजादी से लेकर अब तक भारत और पाकिस्तान सम्बन्धों की प्रमुख समस्या ''क मीर विवाद'' रहा है।

कांग्रेस के नेताओं ने भारत का विभाजन अनिच्छा से स्वीकार किया था। साम्प्रदायिक दंगों और जनसंख्या के अभूतपूर्व स्थानांतरण ने दोनों के बीच सम्बन्ध और भी तनावपूर्ण बना दिए थे। स्वतंत्रता के तुरन्त प चात 22 अक्टूबर, 1947 ई. को पठान कबायलियों की सहायता से पाकिस्तान ने क मीर पर आक्रमण कर दिया। बाध्य होकर क मीर के महाराजा हरी सिंह ने 26 अक्टूबर 1947 ई., को इसके भारत में विलय के संधि–पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। पंडित नेहरू ने भोख अब्दुल्ला को प्रधानमंत्री नियुक्त करवा दिया और भारतीय सेना ने 27 अक्टूबर से इन आतताइयों को हटाना और भगाना आरम्भ कर दिया तथा भीघ्र ही क मीर घाटी को इनसे मुक्त करा लिया। परन्तु क मीर राज्य के प चमी क्षेत्र जिनमें बाल्तिस्तान तथा गिलगिट सम्मिलित है अभी भी पाकिस्तान के अधीन है।

स्थिति गम्भीर हो गई थी और भय था कि कहीं भारत–पाकिस्तान के बीच विस्तृत युद्ध न हो जाए। अतएव पण्डित नेहरू ने संयुक्त राश्ट्र के पास अपनी याचिका भेज दी (30 दिसम्बर 1947), कि वह पाकिस्तान को कहे कि वह अपना अनाधिकृत अधिग्रहण समाप्त करे और भारत को उसका प्रदे ा लौटा दे। सुरक्षा परिशद में इंग्लैण्ड और अमरीका ने पाकिस्तान का पक्ष लिया क्योंकि वे पाकिस्तान को रूस के विरूद्ध एक रक्षा पंक्ति के रूप में देखते थे। यद्यपि भारत ने स्पश्ट पाकिस्तान सेना के हस्तक्षेप की बात की थी, इन दोनों दे ाों ने इस प्र न को भारत–पाक झगड़े का नाम दे दिया। कई प्रस्ताव पारित किए गए, जिनका अन्तिम परिणाम यह था कि जहाँ 31 दिसम्बर को दोनों सेनाऐं थीं, उसे एक नियंत्रण रेखा मान लिया गया और वहाँ संयुक्त राश्ट्र के निरीक्षक नियुक्त कर दिए गए। इसके फलस्वरूप पाकिस्तान क मीर घाटी के उत्तर प चमी और प चमी क्षेत्रों के 84,160 कि.मी. के क्षेत्रों का स्वामी बन गया। इस रेखा से, मुस्लिम कट्टरपंथी भारतीय क्षेत्र में घुसपैठ करते हैं और इस हिंसा में अब तक कई हजार लोग मारे जा चुके हैं।

भारत और पाकिस्तान के बीच तीसरा युद्ध दिसम्बर 1971 में पूर्वी पाकिस्तान की पृथकता को लेकर छिड़ा परन्तु भारत–पूर्वी पाकिस्तान सीमा पर भी क मीर का मामला भाामिल कर लिया गया, जिसमें भारत की सैनिक विजयपूर्ण थी। 02 जुलाई 1972 को हिमांचल प्रदे ा के ि ामला में भारत की प्रधानमंत्री श्रीमति इंदिरा गांधी और पाकिस्तान के राश्ट्रपति जुल्फिकार अली भुट्टो ने ि ामला समझौते पर हस्ताक्षर किए। जिसके अनुसार यह तय किया गया कि भारत प चम में सभी कार्मिक और अधीनिकृत प्रदे ा को लौटा देगा तथा दोनों दे ा द्विपक्षीय वार्ताओं द्वारा भाांतिपूर्ण साधनों से विवादों के निपटारे का प्रयास करेंगे।

1990 के द ाक के मध्य में पाकिस्तान के साथ भाांति बनाए रखने के लिए दोनों दे ाों के प्रधानमंत्रियों ने प्रयास किए। 1999 में भारत के प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी एवं पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नवाज भारीफ ने 1999 की लाहौर ि ाखर सम्मेलन द्वारा दोनो दे ाों के बीच सम्बन्धों में सुधार के लिए कदम बढ़ाये, तत्कालीन वै िक समुदाय के अनेक लोगों ने लाहौर उद्घोशणा को भारत–पाक सम्बन्धों के बीच नए युग का आरम्भ समझा था।

भारत–पाकिस्तान तनाव को कम करने के लिए दोनों दे ाों को चाहिए कि वे पिछली कड़वाहट को भूलकर समस्त मुद्दे पर विचार–विम ा करे, इसके द्वारा परस्पर अधिमान्य व्यापारिक सम्बन्धों को बढ़ावा मिलना

चाहिए।

भारत-चीन सम्बन्ध :-

भारत की विदे ा नीति में चीन के साथ सम्बन्धों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। जिस समय भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई, उस समय चीन में भयंकर गृहयुद्ध चल रहा था। इधर, भारत की अपनी अनेक समस्याऐं थीं जो दे ा के विभाजन से उत्पन्न हुई थीं। साम्राज्यवाद के विरूद्ध चीन के संघर्श के प्रति भारतीय राश्ट्रीय कांग्रेस प्रारम्भ से ही सहानुभूति रखता था। इसने तीस के द ाक में एक मेडिकल मि ान चीन भेजा था। जापान द्वारा चीन के मन्चूरिया प्रान्त पर जब 1931 ई. में आक्रमण किया गया, तब भारत के राश्ट्रवादियों ने न केवल चीन दिवस मनाया बल्कि जापानी वस्तुओं के बहिस्कार का भी आह्वान किया। चीनी गणतंत्र को 1 जनवरी, 1950 ई. को मान्यता देने वाला प्रथम दे ा भारत था। नेहरू ने सुरक्षा परिशद में कम्युनिस्ट चीन को उचित स्थान दिलवाने का प्रयास किया। उन्होनें कोरियाई युद्ध में अमेरिकी स्थिति का समर्थन नहीं दिया और कोरिया से समझौता करवाने की पूरी कोि ा ा की।

1950 ई. में जब चीन ने तिब्बत पर कब्जा कर लिया तब भारत ने इस बात पर विरोध किया कि उसे वि वास में नहीं लिया गया। लेकिन भारत ने तिब्बत पर चीन के अधिकार को मान्यता दी, क्योंकि इसके पहले भी वह चीन का अंग रह चुका था। 1954 ई. में भारत और चीन ने एक संधि पर हस्ताक्षर किए, जिसके तहत भारत ने तिब्बत पर चीन के अधिकार को स्वीकार किया। दोनों दे ाों ने पंच ाील के आधार पर आपसी सम्बन्ध नियमित करना तय किया। सीमा तय करने सम्बन्धी मतभेदों पर विचार किया गया लकिन चीन का कहना था कि उसने अभी पुराने कुओमितांग नक ो का अध्ययन नहीं किया है और इन पर बाद में विचार किया जा सकता है। 1955 ई. में भारत ने बाडुंग सम्मेलन में हुई अफ्रीकी–एि ायाई कांफ्रेंस में चीन के प्रधानमंत्री चाऊ–एन–लाई को समर्थन देकर अपने मित्रता के हाथ को और लम्बा कर दिया।

1959 ई. में भारत–चीन सम्बन्धों में अधिक कड़वाहट तब आई, जब तिब्बत के धार्मिक गुरू दलाईलामा ने जिनका हिन्दू भी आदर करते हैं, चीनी व्यवहार से दुःखी होकर तिब्बत से भागकर भारत में भारण ली। अन्तर्राश्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग ने भी यह निर्णय दिया कि चीनी दलाईलामा को भारण देने पर आपत्ति जताई और बदले में लद्दाख में कोंगका दर्रे में अक्टूबर 1959 ई. में भारतीय सुरक्षा दल पर गोलियाँ चलाईं, जिसमें 5 भारतीय पुलिस वाले मारें गए और एक दर्जन गिरफ्तार कर लिए गए। जब भारत ने इस पर विरोध जताया तो चीन ने कोई संतोशजनक उत्तर नहीं दिया। भारतीय बुद्धिजीवियों ने पंडित नेहरू को कहा कि वह कड़ा रूख अपनाऐं, परन्तु नेहरू का विचार था कि झगड़े को सीमित रखा जाए।

चीनी आक्रमण (1962) :-

पण्डित नेहरू का एि ाया का नेता बनने का तथा संसार में एक महान व्यक्ति बनने का स्वप्न अक्टूबर 1962 में उस समय टूट गया जब चीन ने भारत पर उत्तर पूर्वी सीमान्त क्षेत्र (जिसे अब अरूणाचल कहते हैं) में आक्रमण कर दिया और हमारी कई चौकियाँ रौंद डाली। भारतीय क्षेत्रीय कमाण्डर भयभीत होकर पीछे हट गया और अब चीनियों के लिए भारत के मार्ग खुले थे। निर्भीक चीनियों ने पि चमी क्षेत्र में भी आक्रमण कर दिया और हमारी 13 अग्रिम चौकियों पर अधिकार कर लिया तथा चु ाूल वायु पट्टी की ओर बढ़ चले। समस्त भारत में भय का वातावरण बन गया और ऐसा लगता था कि चीनी असम पर अधिकार कर अन्य भारतीय क्षेत्रों पर अधिकार

कर लेंगे।

09 नवम्बर 1962 को भारत ने अमरीका के राश्ट्रपति कैनेडी को दो पत्र लिखे जिसमें भारत चीन सीमा पर स्थिति को ''अत्यन्त चिन्ताजनक'' बतलाया तथा सैनिक सहायता की मांग की। उन्होनें इंग्लैण्ड की सरकार को भी सैनिक सहायता के लिए लिखा। चीन ने इस भय से कि सम्भवतः पि चमी यूरापीय भाक्तियों से टक्कर हो जाएगी भारत की सीमा पर अग्रिम क्षेत्रों से अपनी सेनाऐं हटा ली तथा स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है और आज 60 वर्श उपरान्त भारत चीन सीमा रेखा को रेखांकित नहीं किया गया है।

भारत-बांग्लादेश के सम्बन्ध :-

बांग्लादे ा के साथ भारत के सम्बन्ध निकट ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक समानताओं से परिलक्षित होते हैं। यद्यपि भारत ने 17 अप्रैल 1972 को स्वतंत्र बांग्लादे ा की स्थापना में प्रमुख भूमिका निभाई, फिर भी ढाका के साथ नई दिल्ली के सम्बन्ध न तो निकटतम रहे और न ही विवादों से मुक्त रहे। 1975 में बांग्लादे ा ने भाशाई राश्ट्रवाद से विमुख होना आरंभ कर दिया, जहाँ से उसका विमुक्ति संघर्श भुरू हुआ और उसने इसे भारत के पि चम बंगाल राज्य के साथ जोड़ा। बांग्लादे ाी राश्ट्रवाद ने ढाका में एक बाध्यकारी भाक्ति के रूप में इस्लाम पर बल दिया। भारत के सैनिक निर्माण पर बांग्लादे ाी चिन्ता के साथ-साथ इस्लाम पर नया बल, तटवर्ती सीमा पर द्विपक्षीय विवाद, साझे जल संसाधनों पर विवाद तथा पि चम बंगाल में बांग्लादेि ायों का अवैध अप्रवासन, भारत-बांग्लादे ा सम्बन्धों के मार्ग की कुछ बाधायें हैं।

दोनों दे ाों में विभिन्न मामलों पर संवाद बनाए रखा है तथा संयुक्त आर्थिक सहयोग के उदार कार्यक्रम की भी भुरूआत भी की है। 1977 में नई दिल्ली और ढाका ने भुस्क मौसम में गंगा नदी के जल के बंटवारे को लेकर एक समझौते पर हस्ताक्षर किए, परन्तु दोनों पक्षों ने अन्य समस्याओं के स्थाई समाधान में बहुत कम प्रगति हासिल की है। दोनों दे ाों के मध्य समस्या की मूल जड़ फरक्का बांध है जहाँ से गंगा नदी दो भााखाओं में बंटती है तथा भारत ने एक सम्भरक नहर का निर्माण किया है, जो भारत की ओर से नदी के जल प्रवाह को नियंत्रित करता है। 1990 के द ाक के मध्य में दोनों के बीच उच्च स्तरीय वार्ताओं के बावजूद विवाद बना हुआ है।

भारत और श्रीलंका :-

भारत और श्रीलंका के संबंधों को प्रभावित करने वाले दो महत्वपूर्ण कारक रहे हैं। इनमें से एक है सुरक्षा और दूसरा कारक है दक्षिण भारत तथा श्रीलंका के उत्तर और पूर्वी भाग में रहने वाले तमिलों की नृजातीयता की समस्या। 1950 के द ाक के मध्य में और संयोगव ा भारतीय महासागर से ब्रिटेन की सेना की वापसी के साथ एवं भारत की प्रधानमंत्री श्रीमति इंदिरा गांधी और श्रीलंका की प्रधानमंत्री श्रीमति सिरिमावो रावटेदियास भण्डारनायके के बीच संबंधों में मजबूती के कारण नई दिल्ली और कोलम्बों में निकटतम संबंध स्थापित हुए। भारत ने श्रीलंका की ब्रिटेन की सुरक्षात्मक छत्रछाया को हटाकर भारत की सुरक्षा छतरी के भीतर रहने की इच्छा का पूरा स्वागत किया। दोनों पक्षों ने गुटनिरपेक्षता की नीति पर चलने और भारतीय महासागर में पि चमी प्रभाव को कम करने के लिए सहयोग के प्रति सहयोग के प्रति सहमति जताई।

जुलाई 1983 में कोलम्बों में तमिल विरोधी हिंसा ने भारत को तमिल-सिंघली विवाद में हस्तक्षेप करने पर बाध्य कर दिया, परन्तु स्थिति पर काबू पाने के मध्यस्थकारी प्रयास विफल हो गए। मई 1987 में, श्रीलंकाई सरकार द्वारा आर्थिक विरोध और सैनिक गतिविधि के माध्यम से द्वीप के उत्तरी भाग में स्थित जाफना क्षेत्र पर

पुनः नियन्त्रण स्थापित करने का प्रयास किया गया, तो भारत ने क्षेत्र में हवा और जलमार्ग से खाद्य सामग्री और दवाईयों की आपूर्ति की। 29 जुलाई 1987 को भारतीय प्रधानमंत्री राजीव गांधी और श्रीलंकाई राश्ट्रपति जूनियस रिचर्ड जयवर्धन ने समस्या के समाधान के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर किए। भाांति व्यवस्था स्थापित करने के लिए ''भारतीय भाांति स्थापना बल'' (Indian Peace Keeping Force) भेजा गया, ताकि तमिल अलगाववादियों को निरस्त्र करके नए प्र ाासकीय निकायों की स्थापना की जा सके, स्वायत्ता के लिए तमिल मांगों के अनुरूप चुनाव कराए जा सके तथा भारत और श्रीलंका से तमिल भारणार्थियों को वापस भेजा जा सके।

पिछले कुछ वर्शों में भारत–श्रीलंका संबंधों में काफी प्रगाढ़ता आयी है। 1998 में हस्ताक्षरित मुक्त व्यापार समझौते (FTA) के प चात दोनों दे ाों के बीच न सिर्फ व्यापार बढ़ा है, बल्कि कूटनीतिक संबंधों में भी इसके माध्यम से विस्तार हुआ है। इस समझौते ने भारत–श्रीलंका संबंध के स्वरूप बिल्कुल बदलकर उसे और अधिक विकासोन्मुख किया है। 2008 में दोनों दे ाों ने मतभेद व टकराव की जगह भाांतिपूर्ण सह–अस्तित्व, व्यापार, निवे ा व पर्यटन के क्षेत्रों में वि ोश रूप से बल दिया है। एक नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार भारत का श्रीलंका से व्यापार, 2006 की तुलना में 2007–2008 में 600 मिलियन से बढ़कर 1.88 बिलियन डॉलर तथा श्रीलंका का भारत से व्यापार 58 मिलियन डॉलर से 400 मिलियन डॉलर हो गया। इसे थ्ज। की महत्वपूर्ण उपलब्धि माना जा सकता है।

भारत और नेपाल :–

नेपाल भारत का सबसे निकटतम पड़ोसी दे ा है। नेपाल एक स्थलबद्ध दे ा है तथा सिर्फ भारत ही उसे समुद्री मार्ग प्रदान करता है। दूसरी ओर उत्तर में चीन के दृश्टिकोण से नेपाल की भूराजनैतिक अवस्थिति भारत के लिए काफी महत्वपूर्ण है। दोनों दे ाों के बीच आकार, संसाधन, जनसंख्या, सामर्थ तथा विकास के स्तरों तथा भौगोलिक व सामाजिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक सम्बन्धों जैसे कारकों में वि ााल अन्तर के बावजूद निकट आर्थिक सम्बन्ध, भारतीय महाद्वीप से तिब्बत पठार को जोड़ने वाली हिमालय की दक्षिणी ढाल पर नेपाल की रणनीतिक अवस्थिति, खुली सीमा आदि भारत और नेपाल के सम्बन्धों को असाधारण और घनिश्ठ बनाते हैं।

1950 में नई दिल्ली और काठमाण्डू में भाांति व मैत्री संधि और द्विपक्षीय व्यापार के एक समझौते पर हस्ताक्षर करके अपने सम्बन्धों को आगे बढ़ाया। 1951 में भारत लोकप्रिय रूप से दिल्ली समझौता, नामक सन्धि पर राजा त्रुभवन, राणाओं और नेपाल कांग्रेस की सहमति प्राप्त करने में सफल हो गया। इन सन्धियों ने भारत और नेपाल के बीच वि ाश्ट सम्बन्धों की नींव रखी, जिसमें नेपाल के अधिमान्य आर्थिक व्यवहार को मान्यता दी और भारत में नेपालियों को भारतीय नागरिकों के रूप में समान आर्थिक व भौक्षणिक अवसर प्रदान किए। 1951–59 में नेपाल–भारत सम्बन्धों पर सरकारी दबाव से क्रमिक परिवर्तन हुए खास तौर से विदे ाी और प्रतिरक्षा नीतियों के समन्वयन के मामलो पर दबाव डाला गया। चीन और सोवियत संघ सहित अनेक दे ाों के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध बदलने पर नेपाल के प्रयास तथा 1955 में संयुक्त राश्ट्र की सदस्यता से बदलाव उत्पन्न बदलाव उत्पन्न हुए। उदाहरण के लिए जब नवम्बर 1959 ने नेहरू ने भारतीय संसद में यह कहा कि ''नेपाल पर किसी भी प्रकार का हमला भारत पर किया गया हमला माना जाएगा'', तो नेपाल के बी.पी. कोईराला ने उत्तर दिया कि भारत नेपाल के अनुरोध के बिना ऐसा एक पक्षीय कदम कभी नहीं उठा सकता।

विदे ा नीति एक गति ाील प्रक्रिया है, और वि व में एक उन्नत ाील भाक्ति बनने के अलए भारत के नए

उत्तरदायित्वों के साथ–साथ विदे ा नीति में भी महत्वपूर्ण बदलाव आ रहे है। 1991 के बाद से भारत की विदे ा नीति अपनी गुटनिरपेक्षता के मूल सिद्धान्तों से विचलित हुए बिना अपने दृश्टिकोण में अधिक यथार्थवादी हो गई है। राजनीतिक रूप से भारत का ध्यान अब अपने पड़ोसी दे ाों खासकर पाकिस्तान पर केन्द्रित हो गया है। क मीर विवाद के साथ और सीमा विवाद पर अब व्यवहारिक समाधान के लिए भारत की तला ा यह द र्ाती है कि भारत अब इस मामले पर अततः कोई हल चाहता है।

हालांकि पड़ोसी दे ाों में भारत का महत्व बढ़ा है, परन्तु छोटे पड़ोसे दे ाों में समस्या प्रधान राजनीतिक विकास जैसे कि नेपाल में लोकतंत्र और सामाजिक न्याय के लिए संघर्श, बांग्लोद ा में राजनीतिक हिंसा एवं इस्लामी अतिवादियों का उदय, तथा श्रीलंका में गृहयुद्ध, इस उपमहाद्वीप में असफल राज्यों के सम्भावित खतरों की ओर संकेत करते हैं। पाकिस्तान और अफगानिस्तान का भी भविश्य अनि ित है। दोनों दे ाों में आधुनिक और नरम राज्यों का उदय भारत के लिए अनुकूल महत्व का हो सकता है। प्रदे ा में भाांति और समृद्धि के लिए भारत को सफल रणनीति की आ यकता है, प्रादे ि ाक सुरक्षा के लिए आंतरिक विवादों को जन्म लेने से रोकना, और भारत का अपने पड़ोसी दे ाों से विवादों का समाधान करना।

संदर्भ ग्रन्थ :–

1. ग्रोवर बी.एल., य ापाल, मेहता अल्का, ''आधुनिक भारत का इतिहास'', एस चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, 2005, नई दिल्ली।
2. चन्द्र विपिन, मुखर्जी मृदुला, मुखजी आदित्य, ''आजादी के बाद का भारत (1947–2000)ए हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदे ालय, दिल्ली वि वविद्यालय, 2017, दिल्ली।
3. पॉल, सॉलविन ''भारत की विदे ा नीति'' (तपन विस्वाल ''अंतराश्ट्रीय संम्बन्ध'' से उद्धृत), ओरियन्ट ब्लैकस्वान, 2016, नई दिल्ली।
4. सिंह, डॉ. मिथिले ा कुमार, ''भारत की विदे ा नीति प्प्ए (तपन विस्वाल, अंतराश्ट्रीय संम्बन्ध, द्वितीय संस्करण, से उद्धृत,) ओरियन्ट ब्लैकस्वान, 2016, नई दिल्ली।
5. पाण्डेय, डॉ. उग्रसेन, अंतराश्ट्रीय संम्बन्ध, ि ावांक प्रका ान, 2011, नई दिल्ली।
6. दत्त, बी.पी., ''स्वतंत्र भारत की विदे ा नीति'', ने ानल बुक ट्रस्ट इण्डिया, 2013, नई दिल्ली।
7. द्विवेदी, डॉ. आ ुतो ा, ''भारत पाक सम्बन्ध और क मीर समस्या 1971–2012'', ओमेगा पब्लिके ान्स, 2013, नई दिल्ली।
8. दीक्षित, जे.एन., ''भारत की विदे ा नीति'', प्रभात प्रका ान, 2004, नई दिल्ली।
9. पाल, ि ावम, ''अंतराश्ट्रीय संम्बन्ध'', वंदना पब्कि ान्स, 2012, नई दिल्ली।
10. अजय कुमार, अंतराश्ट्रीय संम्बन्धों के सिद्धान्त, रेप्रो इण्डिया, मुम्बई, 2016.
11. जयनतनुजा, बंदोपाध्याय, ''द मेकिंग ऑफ इण्डियाज फॉरेन पालिसी'', एलायड पब्लिसर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
12. दीक्षित, जे. एन., ''इण्डियाज फॉरेन पालिसी एण्ड इट्स नेबर्स'', ग्यान पब्लिसिंग हाउस, नई 2001, दिल्ली।
13. सिन्हा अति ा एण्ड मेहता मधुप, ''इण्डियन फॉरेन पॉलिसी, चेलेन्जेस एण्ड अपॉरचुनिटीज'', एकेडिमिक फाउन्डे ान, 2007, नई दिल्ली।
14. कुमार पाण्डा, एवं प्रमोद, ''मेकिंग ऑफ इण्डियाज फॉरेन पॉलिसी प्राइम मिनिस्टर्स एण्ड वार्स, राज पब्लिके ान, 2003, दिल्ली।

Email- abhishek.agrawal@kalingauniversity.ac.in

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 76-79

हरियाणा की माटी का लोक संगीत और नृत्य परम्परा

डॉ० उषा
सहायक प्रवक्ता, संगीत वादन विभाग, आद र्श महिला महाविद्यालय, भिवानी।

शोध प्रपत्र सार :-

हरियाणा में अनेक प्रकार के रीति–रिवाजों में उनके साथ विभिन्न प्रकार के लोक गीत जुड़े हुए हैं। हरियाणा के इन्ही लोक गीतों के माध्यम से जनमानस अपने मन के विभिन्न भावों को प्रकट करता है ये लोक गीत रस्म और मौसम के अनुरूप होते हैं, जैसे– फाल्गुन के महीने में मस्ती भरे गीत, बरसात में सावन गीत, कार्तिक में भजन–कीर्तन। इसी प्रकार ब्याह–शादी, जन्म, खेती तथा अन्य संस्कारों–लगन आदि पर उन्ही के अनुसार लोक गीत गाए जाते हैं। लोक गीतों में हमारी संस्कृति की झलक साफ नजर आती है। हरियाणवी लोक संगीत परम्परा के अन्तर्गत लोकगीत को प्रमुख माना जाता है, इनको दो भागों में 'मुक्तक गीत' एवं 'कथात्मक गीत' है। मुक्तक गीतों के अन्तर्गत संस्कार, कृषि, बाल गीत आदि सम्मिलित हैं। कथात्मक गीतों में ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक पुरुषों के चित्रण का वर्णन गेयात्मक रूप में किया जाता है, जिन्हें 'आल्हा' एवं 'यगरा' आदि नामों से अभीहित किया जाता है।[1]

हरियाणा का लोक संगीत :-

जब से मनुष्य का जन्म हुआ है, तभी से वह विभिन्न कलाओं में पारंगत हुआ है। यदि हम आदिकाल की बात करें तो आदिकाल से ही मानव अपने भावों अभिव्यक्ति चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत करता रहा है। लोक कलाएं अनुष्ठान संस्कार आदि लोक संस्कृति का अभिन्न अंग है। लोक कलाएं पूरे विश्व को एक सूत्र में पिरोती है। हरियाणा राज्य प्राचीन समय से ही परम्पराओं के लिए विख्यात है। ये मान्यताएं तथा परम्पराएं आज भी लोक प्रतीकों के रूप में इस राज्य में जिंदा है। परंतु समय की दौड ने इन परम्पराओं पर बुरा असर डाला है। हरियाणा की उत्पति कहाँ से हुई इसमें काफी मतभेद है। कोई 'हरि' अर्थात् 'भगवान' कृष्ण से इनका संबंध जोड़ता है तो कोई अमीरों का स्थल होने से अभरीयाण का बिगड़ा रूप हरियाणा स्वीकार करता है। आधुनिक हरियाणा कुरुवन प्रदेश का भू–भाग है जो कौरवों ने पाण्डवों को दिया था। इसी प्रदेश में पांडवों ने अपनी इतिहास प्रसिद्ध राजधानी इन्द्रप्रस्थ बसाई थी। इन्द्रप्रस्थ के अलावा चार गांव मांगे थे, जिनमें तिरपत (दिल्ली, सोनीपत, बाघपत तथा पानीपत) शामिल थे। इनके ही आस–पास ही दो छोटे–छोटे ग्राम है। पांचवा ग्राम इन्द्रप्रस्थ है। यहां ही लोक कलाओं ने अपना विकास कई क्षेत्रों में किया है जैसे– हरियाणा के लोकगीत, लोक कथाएं, लोक कलाओं में आती है।[2]

हरियाणा की संस्कृति :-

हरियाणवी संस्कृति का मूल पूजा–पाठ, जप–तप, भजन–कीर्तन, वेद–पुराण तथा पुण्य–दान आदि आते हैं। किसी देश अथवा समाज को विभिन्न जीवन व्यापारों, सामाजिक सम्बन्धों एवं मानवीय दृश्टि से प्रेरणादायक तत्वों की समिष्ट का नाम ही संस्कृति है। हरियाणा स्वर्णिक अतीत व व्यापक सम्भावनाओं का प्रदेश है। इस प्रदेश के लोक गीतों में 'राम भजनियों' एवं कहावत में– **'देस्सा में देश हरियाणा जित दूध दही का खाणा।'** कहकर इसकी वैष्णव धर्म भावना एवं खान–पान आदि पर प्रकाश डाला गया है। हरियाणवी संस्कृति अपने में निश्छल, सरलता और अनेक मर्यादाओं को संजोए हुए है।[3]

हरियाणा के प्रमुख लोक गीत :-

किसी भी प्रदेश के रीति–रिवाजों पर उस प्रदेश के लोक गीत निर्भर करते हैं। ये लोकगीत मौसम व रस्म के अनुसार होते हैं। हरियाणा के विभिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले प्रमुख लोक गीत इस प्रकार हैं–

होली के गीत – फाल्गुन के महीने में होली से संबंधित 'फाग' के गीत गाए जाते हैं। इन गीतों में हसी और मस्ती का पुट होता है होली के गीत इस प्रकार हैं–

होली हे तेरा टीका लाम्बे उसकी डोरी
डोर बटावै पम्मी बोरो उसकी बानड गोरी
गोरी सै तौ दही जमावै कंवर गया सै होली।

सावन के गीत – सावन के महिने में बादल, वर्षा, झूला इत्यादि के गीत गाये जाते हैं।

आया तीज का त्यौहार
आज मेरा बीर आवैगा
सामण में बादल छाए
सखियां ने झूले पाएं
मैं कर लू मौज बहार
आज मेरा बीर आवैगा[5]

धार्मिक गीत – विभिन्न धार्मिक व पारस्परिक अवसरों पर एवं कार्तिक माह इत्यादि धार्मिक महीनों में 'लोकधुनों में कई भजन' इत्यादि गाए जाते हैं।

विवाह गीत – विवाह के अवसर पर विभिन्न प्रकार के मंगलगीत पर गाए जाते हैं।

हरियाणवी लोक नृत्यों की सूची इस प्रकार है–

1. **फाग नृत्य** – यह नृत्य फाल्गुन के महीनें में किसानों द्वारा किया जाता है। इस दौरान महिलाएं पारम्परिक रंगीन वस्त्र जबकि पुरूष रंगीन पगड़ीयाँ पहनते हैं।[6]

2. **सांग (स्वांग) नृत्य** – सांग हिन्दी शब्द 'स्वांग' का अपभ्रंश हैं। उतरी भारत में हरियाणा, उत्तर प्रदेश व राजस्थान राज्यों में प्रचलित सांग एक प्रकार की संगीतमय नाटिका है। जिसमें लोक कथाओं को लोकगीत संगीत व नृत्य आदि से नाट्य बद्ध किया जाता है। इस विधा में पंडित लखमीचन्द जी का बड़ा नाम व सम्मान है। उन्होंने 65 के लगभग सांग लिखे हैं। जिसके कारण उन्हें सांग सम्राट तथा हरियाणा का सूर्यकवि कहा जाता है। सही मायानों में यह नृत्य हरियाणा की संस्कृति को दर्शाता है। एक समूह जिसमें 10 या 12 लोगों की संख्या

सम्मिलित है लोग इसका प्रदर्शन करते हैं। नृत्य में मुख्य 12 लोगों की संख्या सम्मिलित है। यह नृत्य मुख्य रूप से उन धार्मिक कहानियों और लोककथाओं को दर्शाता है जो सार्वजनिक स्थानों पर की जाती है। यह पाँच घण्टे तक चलती है। इस नृत्य में क्रॉस – ड्रेसिंग काफी लोकप्रिय है। कुछ पुरूष प्रतिभागी महिलाओं की वेशभूषा धारण करते हैं। ऐसा माना जाता है कि यह नृत्य 1750 ई० में पहली बार दिखाई पड़ा और किशन लाल भट्ट द्वारा इसे वर्तमान रूप में विकसित किया।[7]

3. **छठि नृत्य** – भारत के कई स्थानों में, एक नवजात शिशु का जन्म खुशी के साथ मनाया जाता है। छठी नृत्य भी एक अनुशानिक नृत्य है, जिसे उसी अवसर पर किया जाता है। लेकिन, यह नृत्य केवल लड़के के जन्म के छठे दिन करती है। यह एक रोमांटिक नृत्य है और रात के दौरान किया जाता है। उत्सव के अन्त में उबला हुआ गेहूँ और चना सभी सदस्यों को वितरित किया जाता है जो प्रदर्शन के लिए उपस्थित होते हैं।[8]

4. **खोरिया नृत्य** – खोरिया नृत्य विशेष रूप से महिलाओं द्वारा प्रस्तुत झूमर नृत्य शैली और चरणों की विविधता का एक सामूहिक रूप है। यह नृत्य हरियाणा के मध्य क्षेत्र में लोकप्रिय है और लोगो के दैनिक मामलों से जुड़ा हुआ है और सबसे महत्वपूर्ण घटनाओं जैसे फसल, कृषि कार्य इत्यादि के लिए इस नृत्य के लिए कलाकार बढ़िया गोल्डन थ्रेड वर्क के साथ स्कर्ट पहनते हैं और भारी देहाती गहनों के साथ चमकीलें रंग के घूँघट वाले दुपट्टे पहनते हैं।

5. **धमाल नृत्य** – धमाल नृत्य गुड़गाँव क्षेत्र में प्रसिद्ध है। नृत्य की उत्पति महाभारत के समय हुई थी। यह नृत्य केवल पुरूषों द्वारा किया जाता है। वे धमाल की आवाज के साथ गाते और नाचते हैं। लोग इस नृत्य को तब करते हैं। जब उनकी फसल तैयार होती है। नृत्य के दौरान पुरूष प्रतिभागी एक अर्ध चक्र बनाते हैं और भगवान गणेश, देवी भवानी और भगवान ब्रह्मा, भगवान विष्णु और भगवान शिव की पवित्र त्रिमूर्ति की प्रार्थना करते हैं।[9]

6. **डफ नृत्य** – डफ नृत्य मुख्य रूप से किसानों द्वारा बसन्त के मौसम के आगमन पर भरपूर फसल के उपलक्ष्य में किया जाने वाला एक मौसमी नृत्य है। महिलाओं द्वारा पहने गए गहनों की आवाज के साथ डैफ या एक तरफा ड्रम संगीत पेश करते हैं।[10]

7. **घुमर नृत्य** – हरियाणा का एक अनोख पारंपरिक लोक नृत्य, घूमर नृत्य राज्य के पश्चिमी हिस्सों में लोकप्रिय है। नृत्यांगनाओं के वृत्ताकार आन्दोलन इस नृत्य को अलग पहचान देते हैं। आमतौर पर राज्य के सीमा क्षेत्र की लड़कियाँ घूमर का प्रदर्शन करती है। लड़कियाँ गाते हुए घूमने वाले आन्दोलन में नृत्य करती हैं और संगीत के गति के रूप में लड़कियों के जोड़े बढ़ते हैं और तेजी से घूमते हैं। यह न त्य होली, गणगौर पूजा और तीज जैसे त्योंहारों के अवसर पर किया जाता है।

8. **झूमर नृत्य** – 'झूमर' नामक एक आभूषण के नाम पर किया जाने वाला नृत्य, झूमर नृत्य भी हरियाणा के लोकप्रिय लोक नृत्य में से एक है। यह विवाहित लड़कियों द्वारा किया जाता है। इस नृत्य को ढोलक और थाली जैसे वाद्यों की धुन पर किया जाता है।[11]

9. **गुग्गा नृत्य** – यह संत गुग्गा के लिए किया जाने वाला नृत्य है। इस प्रदर्शन में भक्त उनके सम्मान और प्रशंसा में विभिन्न प्रकार के गीत गाकर गुग्गा पीर की कब्र के चारों ओर नृत्य करते हैं।

10. **लूर नृत्य** – लूर नृत्य का नाम हरियाणा के बांगर क्षेत्र में लड़कियों के नाम पर रखा गया है। यह होली

के त्योहार के दौरान किया जाता है। यह वसन्त के आगमन और इसके साथ खेतों में रबी फसलों की बुवाई का प्रतीक है।[12]

11. **रासलीला नृत्य** – रास शब्द का अर्थ है नृत्य। यह पारम्परिक नृत्य फरीदाबाद जिले के ब्रेजा खेत्र के लोगों के बीच आम था। रासलीला का नृत्य रूप विभिन्न प्रकार के गीतों से भरा पड़ा है जो भगवान कृष्ण की प्रशंसा में हैं।[13]

आज हरियाणवी संगीत किसी परिचय का मोहताज नहीं है तथा इसका प्रचार–प्रसार दूर–दूर तक फैला है। हिन्दी सिनेमा में भी हरियाणा के कलाकार गायन कर रहे हैं तथा बहुत से अभिनय कर रहे हैं।[14] हरियाणवी शब्दों का प्रयोग होता है। गायन में भी एवं कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय द्वारा एक नवम्बर को हरियाणा विजय दिवस पर 'रत्नावली' युवा महोत्सव का आयोजन बड़े ही जोश के साथ किया जाता है। जिसमें हरियाणवी जनजीवन पर आधारित चित्रकला, सांग, परिधान, वेशभूषा, हरियाणवी खान–पान, शिल्प कला, लोक गायन वादन, नृत्य, चौपाल, लघु फिल्म, चुटकुले, वाद–विवाद, भा ाण–काव्य इत्यादि का विश्व स्तरीय स्तर पर मंचन होता है जिसमें हरियाणवी लोक कलाकार अपनी प्रस्तुति देते हैं। इन्हें राज्य स्तर पर सम्मानित किया जाता है। हरियाणवी कलाकारों को एक उच्च स्तर का मंच तो मिलता ही है साथ ही रोजगार की भी उचित सम्भावनाएं मिलती है।[15]

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ० अशोक कुमार 'यमन', संगीत रत्नावली, पृ० सं०–558
2. डॉ० शंकरलाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, पृ० सं०–73
3. डॉ० शंकरलाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, पृ० सं०–74
4. डॉ० गुणपाल सिंह सांगवान, हरियाणवी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० सं०–214
5. हरियाणा साहित्य दर्पण, पृ० सं० 10–11
6. हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० सं०– 73
7. हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ० शंकरलाल यादव, पृ० सं०– 74
8. डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० सं०– 75
9. डॉ० शंकर लाल यादव, पृ० सं०– 76, 77
10. हरियाणा लोक साहित्य, पृ० सं०– 19, 20
11. हरियाणा लोक गीत संग्रह, पृ० सं०– 23
12. हरियाणा साहित्य दर्पण, पृ० सं०– 10, 11
13. भारतभूशण सांगीवाल, रागनी संग्रह।
14. हरियाणा साहित्य, पृ० सं०– 16
15. हरियाणा साहित्य, साम्प्रदायिक सद्भाव, पृ० सं०– 13

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 80–84

डॉ. नगेन्द्र की आलोचना में प्रगतिशील मूल्य

डॉ. सुशीला
सहायक आचार्या, हिन्दी विभाग, चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी (हरियाणा)

शोध–सारांश :–

डॉ. नगेन्द्र ने अंग्रेजी साहित्य के संस्कारों को आत्मसात् करके हिन्दी साहित्य में साहित्य का कार्य प्रारम्भ करके आलोचना के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया। इसलिए साहित्य के संबंध में डा. नगेन्द्र जिनकी मूल धारणाओं का मूल आधार अंग्रेजी साहित्य के कवियों और आलोचकों की मान्यताओं से प्रेरित है। उन्होंने उच्चत्तर हिंदी अध्ययन भाोध कार्य एवं समीक्षा के क्षेत्र में अपनी अमिट छाप छोड़ी, विद्वता के प्रतिमान हैं। संस्कृत के आचार्यों में भट्टनायक और अभिनव गुप्त से हिंदी में आचार्य रामचन्द्र भाुक्ल से वि ोश रुप से प्रभावित हुए। प्रायः सभी काव्य दृश्टियों के समन्वित प्रभाव के आधार पर विकसित और सुसस्कृत करते रहने के बावजूद डॉ. नगेन्द्र रस सिद्वांत के प्रति अपनी आस्था था में अपराजेय रहे हैं। डॉ. नगेन्द्र प ि चमी अवधारणाओं से अधिक प्रभावित रहे परन्तु भारतीय जीवन मूल्यों के अनुरुप ही ढलकर आत्मसात् किया।

बीज भाब्द :–

प्रगति ील, मूल्य, आलोचना युगानुकूल, परिमार्जन प्रस्तुतीकरण, मानवीय जागरुकता, संवेदन ीलता, सौंदर्य आनन्द, व्याप्ति।

डॉ. नगेन्द्र की आलोचना पद्वति को आचार्य भाुक्ल की पद्वति का विकसित रुप कहा जा सकता है। वे रस सिद्वांत को युगानुकूल व्याप्ति देना चाहते हैं तथा विकसित जीवन मूल्यों के साथ भाास्त्रीय सीमाओं को भी विकसित देखना चाहते थे। डॉ. निर्मला जैन के भाब्दों में – स्वभाव से डॉ. नगेन्द्र विरोध सहने के आदी नहीं थे। वे अपने विरोधियों से डटकर लोहा लेते हैं पर विरोध की संभावना और उपस्थिति को कभी नकारा नहीं। वे आंतरिक रुप से अत्यंत मानवीय कोमल स्वभाव के थे। ''चिरकाल से उपेक्षित कवि व्यक्तित्व की ओर डॉ. नगेन्द्र ही पहले–पहल आकृश्ट हुए और इसी आधार पर उन्होंने कवि की अनुभूति के साधारणीकरण को महत्त्व प्रदान किया तथा साथ ही कवि तथा सहृय दोनों में ही रस की स्थिति मानी। रस भाब्द का अर्थ विकास .कामसूत्र से लेकर आनन्द के रुप में किया।''[1]। ''वे भाास्त्रीय इन अर्थों में थे कि प्राचीन संस्कृत काव्य ाास्त्र का परिमार्जन एवं प्रस्तुतीकरण उन्होंने अधिक किया, आधुनिक इन अर्थों में कि उन्होंने नवीन प्र नों और नवीन उपलब्धियों के प्रति अधिक जागरुकता दिखाई''।[2] ''इन्होंने भाास्त्रीय विशयों को ऐसी स्वच्छ भौली के साथ हाथ लगाया कि उनके विरोधी समीक्षक भी उनके सिद्वांतों की तरफ आकृश्ट हुए बिना न रह सके तथा उनकी भूरी–भूरी प्र ंसा की। उनकी समीक्षा में न्यूनाधिक मात्रा में तीन तत्त्वों ने योग दिया– संस्कृत काव्य ाास्त्र, पा चात्य काव्य ाास्त्र और युग

सचेश्ट अन्तर्दृश्टि। भारतीय काव्य ाास्त्र में साधारणीकरण के सिद्वांत को वे मानव मूल्यों की स्वीकृति का सिद्वांत ही मानते हैं।[3] ''डॉ. नगेन्द्र ने भाास्त्रों के अध्ययन में जड़ ज्ञान की प्राप्ति का साधन न बनाकर उसे काव्य भाव के भीतर निहित अनुभूतिमूलक एकता की खोज का साधन बनाया, किन्तु लेखक की ओर से अपनी बात भाास्त्र के भीतर से खींची गई है''।[4] ''जहॉ इनकी भाास्त्र चर्चा में भाास्त्रीय दृश्टि पारिभाशिकता प्राप्त होती है, वहीं एक सौंदर्य खोजी दृश्टि का लालित्य और अपनापन भी दिखाई पड़ता है। सौंदर्य को मूल्य मानते हुए क्या महत्त्व देते हुए पंत के भाव जगत की निर्माण भाक्तियों पर विचार करते समय वे पंत काव्य में ऐन्द्रियता को सौंदर्य उपासना का एक गुण मानते हैं। वे जीवनप्रद सौंदर्य को ही सौंदर्य की कोटि में स्थान देते हैं, जो वासना रहित है। भारतीय सौंदर्य भाास्त्र की भूमिका में उन्होंने सौंदर्य को निरपेक्ष स्वतंत्र मूल्य मानने से इंकार किया है और कहा है– स्वतंत्र मूल्य होने पर भी सौंदर्य की सत्ता निरपेक्ष नहीं है, वह जीवन के अन्य बृहत्तर मूल्यों के साथ नैतिक मूल्यों, सामाजिक मूल्यों के साथ पुरुशार्थ का आध्यात्मिक तथा अनिवार्य रुप से संबंध है''।[5] ''वास्तव में सौंदर्य काव्य –कला का काव्य आन्तिरिक मूल्य है, परन्तु जीवन के व्यापक परिवे ा के साथ संबंध होने के लिए उसे अन्य बृहत्तर मूल्यों के साथ जुड़ना ही पड़ता है।

सौंदर्य कला का पर्याय है, जिसमें कल्याण की भक्ति होती है। नयी समीक्षा नये संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं''– ''छायावादी कवि नारी के अंगों की मांसलता के प्रति आकृश्ट न होकर उसके मन और आत्मा के सौंदर्य पर मुग्ध होता है, वह रुप के माध्यम से अभिव्यक्त उसके हृदय के माधुर्य को अनावृत्त करता है''।[6]'' सौंदर्यानुभूति व्यक्ति को गति ाील, क्रिया ाील, चिन्तन ाील, संवेदन ाील तथा मनन ाील एवं कल्पना ाील बनाती है। डॉ. नगेन्द्र सांमजस्य के स्वामी हैं। विघटन के दु मन हैं, लगाव का सहयोगी और अलगाव का विरोधी हैं।''[7] ''छायावाद के प्रति डॉ. नगेन्द्र की दृश्टि उन्हें प्रगति ाील मूल्यों के प्रति जागरुक सिद्व करती है। साकेत एक अध्ययन उर्मिला का विरह सूर की गोपियों के विरह से भिन्न है। उर्मिला द्वारा दूसरों के दुःखो का भी ध्यान रखना गॉधीवादी विचारों का प्रभाव है। इसी प्रकार कैकेयी के चरित्र का जो उज्जवलीकरण किया गया है, उस पर गाँधी जी का विचार पाप से घृणा करो किन्तु पापी से प्रेम। सिद्वांत का प्रभाव दिखाई पड़ता है''[8] ''डॉ. नगेन्द्र इस स्थिति पर क्षोभ व्यक्त करते हैं कि भारतीय साहित्य में रीतिकाल की भाँति हिंदी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल भी अत्यंत अभि ाप्त काल माना गया है। रीतिकाल की भूमिका, देव और उनकी कविता रीतिकाव्य को प्रतिश्ठित करने के लिए ही लिखी गयी। वे मानते हैं कि रीतिकाव्य सामाजिक चेतना की दृश्टि से कमजोर है, उसकी काव्य वस्तु भी एक सीमित क्षेत्र से बाहर व्यापक संसार में किसी रुचि का प्रमाण नहीं देता, लेकिन कवियों को नि छल आत्माभिव्यक्ति द्वारा जिस परिश्कृत आनंद की सृश्टि यह काव्य करता है, उसकी उपेक्षा करना गलत है। नैतिक और सामाजिक मूल्यों से अलग इस आनन्द और सौंदर्य की जो सृश्टि करता है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इन कवियों का भाास्त्र ज्ञान और लोकानुभव दोनों खूब समृद्व हैं।''[9]

''डॉ. नगेन्द्र का मानना ह कि जीवन के उदात्त आद ाों के प्रति अपेक्षा का दृश्टिकोण अपनाने के कारण प्रगतिवाद उतना अधिक सफल नहीं हो सका, जितनी की आ ाा थी। प्रगति का साधारण अर्थ आगे बढना, जो साहित्य जीवन को आगे बढाने में सहायक हो वही प्रगति ाील साहित्य है, इस दृश्टि से तुलसीदास सबसे बड़े प्रगति ाील साहित्यकार हैं। भारतेन्दु बाबू मैथिली ारण गुप्त भी इस अर्थ में प्रगति ाील साहित्यकार हैं। परन्तु आज का प्रगतिवादी इनमें से किसी को भी प्रगति ाील नहीं मानेगा। ये सभी तो उसके मतानुसार प्रतिक्रियावादी लेखक

हैं।''[10] प्रगतिवादी का वर्ण्य विशय, जीवन कैसा है, तक ही रहा, जीवन कैसा होना चाहिए, तक उसकी दृश्टि नहीं गई। डॉ. नगेन्द्र को प्रगति पसंद है, पर वह जो वर्ग चेतना से ऊपर होती है, जो राजनीतिक पार्टी की विचारधारा के सीमित दायरे से ऊपर होती है। दूसरी तरफ वे इस मूल्य को भी अस्वीकार नहीं करते कि प्रगतिवादी काव्यधारा सर्वत्र दलित वर्ग की सहानुभूति के प्रवाह में विचरित होती रही, यथार्थ उसकी भवास रही। आनंद की नई व्याख्या पाते हुए हम डॉ. नगेन्द्र में प्रगति ील मूल्यों को पुश्ट होते हुए देखते हैं। आनंद को वे काव्य के प्रयोजन के रुप में स्वीकार करते हैं, निश्प्रयोजन कम तो नहीं होगा, जो निरर्थक होगा।[10] ''धन, य ा और प्रचार ये सब स्थूल प्रयोजन हैं। आनंद के समान्तर वे लोक कल्याण और चेतना प्रयोजन को भी विचारणीय मानते हैं। लोक हित को प्रयोजन मानकर चलने वाला साहित्यकार लोक में अपने स्व का विस्तार करके आनंद लाभ ही प्राप्त करता है।''[11] ''वह आत्मनः कामायः लोक कल्याण से ही अनुरक्त होता है। इसी प्रकार चेतना के परिश्कार की परिणति भी आनंद की अनुभूति में ही होती है। काव्य के आस्वाद का आनंद रसानुभूति का ही आनंद है। काव्य मूल्यों के सम्बंध में डॉ. नगेन्द्र का मानना है कि काव्य मूल्य का अर्थ है : वह गुण या दोश, समुदाय जिसके द्वारा काव्य की सिद्वि का निर्धारण किया जाता है, वह गुण इस दृश्टि से मूल्य का आधार है। अतः प्रयोजन ही सिद्व होता है। जिस काव्य में रागात्मकता आस्वाद प्रदान करने की क्षमता, जितनी अधिक होगी उतना ही उसका मूल्य होगा।''[11] उन्होंने आनंद ओर कल्याण को अभिन्न दिखलाने की चेश्टा की है। उनके अनुसार आनंद कोई सार्वजनिक वस्तु नहीं है।[12] ''लेखक की आत्माभिव्यक्ति के द्वारा जो परिश्कृत आनंद प्राप्त होता है, उसका नैतिक एवं सामाजिक मूल्य से स्वतंत्र भी एक महत्त्व है। सामाजिक दायित्व के निर्वाह में यदि लेखक त्रुटि करता है तो वह नैतिक रुप से अपराधी है। डॉ. नगेन्द्र ने साहित्य में मूल्यों की बहुत चिंता नहीं की है, उनके मत से काव्यानंद में ही मूल्य पर्यवसित हो जाते हैं'' डॉ. नगेन्द्र आनंद को सभी रसों से अनिवार्य मानते हैं। ''परिश्कृत आनंद जीवन में रस उत्पन्न करता है। इस प्रकार की नि छल आत्माभिव्यक्तियों ने सामाजिक चेतना का कितना संस्कार किया है, इसका अनुमान लगाना आज कठिन है।''[13]

''मानवता की प्रेरणा से ही इच्छा ज्ञान क्रिया अथवा संस्कृति विज्ञान और राजनीति में सामंजस्य स्थापित हो सकता है। रस सिद्वांत में हो सकता है। रस सिद्वांत में डॉ. नगेन्द्र ने लिया है जीवन की निरन्तर विकास ील धारणाओं और आव यकताओं का आंकलन मानवतावाद में ही हो सकता है। जीवन की भूमिका में जब तक मानवता से महत्तर सत्य का आविर्भाव नहीं होता और साहित्य की भूमिका में जब तक मानव संवेदना से अधिक प्रभावित सिद्वांत की प्रकल्पना भी नहीं हो सकती।''[14] उन्होंने लोकमंगल और लोकहित को भी मानवतावाद के साथ संबंध किया है।[15] ''नगेन्द्र की दृश्टि मानवतावादी है, इस बात से भी पता चलता है कि प्रेमचंद जीवन का मूल्य तत्त्व थे। मानवतावाद मानते हैं और उसकी व्यापक सहानुभूति की प्र ंसा करते हैं। प्रेमचंद पराधीन भारत के पूरे भोशण चक्र का चित्रण करते हैं। जिसमें उनके व्यक्तित्व का मानव पक्ष अत्यंत विकसित जनता, गाँव के अनपढ़ और भोले–किसान और भाहर के भोशित मजदूर निम्न वर्ग व्यवस्था के ि ाकार नर–नारी तो उनके वि ोश स्नेह भाजन थे ही परन्तु उनके अतिरिक्त अन्य वर्गों के प्राणी भी उच्च वर्ग के राजा उद्योगपति, जमीदार और मध्यवर्ग के व्यवसायी, नौकरी, पे ाा, लोग समाज के पुराणपंथी, पंडित, पुरोहित भी उनकी सहानुभूति से वंचित नहीं थे।''[16] प्रेमचंद की दृश्टि मानव के सभी भेदों से मुक्त भी कहकर नगेंद्र ने अपनी मानवतावादी दृश्टि अध्किा परिचय दिया है। जिसमें भोशित वर्ग संगठित होकर भोशक वर्ग को सत्ता से उखाड़

फैंकता है। इसे उन्होंने मानव के प्रति मानव का घृणित संघर्श कहा है। डॉ. नगेन्द्र का योगदान मुख्यतः नई बातें उद्घाटित करने में उतना नहीं है, जितना उद्घाटित बातों को ही अधिक संघनता और संगति से वि लेशित करने में तथा नई समझदारी से कृतियों का विवेचन करने में है।

इनके अनुसार रस आज के साहित्य के मूल्यांकन के लिए पर्याप्त और समर्थ है किन्तु रस को रुढ़ रुप में न लेकर विकासमान रुप में लेने की आव यकता है। मूल्यों को वे दे ा कालबद्व और परिवर्तन ील मानते हैं। उनका वि वास है कि मानवता मानव कल्याण, मानव मूल्यों आदि भाब्दों के निरन्तर और सर्वव्यापी प्रयोग से यह सिद्व हो जाता है कि मानव प्रकृति में कुछ तत्त्व ऐसे होते हैं,ज े सार्वभौमिक तथा सार्वकालिक हैं तथा विभिन्न दे ाकाल के मानव प्राणियों में मूलतः समान हैं।''[16] इन्हीं तत्त्वों की अभिव्यक्ति जीवन के नाना रुपों में होती है। काव्य भी उनमें से एक है और अपनी परिश्कृति तथा प्रभाव के कारण वि ाश्ट गौरव है। उन्होंने काव्य ास्त्र जैसे भाुडश्क, नीरस विशय को जिस रचनात्मक, कल्पनात्मक ाक्ति द्वारा रोचक और आकर्शक बनाया, उससे उनके भाास्त्रीय अनुसंधानों के मानवीय और साहित्यिक मूल्यों में बहुत अधिक मात्रा में परिवृद्वि हो गई। सिद्वांत वर्तमान की समस्याओं को अपने विवेचन में गौण स्थान दिया। यही उनकी सीमा मानी जा सकती है पर इससे यह भी सिद्व है कि हिपोक्रेट नहीं थे।

निश्कर्श :-

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम अन्त में हम यह कह सकते हैं कि डॉ. नगेन्द्र जी ने नवीन यात्राओं की पहचान का प्रयत्न उनके भाास्त्रीय आधार को नूतन रुप देता चला है और भाास्त्रीय आधार नवीन यात्राओं के स्वरुप को मूर्त्त रुप में देखने की दृश्टि है। डॉ. नगेन्द्र जी अपनी मान्यताओं के प्रति उनमें अटूट निश्ठा है। यथा संभव डॉ. नगेन्द्र की आलोचनात्मक दश्टि में प्रगति ील मूल्यों को निर्धारित करने का रहा। डॉ. नगेन्द्र ने अपनी आलोचना प़द्वति में नये–नये आलोचना के तत्त्वों को स्थान देकर आलोचना के क्षेत्र में नये–नये प्रतिमान स्थापित नहीं करे अपितु आलोचना के क्षेत्र में अपना वि ोश स्थान बनाया।

संदर्भ सूची :-

1. व्यास गोपाल प्रसाद, हिन्दी की आस्थावान पीढी, ने ानल पब्लिसिंग हाऊस नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004, पृश्ठ संख्या 19
2. लक्ष्मी एस. डॉ. नगेन्द्र : वि लेशण और मूल्यांकन, रंजन प्रका ान, आगरा, प्रथम संस्करण 1971, पृश्ठ संख्या 246
3. मिश्र रामदर ा, हिन्दी आलोचना की प्रवृत्तियॉ और आधार भूमि नार्थ इंडिया पब्लिसिंग नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002, पृश्ठ संख्या 206
4. डॉ. नगेन्द्र, भारतीय काव्य ास्त्र की भूमिका, ओरिएंटल बुक डिपो, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1955, पृश्ठ संख्या 211
5. डॉ. नगेन्द्र, नयी समीक्षा नए संदर्भ ने ानल पब्लिसिंग हाऊस, नई दिल्ली, संस्करण 1974, पृश्ठ संख्या 94
6. उपाध्याय प ुपतिनाथ, आलोचक डॉ. नगेन्द्र कृतित्त्व के विविध आयाम ग्रन्थायन प्रका ान अलीगढ, प्रथम

संस्करण 1985, पृश्ठ संख्या 95
7. वि वनाथ त्रिपाठी, हिंदी आलोचना, राजकमल कमल प्रका ान, नई दिल्ली, संस्करण 1970, पृश्ठ संख्या 187
8. मधुरे ा, हिंदी आलोचना का विकास, सुमित प्रका ान, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2004 पृश्ठ संख्या 126
9. डॉ. नगेन्द्र आधुनिक कविता की मुख्य प्रवृत्तियॉ, ने ानल पब्लिसिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1951, पृश्ठ संख्या 99
10. रामचन्द्र तिवारी, आलोचक का दायित्व, वि वविद्यालय प्रका ान, वाराणसी, संस्करण 2005, पृश्ठ संख्या 158
11. डॉ. नगेन्द्र, आलोचक की आस्था, ने ानल पब्लिसिंग हाऊस, नई दिल्ली, संस्करण 1966, पृश्ठ संख्या 5
12. बच्चन सिंहं, आलोचक और आलोचना, ने ानल पब्लिसिंग, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1984, पृश्ठ संख्या 200
13. डॉ. नगेन्द्र विचार और विवेचन, ने ानल पब्लिसिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1949, पृश्ठ संख्या 56
14. सुमित्रा नंदन पंत, डॉ. नगेन्द्र : अभिनंदन ग्रंथ, आर्य बुक डिपो, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1975, पृश्ठ संख्या 712
15. डॉ. नगेन्द्र, आस्था के चरण, साहित्य रत्न भंडार, आगरा, प्रथम संस्करण 1942, पृश्ठ संख्या 45
16. माक्खनलाल आधुनिक हिंदी आलोचना एक अध्ययन, साहित्य प्रका ान, दिल्ली अप्रकाि ात, पृश्ठ संख्या 249

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 85-88

अंतर्राष्ट्रीय प्रवास की स्थानिक गतिशीलता और उसके परिणामों का अध्ययन

कुलदीप सिंह
सहायक आचार्य, भूगोल, ग्रामीण कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भादरा, हनुमानगढ़।

परिचय :–

मानव सभ्यता की शुरुआत से ही लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते रहे हैं। कभी जीविका की तलाश में, कभी बेहतर जीवन की आशा में, तो कभी युद्धों और प्राकृतिक आपदाओं से बचने के लिए। 21वीं सदी में अंतर्राष्ट्रीय प्रवास (International Migration) एक वैश्विक परिघटना बन गया है, जिसका प्रभाव सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक सभी स्तरों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यह शोध पत्र अंतर्राष्ट्रीय प्रवास की स्थानिक गतिशीलता (Spatial Mobility) और इसके बहुआयामी प्रभावों का विश्लेषण करता है। इसमें यह समझने का प्रयास किया गया है कि लोग किन कारणों से अपने देश को छोड़कर अन्य देशों की ओर प्रवास करते हैं, और यह प्रवास वैश्विक परिदृश्य को किस प्रकार प्रभावित करता है।

2. अंतर्राष्ट्रीय प्रवास की परिभाषा :–

अंतर्राष्ट्रीय प्रवास का सामान्य अर्थ है – किसी व्यक्ति या समुदाय का अपने मूल देश को छोड़कर किसी अन्य देश में अस्थायी या स्थायी रूप से बस जाना।

3. स्थानिक गतिशीलता का अर्थ और महत्व :–

स्थानिक गतिशीलता (Spatial Mobility) वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति या समूह एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर स्थानांतरित होते हैं। जब यह गतिशीलता अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं को पार करती है, तो इसे अंतर्राष्ट्रीय स्थानिक गतिशीलता कहा जाता है। स्थानिक गतिशीलता का अध्ययन हमें प्रवास की प्रवृत्तियों, इसके प्रभावों, और नीतिगत आवश्यकताओं को समझने में सहायता करता है। यह वैश्वीकरण, शहरीकरण, और श्रम बाजारों के अंतर्संबंधों को भी उजागर करता है।

4. प्रवास के प्रमुख कारण :–

अंतर्राष्ट्रीय प्रवास के पीछे अनेक कारक होते हैं, जो व्यक्ति को अपने देश से बाहर जाने के लिए प्रेरित करते हैं। इन्हें आमतौर पर दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है – पुश (Push) और पुल (Pull) कारक।

4.1 पुश कारक (Push Factors)

ये वे स्थितियाँ होती हैं जो व्यक्ति को अपने मूल देश को छोड़ने के लिए विवश करती हैं। गरीबी और

बेरोजगारी, राजनीतिक अस्थिरता और युद्ध, धार्मिक या जातीय उत्पीड़न, पर्यावरणीय आपदाएँ (जैसे सूखा, बाढ़, भूकंप), शिक्षा या स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी।

4.2 पुल कारक (Pull Factors)

ये वे आकर्षण होते हैं जो व्यक्ति को किसी विशेष देश की ओर खींचते हैं। बेहतर रोजगार के अवसर, उच्च जीवन स्तर, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और चिकित्सा, सामाजिक और राजनीतिक स्थिरता, प्रवासी समुदायों का समर्थन

5. प्रवास की स्थानिक गतिशीलता के प्रभाव :

अंतर्राष्ट्रीय प्रवास की स्थानिक गतिशीलता का प्रभाव बहुआयामी होता है। इससे न केवल प्रवासी बल्कि उनके मूल और गंतव्य देश दोनों प्रभावित होते हैं।

5.1 आर्थिक प्रभाव :

गंतव्य देश में :-

- श्रम की आपूर्ति में वृद्धि।
- कम वेतन वाले क्षेत्रों में कार्यबल की उपलब्धता।
- उपभोक्ता बाजार का विस्तार।

मूल देश में :-

- विदेशी मुद्रा का आगमन (Remittances)
- "ब्रेन ड्रेन" यानी शिक्षित एवं कुशल लोगों का पलायन।
- ग्रामीण क्षेत्रों में धन का संचय और बुनियादी ढांचे में सुधार।

5.2 सामाजिक प्रभाव :

- प्रवासी समुदायों का निर्माण।
- सांस्कृतिक विविधता में वृद्धि।
- सामाजिक समावेशन एवं संघर्ष की संभावना।

पारिवारिक संरचनाओं में बदलाव (जैसे बच्चे और बुजुर्ग पीछे छूट जाते हैं)

5.3 सांस्कृतिक प्रभाव :

- नए सांस्कृतिक मूल्यों का आदान–प्रदान।
- भाषा, भोजन, और पहनावे में विविधता।
- कभी–कभी सांस्कृतिक टकराव और पहचान संकट।

5.4 पर्यावरणीय प्रभाव :

- शहरों पर जनसंख्या दबाव।
- आवास, जल, और परिवहन की समस्याएँ।
- प्राकृतिक संसाधनों पर अतिरिक्त भार।

6. प्रवास नीतियां एवं वैश्विक प्रयास :

अंतर्राष्ट्रीय प्रवास की जटिलताओं को समझते हुए कई देशों और अंतरराष्ट्रीय संगठनों ने प्रवासियों के

अधिकारों की रक्षा और उनके समुचित प्रबंधन हेतु नीतियाँ बनाई हैं।

6.1 वैश्विक संधियाँ एवं प्रयास :

International Organization for Migration (IOM) : प्रवास के सुरक्षित, नियमित और गरिमामय प्रबंधन के लिए कार्य करती है।

United Nations Global Compact on Migration (2018) : यह एक ऐच्छिक समझौता है जो प्रवास को समावेशी और मानवाधिकार आधारित दृष्टिकोण से देखने पर बल देता है।

ILO (International Labour Organization) : प्रवासी श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा करता है।

6.2 विभिन्न देशों की नीतियाँ :

कुछ देश प्रवासियों के लिए खुली नीतियाँ अपनाते हैं (जैसे कनाडा), जबकि कुछ देश सख्त सीमाई नियंत्रण और चयनात्मक आप्रवासन नीति अपनाते हैं (जैसे अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया)।

6.3 क्षेत्रीय सहयोग :

दक्षिण एशिया, यूरोप और अफ्रीका जैसे क्षेत्रों में प्रवास प्रबंधन हेतु बहुपक्षीय सहयोग पर बल दिया जा रहा है।

7. भारत और अंतर्राष्ट्रीय प्रवास : एक अध्ययन :

भारत दुनिया के प्रमुख प्रवासी–प्रेषक देशों में से एक है। भारतीय प्रवासी बड़ी संख्या में खाड़ी देशों, अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा, और ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों में कार्यरत हैं।

7.1 आर्थिक योगदान :

प्रवासी भारतीयों द्वारा भेजी गई विदेशी मुद्रा (Remittances) भारत की अर्थव्यवस्था के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। 2023 में भारत को विश्व में सर्वाधिक +125 अरब डॉलर की Remittances प्राप्त हुईं।

7.2 सामाजिक योगदान :

भारतीय प्रवासी विदेशों में भारत की संस्कृति, भाषा और मूल्यों का प्रचार करते हैं। वे भारत और उनके निवास देश के बीच सांस्कृतिक पुल का कार्य करते हैं।

7.3 नीतिगत पहल :

भारत सरकार ने प्रवासी भारतीयों की सहायता हेतु प्रवासी भारतीय केंद्र, e-Migrate पोर्टल, और प्रवासी भारतीय दिवस जैसी योजनाएं चलाई हैं।

7.4 चुनौतियाँ :

- खाड़ी देशों में श्रमिकों के साथ दुर्व्यवहार।
- अवैध एजेंसियों द्वारा शोषण।
- वापसी पर पुनर्वास की समस्याएं।

8. निष्कर्ष

अंतर्राष्ट्रीय प्रवास एक जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया है, जो विश्व भर में आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रभाव उत्पन्न करती है। इसके साथ अनेक चुनौतियाँ भी जुड़ी हुई हैं, जैसे सामाजिक तनाव, अवैध प्रवास, मानव तस्करी, और प्रवासी अधिकारों का उल्लंघन। अतः आवश्यकता है कि

प्रवास को केवल जनसांख्यिकीय या आर्थिक प्रक्रिया न मानकर, इसे मानवीय दृष्टिकोण से समझा जाए। आज के वैश्वीकृत विश्व में यह आवश्यक हो गया है कि अंतरराष्ट्रीय प्रवासन को एक समन्वित नीति के माध्यम से प्रबंधित किया जाए, जिससे प्रवासी और समाज दोनों का समुचित कल्याण सुनिश्चित हो सके।

संदर्भ सूची :-

1. काशी नाथ सिंह (2015), आधुनिक भारत में जनसंख्या और प्रवासन, प्रयाग प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. डॉ. रमेश ठाकुर (2018), अंतर्राष्ट्रीय प्रवास और वैश्विक संबंध, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
3. International Organization for Migration (IOM), World Migration Report 2022.
4. United Nations, Global Compact for Safe, Orderly and Regular Migration (2018).
5. Government of India, Ministry of External Affairs – Emigrate Portal Reports.
6. International Labour Organization (ILO) – Migrant Workers and Labour Rights Reports.
7. fo'o cSad (World Bank), Remittance Data for India, 2023 Report.
8. Sharma, S. (2020), Migration in South Asia : Patterns and Challenges, Sage Publications.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 89-90

राजनीति में युवाओं की भूमिका

राजेश कुमार
सहायक आचार्य राजनीति विज्ञान, ग्रामीण कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय भादरा, हनुमानगढ़।

1. परिचय :-

राजनीति किसी भी देश की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दिशा निर्धारित करने वाली प्रक्रिया है। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में युवाओं की भागीदारी अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि वे न केवल देश की सबसे बड़ी जनसंख्या समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं, बल्कि वे भविष्य के नेता, नीति–निर्माता और परिवर्तन के वाहक भी हैं। स्वतंत्र भारत के इतिहास में युवाओं ने समय–समय पर अपने जोश, दृष्टिकोण और साहस से राजनीति को नई दिशा दी है।

2. भारत में युवाओं की जनसांख्यिकीय स्थिति :-

भारत में कुल जनसंख्या का लगभग 65 प्रतिशत हिस्सा 35 वर्ष से कम आयु का है। यह जनसंख्या न केवल संख्या में बड़ी है, बल्कि उसके पास तकनीकी ज्ञान, वैश्विक दृष्टिकोण और नवीन सोच भी है। इस जनशक्ति को यदि सही दिशा में लगाया जाए तो यह देश के लोकतंत्र को सशक्त बना सकती है।

3. राजनीति में युवाओं की ऐतिहासिक भूमिका :-

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में युवाओं की भूमिका उल्लेखनीय रही है। भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद, सुभाष चंद्र बोस जैसे नेताओं ने युवावस्था में ही देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया। आजादी के बाद भी जे.पी. आंदोलन (1974) जैसे अनेक आंदोलनों में युवाओं ने निर्णायक भूमिका निभाई।

4. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में युवाओं की राजनीतिक भागीदारी :-

आज के समय में युवा राजनीति में सोशल मीडिया, डिजिटल कैंपेनिंग, और छात्र राजनीति के माध्यम से भागीदारी कर रहे हैं। हालांकि, औपचारिक राजनीति में उनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। संसद और विधानसभाओं में 40 वर्ष से कम आयु के प्रतिनिधियों की संख्या सीमित है, जिससे यह संकेत मिलता है कि युवा वर्ग अभी भी राजनीति के उच्च स्तर पर पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त कर पाया है।

5. राजनीति में युवाओं की भूमिका के पक्ष में तर्क :-

- **नई सोच और ऊर्जा :** युवा समाज में नवीन विचारों और ऊर्जा का प्रतिनिधित्व करते हैं जो राजनीति में स्थिरता और विकास को गति दे सकते हैं।
- **प्रौद्योगिकी का ज्ञान :** युवा पीढ़ी डिजिटल तकनीक में दक्ष है जिससे शासन प्रणाली अधिक पारदर्शी और प्रभावी बन सकती है।

- **लोकतांत्रिक चेतना :** आज के युवा सामाजिक मुद्दों के प्रति जागरूक हैं और अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों को लेकर सजग हैं।

6. युवाओं के राजनीति में कम भागीदारी के कारण :

- **राजनीति में भ्रष्टाचार :** राजनीति को एक भ्रष्ट और अव्यवस्थित क्षेत्र के रूप में देखा जाता है, जिससे युवा इससे दूरी बनाए रखते हैं।
- **पारिवारिक राजनीति का वर्चस्व :** कई दलों में वंशवाद हावी है, जिससे सामान्य युवा को अवसर नहीं मिल पाता।
- **शैक्षिक पाठ्यक्रम में राजनीतिक शिक्षा की कमी :** विद्यालयों और महाविद्यालयों में राजनीतिक समझ को बढ़ावा नहीं दिया जाता।

7. समाधान और सुझाव :

- **राजनीतिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में शामिल करना :** छात्रों को लोकतंत्र, संविधान और राजनीतिक प्रक्रिया की शिक्षा दी जानी चाहिए।
- **छात्र राजनीति को सशक्त बनाना :** विश्वविद्यालय स्तर पर छात्र संघों के माध्यम से युवाओं को नेतृत्व का अवसर मिल सकता है।
- **राजनीतिक दलों में युवाओं के लिए आरक्षण :** दलों को अपनी संरचना में युवाओं को उचित प्रतिनिधित्व देना चाहिए।
- **डिजिटल प्लेटफॉर्म का उपयोग :** युवाओं को सोशल मीडिया और डिजिटल साधनों के माध्यम से राजनीति से जोड़ना आसान है।

8. निष्कर्ष :

राजनीति में युवाओं की भूमिका केवल आकांक्षा नहीं, आवश्यकता है। यदि भारत को 21वीं सदी में एक सशक्त, समावेशी और पारदर्शी लोकतंत्र बनाना है तो युवाओं को राजनीति की मुख्यधारा में लाना अनिवार्य होगा। इसके लिए न केवल नीति–निर्माताओं को कदम उठाने होंगे, बल्कि युवाओं को भी अपनी जिम्मेदारी को समझते हुए सक्रिय भागीदारी निभानी होगी।

संदर्भ सूची :–

1. मेहता, प्रदीप कुमार (2018). भारतीय राजनीति और लोकतंत्र. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
2. सिंह, आर.एन. (2020). युवा और राजनीति. पटना : ज्ञान निकेतन।
3. Election Commission of India (2023). Youth Participation in Indian Elections.
4. Nehru, Jawaharlal (1947). The Discovery of India. Penguin Books.
5. National Youth Policy 2014 – Government of India.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 91-93

शहरी बुनियादी ढांचे और सेवाओं पर जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव

सुनील कुमार
सहायक आचार्य भूगोल, ग्रामीण कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भादरा, हनुमानगढ़।

प्रस्तावना :–

भारत में शहरीकरण की तीव्र गति और जनसंख्या में निरंतर वृद्धि ने शहरी क्षेत्रों की बुनियादी सेवाओं पर अत्यधिक दबाव डाला है। जल, बिजली, आवास, परिवहन, कचरा प्रबंधन जैसी मूलभूत सुविधाएँ जनसंख्या वृद्धि के कारण चरमराने लगी हैं। यह शोध–पत्र शहरी बुनियादी ढांचे पर जनसंख्या वृद्धि के प्रभावों का गहन विश्लेषण करता है।

1. शहरीकरण और जनसंख्या वृद्धि की पृष्ठभूमि :–

भारतीय जनगणना 2011 के अनुसार शहरी जनसंख्या 37.7 करोड़ थी, जो कुल जनसंख्या का लगभग 31: थी। अनुमान है कि 2036 तक यह 60 करोड़ को पार कर जाएगी। यह तीव्र वृद्धि शहरी संसाधनों पर दबाव डाल रही है।

2. शहरी बुनियादी ढांचे की परिभाषा :–

शहरी बुनियादी ढांचा उन सुविधाओं और ढांचागत व्यवस्थाओं को कहा जाता है जो शहरी जीवन को सुचारू बनाती हैं। जैसे कि :–

- जल आपूर्ति।
- जल निकासी।
- विद्युत आपूर्ति।
- सड़कें और परिवहन।
- स्वास्थ्य सेवाएं।
- शिक्षा संस्थान।
- कचरा प्रबंधन।

3. जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव :–

3.1 जल आपूर्ति पर प्रभाव :

जनसंख्या बढ़ने से जल की मांग में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। नगर निकायों द्वारा प्रति व्यक्ति जल आपूर्ति

का मानक 135 लीटर प्रतिदिन है, किंतु अधिकांश नगरों में यह आपूर्ति घटकर 60–100 लीटर रह गई है।

3.2 सीवरेज और कचरा प्रबंधन :–

अत्यधिक जनसंख्या के कारण सीवरेज प्रणाली पर भारी दबाव पड़ा है। अनेक शहरों में कचरा खुले में फेंका जा रहा है जिससे स्वास्थ्य समस्याएं बढ़ रही हैं।

3.3 परिवहन व्यवस्था पर प्रभाव :–

मेट्रो शहरों में वाहनों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है जिससे यातायात जाम, वायु प्रदूषण और दुर्घटनाएं बढ़ी हैं।

3.4 स्वास्थ्य सेवाएं :–

सरकारी अस्पतालों पर अत्यधिक दबाव है। स्वास्थ्य सेवा की उपलब्धता प्रति 1000 जनसंख्या पर केवल 0.7 डॉक्टर है जबकि WHO का मानक 1 : 1000 है।

4. समाधान और सुझाव :–

4.1 समेकित शहरी योजना :

शहरों की योजना जनसंख्या की वृद्धि दर को ध्यान में रखते हुए की जानी चाहिए। मास्टर प्लान का समयबद्ध पुनरीक्षण आवश्यक है ताकि भविष्य की आवश्यकताओं का अनुमान लगाया जा सके।

4.2 स्मार्ट सिटी पहल का विस्तार :

भारत सरकार की 'स्मार्ट सिटी मिशन' योजना को सभी शहरी क्षेत्रों तक विस्तार देना चाहिए ताकि तकनीक आधारित समाधान अपनाए जा सकें, जैसे :–

- डिजिटल जल और विद्युत निगरानी प्रणाली।
- स्मार्ट ट्रैफिक मैनेजमेंट।
- ई–गवर्नेंस।

4.3 सार्वजनिक परिवहन को प्राथमिकता :–

मेट्रो, बस रैपिड ट्रांजिट सिस्टम (BRTS), साइकिल पथ, और पैदल मार्ग जैसी व्यवस्थाओं को विकसित करके निजी वाहनों पर निर्भरता कम की जा सकती है।

4.4 पुनर्वास और झुग्गी विकास :–

झुग्गी क्षेत्रों को नियमित कर बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराना और गरीबों को किफायती आवास उपलब्ध कराना अति आवश्यक है।

4.5 सामुदायिक भागीदारी :–

शहरी समस्याओं के समाधान में नागरिकों की भागीदारी को बढ़ावा देना चाहिए ताकि वे अपने आस–पास की सेवाओं की निगरानी और देखरेख में सहयोग कर सकें।

5. नीति निर्माण में सरकार की भूमिका :–

- सरकार को निम्न क्षेत्रों में हस्तक्षेप करना चाहिए।
- शहरी विकास मंत्रालय को अधिक संसाधन और अधिकार दिए जाए।
- राज्य नगर निकायों को वित्तीय एवं प्रशासनिक स्वायत्तता दी जाए।

- जनसंख्या नियंत्रण के लिए जनजागृति अभियान चलाए जाए।
- PPP मॉडल (Public-Private Partnership) को बढ़ावा दिया जाए ताकि निजी क्षेत्र का निवेश भी शहरी ढांचे में हो।

6. निष्कर्ष :-

जनसंख्या वृद्धि ने शहरी ढांचे और सेवाओं पर असाधारण दबाव डाला है। बिना समुचित योजना और संसाधन प्रबंधन के, शहरी जीवन की गुणवत्ता में गिरावट निश्चित है। सरकार, नगर निकाय और नागरिकों को एक साथ मिलकर इस चुनौती का समाधान खोजना होगा।

संदर्भ ग्रंथ (References) :

1. भारत की जनगणना रिपोर्ट 2011 और 2021 के पूर्वानुमान – भारत सरकार।
2. शहरी विकास पर नीति आयोग की रिपोर्ट, 2020
3. स्मार्ट सिटी मिशन दस्तावेज – शहरी विकास मंत्रालय।
4. Urbanization and Urban Systems in India – R- Ramachandran.
5. Urban Infrastructure in India – Ministry of Housing and Urban Affairs, Government of India.
6. Population Growth and Urban Infrastructure – World Bank Report (2019)
7. भारत में जल आपूर्ति एवं स्वच्छता : नीति दस्तावेज : नीती आयोग, 2021

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 94–99

जैन मंदिर की ऐतिहासिक परम्परा एवं पृष्ठभूमि

शीशराम
सहायक आचार्य, शिवपुरी महाविद्यालय, सज्जनगढ़, बासंवाड़ा (राज0)

मन्दिर शब्द संस्कृत वाङ्मय में अधिक प्राचीन नही है। इसका सर्वप्रथम उल्लेख शतपथ ब्राहमण में मिलता है। महाकाव्य और सूत्रग्रन्थो में मंदिर की अपेक्षा देवालय, देवायतन, देवकुल, देवगृह, देवागार, देवस्थान आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। इन सभी शब्दों से देवता के निवास स्थान का बोध होता है, अतएव मन्दिर की कल्पना देवताओ के आवास के रूप में की गयी है। डॉ. भागचन्द्र जैन के अनुसार ,''भारत धर्मप्रधान देश है। धार्मिक तृप्ति के लिए अपनाये गये साधनों में अभीष्ट देव के निवास की कल्पना भी थी। सुमेरू के नाम से एक ऐसे पर्वत की कल्पना की गयी, जो लौकिक पर्वतों से आकार–प्रकार में सर्वथा भिन्न था। सुमेरू पर स्वर्गीय सुविधाएँ और वातावरण था। उसके बीच अभीष्ट देव का निवास था। परन्तु भक्त अपने वर्तमान जन्म में वहाँ तक पहुंच नहीं सकता था जबकि उसे अपने उपास्य का दर्शन क्षण–क्षण अनिवार्य प्रतीत होता गया। अतः उसने स्वयं सुमेरू की रचना करने की ठानी, जिस पर अवतीर्ण होकर उसका उपास्य विराजमान होता। इस प्रकार 3 सुमेरू की कल्पना के साथ ही मन्दिर स्थापत्य का उपक्रम हुआ''। फलस्वरूप भारत व र्ा में विभिन्न धर्मों के अनुयायियों ने अपने ईष्ट देव के निवास के लिए मंदिरों की स्थापना की। इनमें से जैन धर्म के अनुयायी भी प्रमुख हैं, जिन्होंने लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष में जैन मंदिरों की स्थापना की है।

जैन धर्म में मंदिर से भी प्राचीन शब्द है–'आयतन', जिसका अस्तित्व महावीर के काल में भी था क्योंकि वे अपने विहारों के समय यक्षायतनों में ठहरा करते थे। बाद में इस आयतन शब्द का उपयोग जिनायतन शब्द के अंतर्गत होने लगा और उसके भी बाद मंदिर, आलय, गेह, गृह आदि शब्दों ने 4 उसका स्थान ले लिया।

दिगम्बर साहित्यिक साक्ष्य के अनुसार कर्मभूमि के प्रारम्भिक काल में इन्द्र ने अयोध्या में पांच मन्दिरों का निर्माण किया, भरत चक्रवर्ती ने 72 जिनालय बनवाये। उनमें अनर्ध्य रत्नों की प्रतिमायें विराजमान कराई। मानव के इतिहास में तदाकार प्रतीक–स्थापना और उसकी पूजा का यह प्रथम सफल उद्योग कहलाया। शत्रुघ्न ने मथुरा में अनेक जिन–मन्दिरों का निर्माण कराया। सगर चक्रवर्ती के साठ हजार पुत्रों ने भरत चक्रवर्ती द्वारा बनाये हुए इन मन्दिरों की रक्षा के लिए भारी उद्योग किया था और उनके चारों और परिखा खोदकर भागीरथी के जल से उसे पूर्ण कर दिया था। लंकाधिपति रावण इन मन्दिरों के दर्शनो के लिए कई बार आया था। लंका में एक शान्तिनाथ जिनालय था, जिसमें रावण पूजन किया करता था और लंका–विजय के पश्चात् रामचन्द्र, लक्ष्मण आदि ने भी 5 उसके दर्शन किये थे।

पुरातात्विक दृष्टि से यदि बात की जाए तो जैन मन्दिरों का निर्माण–काल जैन प्रतिमाओं के निर्माण–काल

से प्राचीन प्रतीत नहीं होता। लोहानीपुर, श्रावस्ती, मथुरा आदि में जैन मन्दिरों के अवशेष उपलब्ध हुए हैं, जिनमें बहुतायत में जैन प्रतिमाएं मिली है। किन्तु अब तक सम्पूर्ण मन्दिर कहीं पर भी नहीं मिला। इसलिये प्राचीन जैन मन्दिरों का रूप क्या था, यह निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता।

किन्तु गुहा–मन्दिर और लयण ईसा पूर्व सावती आठवीं शताब्दी तक के मिलते है। तेरापुर के लयण, उदयगिरि–खण्डगिरि के गुहामन्दिर, अजन्ता–ऐलोरा और बादामी की गुफाओं में उत्कीर्ण जैन मूर्तियां इस बात के प्रमाण है कि गुफाओं को मन्दिरों का रूप प्रदान कर उनका धार्मिक उपयोग ईसा पूर्व से होने लगा था। भगवान पार्श्वनाथ के पश्चात् दन्तिपुर (उड़ीसा) नरेश करकण्डु ने तेरापुर गुफाओं में गुहा–मन्दिर (लयण) बनवायें और उनमें पार्श्वनाथ तीर्थकर की पाषाण प्रतिमा विराजमान कराई। ये लयण और प्रतिमा अब तक विद्यमान है। 'करकण्डु चरिउ' आदि ग्रंन्थों के अनुसार तो ये 6 लयण और पार्श्वनाथ–प्रतिमा करकण्डु नरेश से भी पूर्ववर्ती थे। इन गुहा मन्दिरों का विकास भी हुआ। विकास का यह रूप मात्र इतना ही था कि कहीं–कहीं गुफाओं में भित्ति–चित्रों का अंकन किया गया। ऐसे कलापूर्ण भित्ति चित्र सित्तन्नवासन आदि गुफाओं में अब भी मिलते हैं। पुरातत्वज्ञों के मतानुसार महावीर–काल में जिनायतन नहीं थे, बल्कि यक्षायतन और यक्ष–चैत्य थे। श्वेताम्बर सूत्र–साहित्य में किसी जिनायतन में महावीर के ठहरने का उल्लेख प्राप्त नहीं होता, बल्कि यक्षायतनों में उनके ठहरने के कई उल्लेख मिलते हैं। महावीर का जिन यक्षायतनों में रूकने का उल्लेख मिलता है, वे किसी वृक्ष के नीचे होते थे और उन्हें वेष्टनी द्वारा परिवेष्टित कर दिया जाता 7 था। इन यक्षायतनों और चैत्यों के आदर्श पर जिनायतन या जिन–मन्दिरों की रचना की गयी।

ईसा पूर्व 600 में मथुरा, काम्पिल्य आदि में पार्श्वनाथ, महावीर आदि के मन्दिर निर्मित हुए थे, ऐसा अनुभव जैन साहित्यिक उल्लेखों से होता है। महावीर से सौ वर्ष पूर्व मथुरा के कंकाली टीले पर किसी कुबेरा देवी ने पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया था। यह पहले सोने का था, बाद में प्रस्तर–खण्डों 8 और ईटों से आवेष्टित कर दिया गया। जो बाद में देवनिर्मित बोद्ध स्तूप कहा जाने लगा। यह सातवें तीर्थकर सुपार्श्वनाथ के काल में सोने का बना था। जब लोग इसका सोना निकाल कर ले जाने लगे, तब कुबेरा देवी ने इसे प्रस्तर खण्डों और ईटों से ढक दिया। स्थापत्य की इस अनुपम कलाकृति का उल्लेख कंकाली टीला (मथुरा) से प्राप्त भगवान मुनिसुव्रत की द्वितीय सदी की प्रतिमा की चरण–चौकी पर अंकित मिलता है।

मौर्य और शुंग काल में जैन मन्दिरों का निर्माण अच्छी संख्या में होने लगा था। उस समय ऊँचे स्थान पर स्तम्भों के ऊपर छत बनाकर मन्दिर बनाये जाते थे। छत गोलाकार होती थी, पश्चात् अण्डाकार बनने लगी।

इण्डोसाइथिक समय के जैनों ने एक प्राचीन मन्दिर में से खुदाई के लिए उसके अवशेषों का उपयोग किया था। स्मिथ भी यह मानते हैं कि ईसवी पूर्व 150 में मथुरा में जैन–मन्दिर था। मथुरा के ''बौद्ध स्तूप से शायद ही कोई अपरिचित होगा। इससे ज्ञात होता है उस समय जैनों में स्तूप–पूजा का भी रिवाज चल पड़ा था, पर यह स्तूप परम्परा चली नहीं। बी0 जायसवालजी का मानना है कि औरिसा 9 में भी कायनिसीदौ–अर्थात् जैन–स्तूप था, जिसमें अरिहन्त का अस्थि गड़ा हुआ था।

शक–सातवाहन–काल (ई0पू0 100 से 200 ई0) में मन्दिरों का निर्माण और अधिक संख्या में होने लगा। इस काल में जैन मन्दिरों, उनके स्तम्भों और ध्वजाओं पर तीर्थकर की मूर्ति बनाई जाने 10 लगी। इस काल में प्रदक्षिणा–पथ भी बनने लगे जो प्रायः काष्ठ की वेष्टनी से बनाये जाते थे। कुषाण काल में ये पाषाण के बनने

लगे।

जैन साहित्यिक स्रोतों में इस काल में बने भड़ौच के शकुनिकाविहार–मुनिसुव्रत तीर्थकर के मन्दिर का उल्लेख आता है। विक्रम संतव् 4 पूर्व यहाँ पर आर्य खपुटाचार्य के रहने का उल्लेख जैन प्रबंधों में आता है। यह विहार प्रथम काष्ठ का था, पर चौलुक्यों के समय में आंबड़भट्ट ने पाषाण का बनाया। लेकिन अल्लाउद्दीन ने गुजरात पर आक्रमण कर भड़ौच सर किया और इतिहास प्रसिद्ध इस सांस्कृतिक तीर्थस्वरूप बिहार को जामाए–मस्जिद में बदल दिया। यह घटना ई0 सं0 1297 की है। इस पर बर्जेस ने विशेष विचार किया है। वह इसकी कला के सम्बन्ध में लिखता है – ''इस स्थान की प्राचीन कारीगरी, आकृतियों की खुदाई और रसिकता, स्थापत्य, शिल्पी की कला का रूप और 11 लावण्य भारत में बेजोड़ है''। इस विहार पर प्रकाश डालने वाले संस्कृत, प्राकृत और देष्य भाषा में अनेक उल्लेख–बल्कि स्वतन्त्र ग्रन्थ मिलते है। कच्छ–भद्रेश्वर का मन्दिर भी सम्प्रति द्वारा निर्मित माना जाता है। पश्चिम भारत में जो प्रांतीय साहित्य उपलबध हुआ है, उसमें और भी कई प्राचीन मन्दिरों का उल्लेख है, पर आठवीं शती पूर्व के ऐसे अवशेष अल्प ही मिले हैं। सम्भव है उनका उपयोग और कोई कार्य में हो गया हो, जैसा कि भद्रेश्वर के अवशेषों का उपयोग ई0 सं0 1810 में मुद्रा ग्राम बसाने में हुआ था और शकुनिकाविहार का मस्जिद में।

कुषाण काल में अहिच्छत्र, कौशाम्बी, काम्पिल्य और हस्तिनापुर अच्छे जैन–केन्द्र माने जाते थे। उत्तर प्रदेश, बिहार और उड़ीसा में भी जैन धर्म के प्रारम्भिक केन्द्र थे। यहां अनेक जैन मन्दिर निर्मित हुए थे।

गुप्त काल (ई0 चौथी से छटी शताब्दी) में मन्दिरों का निर्माण प्रचुरता से होने लगा। सौन्दर्य और मन्दिरों के अलंकरण पर विशेष ध्यान दिया गया। इस काल में स्तम्भों को पत्रावली और मांगलिक चिन्हों से अलंकृत किया जाने लगा। तोरण और सिरदल के ऊपर तीर्थकर–मूर्ति बनाई जाने लगी। गर्भगृह के ऊपर शिखर बनने लगा। बाहर स्तम्भों पर आधारित मण्डप की रचना होने लगी। बाहय भित्तियों पर मूर्तियों का अंकन होने लगा।

जैन मंदिरों की प्रमुख विशेषताएँ –

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि जैन मन्दिरों का विकास भी अपनी समकालीन परम्पराओं के मन्दिरों के साथ एक ही प्रवाह में कभी तीव्र और कभी मंद गति से, निरंतर होता रहा। यही कारण है कि अन्य परम्पराओं के मन्दिरों के मध्य एक जैन मन्दिर की पहचान के लिए सूक्ष्म परीक्षा की आवश्यकता होती है, या फिर उसके लिए किसी अभिलेख, या साहित्य का स्पष्ट उल्लेख, या परम्परागत प्रमाण, या किसी मूर्ति का होना आवश्यक है।

मानसार में मन्दिर के भेदों पर कुछ प्रकाश डाला गया है। यहाँ उल्लेख मिलता है कि जैन–मन्दिर नगर के बाहर और वैष्णव–मन्दिर नगर के मध्य में होना चाहिए। ऐसा लगता है कि गुफा–मन्दिर अक्सर पहाड़ियों में हुआ करते थे और बहुसंख्यक जैन मन्दिर भी स्वाभाविक शान्ति के कारण बाहर बनाये जाते थे। अतः लिख दिया कि जैन–मन्दिर बाहर होना चाहिए। पर इतिहास साहित्य से मानसार के सांम्प्रदायिक उल्लेख की पुष्टि बिल्कुल नहीं होती।

श्री गोरीशंकर औझा लिखते हैं – ''ईसवी सन् की सावतीं शताब्दी के आसपास से बारहवीं शताब्दी तक के सैकड़ों जैनों के मन्दिर अब तक किसी न किसी दिशा में विद्यमान है। जैन–मन्दिरों के स्तम्भों, छतों आदि में बहुधा जैनों से संबंध रखने वाली मूर्तियाँ तथा कथाएँ खुदी हुई पाई जाती है। बहुधा जैनों के मुख्य मन्दिर के

चारों ओर छोटी–छोटी देवकुलिकाएँ बनी रहती है, जिनमें भिन्न–भिन्न तीर्थकरों की प्रतिमाएं स्थापित की जाती है। जैन–मंदिरों में कहीं–कहीं दो मंढप और एक विस्तृत वेदी भी होती है। मंदिरों में गर्भगृह के ऊपर शिखर और उसके सर्वोच्च भाग पर आमलक नाम का बड़ा चक्र होता है। आमलक के ऊपर कलश रहता है, और वहीं ध्वजदंड भी होता है।

जैन धर्म में मंदिर अनिवार्य रूप से किसी तीर्थंकर को समर्पित होता है इसलिए उसे एक स्मारक की संज्ञा देना किसी सीमा तक तर्कसंगत हो सकता है पर यह निश्चित है कि मन्दिर ऐसा स्मारक नहीं जो किसी के अंतिम संस्कार के स्थान पर अथवा अस्थि आदि अवशेषों पर निर्मित किया जाता है। अर्थात् जैन मंदिर की मुख्य वेदी में जो मूलनायक प्रतिमा विराजमान होती है, वह मंदिर उसी तीर्थंकर का बोला जाता है। जैसे – आदिनाथ का मन्दिर, शान्तिनाथ का मन्दिर आदि।

मुनि कान्ति सागर के अनुसार, जैन मन्दिर का भीतरी भाग इन उपभागों में विभक्त रहता है – द्वार मंडप, 'श्रृंगार चौकी', 'नवचौकी', 'गूढमंडप', 'कोलीमंडप' और गर्भगृह'', जहाँ पर मूर्ति स्थापित की जाती है। गर्भगृह और गूढ़मंडप पर क्रमशः शिखर एवं गुम्बज रहते हैं द्वारमंडप प्रायः सजा हुआ रहता है। दो स्तम्भों का तोरण भी कहीं–कहीं रखा जाता है। मुख्य द्वार पर मंगलचैत्य या जिनमूर्ति की आकृति का रहना आवश्यक है। भीतरी भागों में भी जो मुख्य मंडप रहता है–जहाँ स्रावक नर–नारी प्रभु भक्ति करते हैं वहाँ के संतुलित अंकन वाले स्तम्भों पर नृत्य करती हुई या संगीत के विभिन्न वाघों को धारण करने वाली, निर्विकार पुत्तलिकाओं की भाव–सूचक मूर्तियाँ खुदी रहती है। इसे नृत्यमंडप भी कह सकते है। स्तम्भों पर आधृत छतों में बीतराग परमात्मा के समवशरण, या जिस तीर्थकर का मन्दिर है, उसके जीवन की विशिष्ट घटनाएँ खुदी हुई पाई जाती है। कहीं–कहीं विशेष उत्सवों के भावों का प्रदर्शन भी देखा गया है। मधुच्छत्र इसी पर रहता है। आबू का मधुच्छत्र' भारतीय शिल्प–कला का अनन्य प्रतीक है। छत का विशेष प्रकार का अंकन जैन–मन्दिरों को छोड़कर अन्यत्र नहीं मिलता। नागपाश या एक मुख, या तीन या पाँच देहवाली आकृतियाँ द्वार के ऊपर रहती हैं। लोगों का ऐसा विश्वास रहा है कि इस प्रकार की आकृतियां बनाने से कोई भी छत्रपति इसके निम्न भाग से निकल नहीं सकता। मुगलकाल में भी इन आकृतियों का विशेष प्रचार रहा। मन्दिर का भीतरी भाग प्रायः अलंकृत रहता है। जैन–वास्तुशास्त्र का नियम है कि कहीं पर भी प्लेइन प्रस्तर न रखा जाये।

गर्भगृह के मुख्य द्वार की चौखट पर भी कई आकृतियां दृष्टिगोचर होती हैं। चंवरधारिणी नारियों के अतिरिक्त उभय ओर जिन–प्रतिमाएँ या देव–देवियों की मूर्तियाँ तथा जिन–प्रतिमाएँ रहती है। मध्यस्थ स्तम्भ–पर तो निश्चित रूप से मूर्तियाँ रहती ही हैं। कुछ मन्दिर भूमिगत भी है और तीन–चार मंजिल के भी। जैन संस्कृति का त्याग प्रधान रूप, इसके कण–कण में परिलक्षित होता है।

कही–कहीं जैन मंदिरों में मानस्तम्भ भी मिलते हैं। मानस्तम्भ तीर्थकर के मान का प्रतीक है और जिसके मान (ऊँचाई) को देखकर अभिमानियों का मान चूर्ण हो जाता है। मानस्तम्भ का निर्माण कदाचित् सर्वप्रथम मथुरा में (शक–कुषाण काल में) हुआ था। आचार्य जिनसेन के अनुसार मानस्तम्भ का उद्देश्य जिनेन्द्रदेव के त्रिलोकातीत मान (श्रेष्ठता) को सूचित करना है। मानस्तम्भों का स्वरूप प्रायः सर्वत्र एक समान मिला है। भूमि पर एक के ऊपर एक निर्मित तीन पीठिकाओं (अधिष्ठानों) पर स्तम्भदण्ड स्थित रहता है जिसके शी र्ष पर एक 'सर्वतोभद्रिका स्थापित होती है। पीठिकाएं कभी–कभी अलंकृत भी होती है। स्तम्भदण्ड कहीं अलंकृत मिले हैं और कहीं

अल्प–अलंकृत या अलंकरण विहीन। सर्वतोभद्रिका सर्वत्र अलंकृत ही प्राप्त हुई है। उसके चारो ओर एक–एक स्तम्भयुक्त देवकुलिका अंकित होती है, जिनमें सर्वतोभद्रिका या तो उसी पाषाण में उत्कीर्ण की गयी होती है या पृथक् रूप से स्थापित कर दी जाती है। इस सबके ऊपर एक लघु शिखराकृति का आलेखकन होता है। सर्वतोभद्रिका चतुष्कोण ही होती है जबकि स्तम्भदण्ड वृत्ताकार या चतुष्कोण या अष्टकोण होता है। पीठिकाओं का आकार प्रायः स्तम्भदण्ड के समान होता है।

दिगम्बर जैन साहित्य में तीन प्रकार के क्षेत्रों के मंदिरों का विशेष तौर से उल्लेख किया गया हैं जैन मंदिरों की विशे ाताओं को समझने के लिए इनका वर्णन भी समीचीन है।

क. निर्वाण क्षेत्र : ये वे क्षेत्र कहलाते हैं, जहां तीर्थंकरों या किन्हीं मुनिराज का निर्वाण हुआ हो। संसार में निर्वाण ही चरम पुरूषार्थ है। अन्य तीर्थों की अपेक्षा निर्वाण क्षेत्रों का महत्व अधिक होता है। तीर्थंकरों के निर्वाण क्षेत्र कुल पांच हैं – कैलाश, चम्पा, पावा, उर्जयन्त और सम्मेद शिखर। पूर्व के चार क्षेत्रों पर क्रमशः ऋषभदेव, वासुपूज्य, महावीर और नेमिनाथ मुक्त हुए। शेष बीस तीर्थंकरों ने सम्मेद शिखर पर मुक्ति प्राप्त की।

ख. कल्याण क्षेत्र : ये वे पांच क्षेत्र हैं, जहां किसी तीर्थंकर का गर्भ, जन्म, अभिनिष्क्रमण (दीक्षा) और केवलज्ञान कल्याणक हुआ है। जैसे हस्तिनपुर, शौरीपुर, अहिच्छित्र, वाराणसी, काकन्दी, कुकुम्भग्राम आदि।

ग. अतिशय क्षेत्र : जहां किसी मंदिर में या मूर्ति में कोई चमत्कार दिखाई दे, तो वह अतिश्य क्षेत्र कहलाता है। अतिश्य क्षेत्रों के प्रति जनसाधारण का आक ाण भौतिक या सांसारिक होता है, आध्यात्मिक नहीं होता। लोग या तो एहिक कामनावश वहां जाते है अथवा उनके मन में अद्भभुत कुतुहल होता है।

जैन जनता की एहिक कामनाओं की पूर्ति के लिए यदा–तदा जैनेतर देव–स्थानों में जाने से रोकने के लिए ही अतिश्य क्षेत्रों की स्थापना की गयी। यह कल्पना सम्भवतः भट्टारक परम्परा की देन है। अतिश्य क्षेत्र प्रायः 8वीं–9वीं शताब्दी बाद के हैं और यह वह काल था, जब जैन धर्म को अपनी अस्तित्व रक्षा के लिए लगभग सभी प्रान्तों में और मुख्यतः दक्षिण भारत में कठिन संघर्ष करना पड़ रहा था। उस काल में जैन धर्म पर जैनों की आस्था बनाए रखने के लिए ही मनी ाी आचार्यों और भट्टारकों को अतिशय क्षेत्रों की कल्पना करनी पड़ी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. डॉ0 सचिदानन्द सहाय – मंदिर स्थापत्य का इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, द्वितीय संस्करण 1989 पृ0–5
2. डॉ0 भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' – देवगढ़ की जैन कला (एक सांस्कृति अध्ययन), भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, दूसरा संस्करण 2000, पृ0 91–92
3. सुमेरू की पहचान के विषय में विद्वानों के अनेक मत हैं सुमेरू एक ऐसा विशिष्ठ पर्वत है, जहां से पर्वत श्रेणियां निकलकर चारों दिशाओं में फैलती हैं। परिणामस्वरूप अनेक विद्वानों ने इसे पामीर पर्वत का ही प्रतिनिधि माना है। कुछ विद्वान इसका अभिज्ञान हिमालय की विभिन्न चोटियों से करते हैं। डॉ0 आर0 जी0 हर्ष तथा डॉ0 बलदेव उपाध्याय इसकी स्थिति अलवार्ड पर्वत के क्षेत्र में मानते हैं जबकि प्रो0 सैयद मुजफ्फर अली ने अनेक तर्कों के आधार पर मध्य एशिया में स्थित पामीर पर्वत को सुमेरू प्रमाणित किया है।

4. अमलानन्द घोष – जैन कला एवं स्थापत्य, खण्ड–3, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1975, पृ0 515–16
5. बलभद्र जैन – जैन धर्म का प्राचीन इतिहास, प्रथम भाग, गजेन्द्र पब्लिकेशन, दिल्ली, 19XX, पृ0–19 व 22
6. वही पृ0–19
7. प्रो0 कृष्ण दत्त वाजपेयी – भारतीय कला में भगवान महावीर, सन्मति संदेश, दिल्ली, 1961, पृ0–36
8. डॉ0 भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' –वहीं पृ0–93
9. मुनि कान्ति सागर – खण्डहरों का वैभव, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण 1953, पृ0 71–72
10. वलभद्र जैन – वही, पृ0–22
11. मुनि कान्तिसागर –वही, पृ0 76
12. वही, पृ0–75, 76
13. डॉ0 भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' – वही, पृ0–94
14. बलभद्र जैन – वही, पृ0–23
15. अमलानन्द घो ा – वही,, पृ0–516–517
16. मुनि कान्तिसागर –वही, पृ0 72–73
17. वही, पृ0–74
18. आनन्दकुमार कुमारस्वामी – हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन एण्ड इंडोनेशियन आर्ट, न्यूयार्क, 1927, पृ0–27
19. मन्दिर की मुख्य प्रतिमा अर्थात् जिस तीर्थंकर का मन्दिर है उसकी प्रतिमा। मुख्य स्थान पर स्थापित प्रधान जिन–मूर्ति।
20. मुनि कान्तिसागर, वही – 78, 79
21. वही, पृ0–80
22. आदिपुराण– 92–102
23. इसमें एक ही शिलाखण्ड में चारों ओर चार जिन प्रतिमाएँ ध्यानमुद्रा या कायोत्सर्ग में निरूपित होती हैं। इन प्रतिमाओं का निर्माण कुषाण काल में प्रारम्भ हो गया था।
24. डॉ0 भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' –वहीं पृ0–117, 118
25. बलभद्र जैन – भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, प्रथम भाग, प्रकाशक– भारत वर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी, बम्बई, 1974, पृ0–10, 11

निवास – अभयपुरा, तह. दांतारामगढ़, सीकर (राज0)

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 100–102

The Synergistic Role of Artificial Intelligence and Robotics in Modern Technological Advancement

Dr. Piyush Gupta
Assistant Professor in Computer Science, Gramin Girls PG College, Bhadra, Hanumangarh.

1. Introduction :

The convergence of Artificial Intelligence and robotics has revolutionized the modern technological landscape. AI empowers robots with the ability to learn from their environment, make autonomous decisions, and enhance operational efficiency across various sectors. From manufacturing assembly lines to autonomous vehicles and robotic surgery, the impact of AI-enhanced robotics is profound and far-reaching.

2. Historical Background :

The concept of autonomous machines dates back to ancient times; however, the real breakthrough began in the mid-20th century with the advent of programmable computers. The development of AI in the 1950s, particularly through the work of pioneers like Alan Turing, John McCarthy, and Marvin Minsky, laid the groundwork for intelligent machine behavior. Robotics, originally mechanical and limited in scope, began evolving rapidly when integrated with AI technologies in the 1980s and 1990s.

3. Integration of AI in Robotics :

AI contributes several key capabilities to robotics :

Perception : Computer vision and sensory data processing allow robots to understand their surroundings.

Planning and Decision Making : AI enables robots to solve problems, plan tasks, and adapt to new situations.

Learning : Machine learning allows robots to improve their performance over time through experience.

This integration allows robots to operate with greater autonomy and flexibility, especially in unstructured environments.

4. Applications of AI and Robotics

4.1 Healthcare :

Robotics and AI are transforming healthcare through surgical robots, rehabilitation devices, and diagnostic tools. For instance, the da Vinci Surgical System allows precision surgery with minimal invasion, while AI algorithms assist in early disease detection and personalized medicine.

4.2 Manufacturing :

Industrial robots have become smarter with AI, performing tasks such as assembly, welding, and packaging with increased precision. Predictive maintenance and quality control are also enhanced using AI analytics.

4.3 Agriculture :

AI-powered drones and robots are being used for crop monitoring, pesticide spraying, and harvesting. These technologies optimize resource use and increase productivity.

4.4 Defense and Security :

Autonomous drones and robotic systems powered by AI are used for surveillance, bomb disposal, and reconnaissance. While offering tactical advantages, their deployment raises significant ethical concerns.

4.5 Service Industry :

Robots with AI capabilities are being used in customer service roles, from hotel check-ins to retail assistants. Natural Language Processing (NLP) enables effective human-robot communication.

4.6 Space Exploration :

AI-guided robots like NASA's Mars rovers operate in hostile environments, collecting data and performing experiments where human presence is unfeasible.

5. Benefits of AI in Robotics :

Efficiency : Increased speed and accuracy in task execution.

Safety : Reduction in human exposure to dangerous environments.

Scalability : Easy adaptation of robots to various industries.

Cost-effectiveness : Long-term savings despite high initial investment.

6. Challenges and Limitations :

Despite the advantages, AI in robotics faces several challenges :

Ethical Concerns : Autonomy in decision-making, especially in defense applications, raises questions about accountability.

Data Privacy : AI systems require vast amounts of data, posing risks to personal and organizational privacy.

Technical Limitations : Complex environments and unpredictable variables still pose difficulties.

Economic Impact : Job displacement and economic inequality are growing concerns with increased automation.

7. Ethical and Social Implications :

The integration of AI in robotics necessitates a careful ethical framework. Questions about robot rights, decision-making authority, and moral responsibility are becoming central to AI ethics. Transparency, fairness, and accountability must guide the development and deployment of AI systems.

8. The Future of AI and Robotics :

The future promises even deeper integration between AI and robotics :

Human-Robot Collaboration : "Cobots" will work alongside humans in factories and offices.

Smart Cities : AI-driven robotic systems will manage infrastructure, traffic, and public services.

Education : Robots will support personalized learning and educational delivery.

AI Governance : Governments and organizations will develop policies to regulate and guide AI and robotics usage.

9. Conclusion :

AI and robotics together form a transformative force in the modern world, with applications across nearly every sector. Their convergence not only improves operational efficiency and safety but also opens new frontiers for innovation. However, addressing ethical, technical, and economic challenges will be crucial to ensuring that these technologies benefit humanity as a whole.

References :

1. Russell, S., & Norvig, P. (2021). Artificial Intelligence: A Modern Approach (4th ed.). Pearson.
2. Goodrich, M. A., & Schultz, A. C. (2008). Human–robot interaction: a survey. Foundations and Trends® in Human–Computer Interaction, 1(3), 203–275.
3. Bekey, G. A. (2005). Autonomous Robots: From Biological Inspiration to Implementation and Control. MIT Press.
4. Arkin, R. C. (2009). Governing Lethal Behavior in Autonomous Robots. CRC Press.
5. Thrun, S., Burgard, W., & Fox, D. (2005). Probabilistic Robotics. MIT Press.
6. Dautenhahn, K. (2007). Socially intelligent robots: Dimensions of human–robot interaction. Philosophical Transactions of the Royal Society B, 362(1480), 679–704.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 103–106

महिलाओं के संवैधानिक एवं विधिक अधिकार

डॉ. शैलेश पाण्डेय

सारांश :–

प्रारम्भ से ही किसी समाज में नारी की स्थिति दूसरे दर्जे की रही है। प्रत्येक समाज में पुरूषवादी वर्चस्व की ही प्रधानता रही है। एक ऐसी व्यवस्था में जो कि पितृसत्ता के नाम से जानी जाती है, जिसमें पुरुषों का स्त्रियों पर वर्चस्व रहता है तथा जिसमें नारियों का शोषण और उत्पीड़न होता रहा है। पितृसत्ता की सबसे संपूर्णात्मक और उपयोगी परिभाषा लर्नर ने दी है 'उनके अनुसार पितृसत्ता परिवार में महिलाओं और बच्चों पर पुरुषों के वर्चस्व की अभिव्यक्ति तथा संस्थागतकरण और सामान्य रूप से महिलाओं पर पुरूषों के सामाजिक वर्चस्व का विस्तार है।' इसका अभिप्राय है कि पुरूषों का समाज के सभी महत्वपूर्ण सत्ता प्रतिष्ठानों पर नियंत्रण रहता है और महिलाएँ इससे वंचित रहती है। देखा जाये तो ये न केवल नारी अधिकारों का हनन है, बल्कि मानव अधिकारों की दृष्टि से भी निंदनीय एवं अवांछनीय है।

हमारे देश में नारी की गरिमामयी स्थिति को बनाये रखने के लिए बहुत सारे कानून बनाये गये हैं। पर्याप्त कानूनी शिक्षा के अभाव में कानूनों की जानकारी उनकों नहीं मिल पाती, यहाँ तक कि अधिकांश महिलाओं को पता ही नहीं हो पाता कि उनके कौन कौन से अधिकार प्राप्त हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में महिलाओं के उत्थान एवं उनके प्रति अपराधों को रोकने हेतु बनाए गए अधिकारों की विवेचना की गई है।

मुख्य शब्द :– संविधान, विधिक अधिकार, मूल अधिकार, महिला सशक्तिकरण, न्यायालय, मानवधिकार इत्यादि।

परिचय :–

महिला सशक्तीकरण को बेहद आसान शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है कि इससे महिलाएं शक्तिशाली बनती है जिससे वह अपने जीवन से जुड़े सभी फैसले स्वयं ले सकती है और परिवार और समाज में अच्छे से रह सकती है। समाज में उनके वास्तविक अधिकार को प्राप्त करने के लिए उन्हें सक्षम बनाना महिला सशक्तीकरण है। इसमें ऐसी ताकत है कि वह समाज और देश में बहुत कुछ बदल सके। भारत के संविधान में वर्णित मानव अधिकार दो भागों में विभक्त है पहले भाग में वे अधिकार आते है जो मौलिक अधिकारों के रूप में संविधान के अध्याय 3 के अनुच्छेद 12 से 35 में वर्णित है तथा दूसरा भाग संविधान के अध्याय 4 के अनुच्छेद 35 से 51 तक नीति निदेशक तत्वों के रूप में वर्णित है। जहाँ तक मौलिक अधिकारों की स्थिति है तो इन्हे कानूनी संरक्षण प्राप्त है और सरकार इसे लागू करने को बाध्य है, वही नीति निदेशक तत्वों को कानूनी स्वीकृति प्राप्त नही है और इन्हे लागू करना या न करना राज्य की इच्छा पर निर्भर है। जहाँ मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होने पर नागरिक उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय की शरण में जा सकता है। वही नीति निदेशक

सिद्धान्तों को लागू करवाने के लिये न्यायालय की मदद नहीं ली जा सकती। देखा जाएँ तो नीति निदेशक सिद्धान्तों को संकुचित अर्थ में मानवाधिकारों की श्रेणी में नही रखा जा सकता।

अतः नारी अधिकारों के सन्दर्भ में भारतीय संविधान के द्वारा दिये गये मौलिक अधिकारों की चर्चा के द्वारा यह देखने का प्रयास किया जायेगा कि वास्तव में भारतीय संविधान के द्वारा महिलाओं के कौन कौन से मानवाधिकार है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 में यह स्पष्ट उल्लेख है कि कानून के समक्ष सभी समान है और उन्हे कानून का समान रूप से संरक्षण प्राप्त है। यह ब्रिटेन के संविधान की देन है। इसका तात्पर्य है कि सभी लोगो पर राज्य का कानून समान रूप से लागू होगा। इसमें किसी को विशेषाधिकार प्राप्त नही है अर्थात पुरूष एवं महिला दोनो को कानून का समान रूप से संरक्षण प्राप्त है।

अनुच्छेद 15 दूसरा महत्वपूर्ण अधिकार है धर्म, जाति, भाषा, लिंग, जन्मस्थान इत्यादि के आधार पर राज्य अपने नागरिको के साथ किसी प्रकार का भेदभाव नही करेगा अर्थात सार्वजनिक स्थानों जैसे दुकान, होटल, मनोरंजन स्थल, कुआ, तालाब, स्नान घाट, सड़क इत्यादि जो सरकारी विधि से पूर्णतः या आंशिक रूप से संचालित है या आम जनता के लिए घोषित हो, किसी भी आधार पर इसके उपयोग से वंचित नही किया जायेगा। अर्थात् इस अनुच्छेद के द्वारा महिलाओं को लैंगिक आधार पर भेदभाव से सुरक्षा मिली है।

अनुच्छेद 16 के अंतर्गत राज्य के अधीन सेवाओं में सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान किया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि राज्य के अधीन किसी रोजगार या कार्यालय में किसी नागरिक के साथ लिंग, जाति, नस्ल, वंश, जन्म स्थान, निवास इत्यादि के आधार पर भेदभाव नही किया जायेगा। यह मौलिक अधिकार भी नारी अधिकारों को संरक्षण प्रदान करता है।

अनुच्छेद 19 में महिलाओं को स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान किया गया है, ताकि वह स्वतंत्र रूप से भारत के क्षेत्र में आवागमन, निवास एवं व्यवसाय कर सकती है। स्त्री लिंग होने के कारण किसी भी कार्य से उनको वंचित करना मौलिक अधिकार का उल्लंघन माना गया है।

अनुच्छेद 23 में मानव व्यापार, बेगार या अन्य प्रकार की बंधुआ मजदूरी का निषेध किया गया है। इसका उल्लंघन दण्डनीय अपराध होगा। यहां यह उल्लेखनीय है कि मानव व्यापार में महिलाओं का अनैतिक देह व्यापार भी शामिल है।

अनुच्छेद 25 से 30 के अर्न्तगत महिलाओं को भी वो सभी अधिकार प्राप्त है, जो पुरुषों को प्राप्त है। चाहे वह धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार हो या किसी धर्म का प्रचार प्रसार करने का अधिकार, यहाँ तक कि अल्पसंख्यक महिलाओं को भी अपनी शैक्षणिक संस्थाए खोलने का अधिकार है।

जहाँ तक नीति निदेशक सिद्धान्तो की बात है इसमें सबसे महत्वपूर्ण अनुच्छेद 39 है, जिसके अनुसार राज्य इस प्रकार की नीति बनायेगा की सभी नागरिको (पुरुषों एवं महिलाओ) को जीविका के समुचित साधन उपलब्ध हो सके। साथ ही महिलओं और पुरुषों को समान कार्य के लिये समान वेतन का भी अधिकार प्राप्त है। इसमें किसी भी प्रकार का भेदभाव लैंगिक आधार पर नहीं किया जायेगा।

अनुच्छेद 42 के अनुसार महिला को विशेष प्रसूति अवकाश प्रदान करने की बात कही गई है। अनुच्छेद 46 में राज्य दुर्बल वर्गो के शिक्षा तथा अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा तथा सामाजिक

अन्याय एवं सब प्रकार के शोषण से संरक्षा करेगा। अनुच्छेद 49 में यह प्रावधान है कि राज्य काम करने की न्यायपरक एवं मानवीय परिस्थितियों पैदा करेगा तथा मातृत्व लाभ से किसी भी महिला को वंचित नहीं किया जायेगा। इतना ही नही बल्कि संविधान के द्वारा मौलिक कर्तव्य अनुच्छेद 51–ए में कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक महिलाओं के सम्मान को आघात पहुंचाने वाली रीतियों और परम्पराओं का त्याग करें।

संविधान के 73वें संविधान संशोधन के द्वारा यह प्राविधान किया गया कि पंचायतों में एक तिहाई सीटे महिलाओं के लिए सुरक्षित की जाये। इसी तरह अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लिए भी आरक्षित सीटों में से एक तिहाई सीटे उसी श्रेणी की महिलाओं के लिये आरक्षित की गयी। पंचायत अध्यक्षों की कुल संख्या की एक तिहाई संख्या महिलाओं के लिए आरक्षित रहेगी। 74वें संविधान संशोधन के द्वारा नगर निकायों में भी इसी प्रकार की व्यवस्था लागू की गयी।

लोकसभा और राज्यसभा दोनों ने महिला आरक्षण विधेयक 2023 (128वाँ संवैधानिक संशोधन विधेयक) अथवा नारी शक्ति वंदन अधिनियम पारित कर दिया। यह विधेयक लोकसभा, राज्य विधानसभाओं और दिल्ली विधानसभा में महिलाओं के लिये एक–तिहाई सीटें आरक्षित करता है।

कानूनों के द्वारा दिये गये महिलाओं के मानव अधिकार दंड प्रक्रिया संहिता 1973 में महिलाओं को कई प्रकार के मानवाधिकार प्रदान किये गये है। जैसे किसी महिला अभियुक्त की तलाशी किसी महिला पुलिसकर्मी द्वारा ही की जा सकती है। साथ ही ऐसी तलाशी के दौरान पुरूष उपस्थित न हो। यदि किसी महिला अभियुक्त के शरीर की मेडिकल जाँच की जरूरत है तो ऐसी जांच कोई महिला चिकित्सक ही करेगी अथवा महिला चिकित्सक के निरीक्षण में ही जांच की जायेगी।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य महत्वपूर्ण कानून भारतीय दंड संहिता इंडियन पीनल कोड (1860) के तहत है, जिसमें महिलाओं को कई प्रकार के मानव अधिकार प्राप्त है। जैसे यदि कोई पुरुष किसी महिला का बलात्कार करने के इरादे से उस पर हमला करें तो उस महिला को अपने बचाव में उस हमलावर को जान से मारने का अधिकार है। इसी तरह पहली शादी छुपाकर विवाह करना, किसी महिला को अपशब्द कहना या अश्लील टिप्पणी करना, किसी महिला की सहमति के बगैर उसका गर्भपात करवाना इत्यादि भारतीय दंड संहिता के तहत दंडनीय अपराध है।

1961 के दहेज निषेध अधिनियम (1961) के तहत दहेज मांगना या देना दंडनीय अपराध बना दिया गया। इसी तरह 1956 में महिलाओं को वेश्यावृत्ति के अभिशाप से मुक्त कराने के लिये 'अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम' लागू किया गया है। इसके तहत महिलाओं का अनैतिक व्यापार करना एक दंडनीय अपराध बना दिया गया।

इसी तरह महिलाओं के आर्थिक हितों को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से सरकार द्वारा समय समय पर कई कानून बनाये गये जिसमें प्रमुख रूप से 1948 का न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1958 का कारखाना अधिनियम, 1976 का समान पारिश्रमिक अधिनियम इत्यादि प्रमुख है।

सामाजिक रूप से महिलाओं को प्रतिष्ठा दिलाने के उद्देश्य से भी समय समय पर कई अधिनियम पारित किये गये जैसे कुटुंब न्यायालय अधिनियम 1984, गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम 1971, हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 (वर्ष 2005 में यथा संशोधित) भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम 1969 प्रमुख है।

कामकाजी महिलाओं से संबंधित अधिनियम एवं न्यायालय का दृष्टिकोण :-

कामकाजी महिलाओं का शारीरिक और मानसिक रूप से शोशण न हो सके, इसके लिये भी समय समय पर कई अधिनियम एवं न्यायालय के निर्णय प्रभावी हुये है। जैसे उच्चतम न्यायालय ने डी. एस. नकारा बनाम भारत संघ के बाद में निर्णय देते हुए कहा था कि यदि अनुच्छेद 14 व 16 का निवेचन उद्देशिका और अनुच्छेद 39 (ड़) को ध्यान में रखकर किया जाये तो समान कार्य के लिये समान वेतन का सिद्धान्त इन प्रावधानों में स्वतः सिद्ध है।

इसी तरह विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997) के बहुचर्चित विवाद में उच्चतम न्यायालय ने नियोजन के दौरान यौन शोषण के विरूद्ध कानून बनाने की आवश्यकता पर बल दिया जिससे कि कामकाजी महिलाओं का यौन शोषण न हो सके।

महिला अधिकारिता को मजबूती और स्थापित्व प्रदान करने के लिए संसद के द्वारा राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम के अंतर्गत 1990 में राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया। यह आयोग महिला अधिकारों के हनन को रोकने के उद्देश्य से सराहनीय रूप से कार्य कर रहा है। ताकि महिलाओं के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार को रोका जा सके। भारत सरकार द्वारा वर्ष 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष भी घोषित किया गया।

निष्कर्ष : निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कोई भी कानून या संवैधानिक प्राविधान तब तक नारी के अधिकारों की रक्षा नही कर सकता, जब तक समाज का नजरिया उसके प्रति नहीं बदलता। नारी अधिकारों पर संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधान तब और भी सफल होंगें जब महिलाएँ स्वयं भी आगे बढ़कर अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो। महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना होगा तभी नारी अधिकारों का वास्तविक उददेश्य न केवल सैद्धान्तिक स्तर पर बल्कि व्यवहारिक स्तर पर भी प्राप्त हो सकेगा।

संविधान में इतने नियम व कानून होने के पश्चात महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार तो हुआ है लेकिन पर्याप्त मात्रा में नहीं। जिसके पीछे मुख्य कारण है अधिकतर महिलाओं को कानूनों एवं अधिकारों के बारे में पर्याप्त ज्ञान का न होना। अतः महिलाओं के प्रति अत्याचारों को रोकने के लिए कानून व सरकार के साथ समाज को भी भागीदारी प्रयास करने होंगे तथा अपनी उचित भूमिका का निर्वहन करना होगा। इन सामूहिक प्रयासों से ही महिलाओं को सम्मानीय दर्जा व उनके अधिकारों की प्राप्ति हो सकेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. शर्मा एवं मिश्रा, मानवाधिकार सिद्धान्त एवं व्यवहार, बुक डिपो (जयपुर) 2006।
2. एम.पी. सिंह, नारीशक्तिकरण, ग्रन्थ, पब्लिकेशन, हाउस, जयपुर, 2006।
3. देसाई नीरा और गैत्रयी कृष्णराज वीमेन एण्ड सोसायटी इन इंडिया अजंत पब्लिकेशंस दिल्ली, 1987।
4. पाण्डेय, डॉ. जयनारायण, भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी दिल्ली, 2008।
5. संयुक्त राष्ट्र संघ रिपोर्ट वनडे वीमनेरू ट्रेएड्स एण्ड स्टेटिक्स डीरीलली, 1995।
6. आहूजा राम, क्राइम अगेनस्ट वुमेन, जयपुर रावत पब्लिकेशन्स, 1987।
7. सिंह, दिव्या, महिला विकास कार्यक्रम, लोक प्रशासन विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय, 2007।

निवास– शकुंतला कुंज कॉलोनी, चक मुंडेरा, जनपद–प्रयागराज, उत्तर प्रदेश। shaileshrspl.sp@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 107–112

मीराकांत के नाटकों में स्त्री चेतना

परमिन्द्रजीत कौर
शोधार्थी, पीएच.डी. (हिन्दी) गुरु काशी विश्वविद्यालय, तलवंडी साबो, बठिण्डा, पंजाब।
डॉ. विनोद कुमार
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग डीएवी कॉलेज जालन्धर, पंजाब।

शोध पत्र सारांश :–

मीराकांत स्त्री जीवन व संघर्श के विविध पक्षों को चित्रित करने में सिद्धहस्त लेखिका है। मीराकांत ने सामाजिक, पारिवारिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिदृ य के बीच स्त्री जीवन की द ाा, संघर्श और चुनौतियों का सटीक चित्रण किया है। मीराकांत के स्त्री पात्र किसी एक वि ोश वर्ग के नहीं है। उच्चकुलीन स्त्रियों से लेकर वे या तक के सभी पात्र अपने अपने वर्ग का प्रतिनिधि बनकर उभरे हैं। मीराकांत के स्त्री पात्र विशम परिस्थितियों से जुझते हुए स्त्री चेतना से मण्डित दिखाई देते हैं। मीराकांत के पात्र अपनी स्थिति से उभरने के साथ–साथ समस्या के स्थायी समाधान की ओर अग्रसर होते है।

बीज शब्द : स्त्री अस्मिता, स्त्री चेतना, संघर्श, अधिकार, स्वावलम्बन, स्वतन्त्रता।

शोध पत्र :–

स्त्री चेतना एक व्यापक वैचारिक प्रक्रिया है, जिसमें स्त्री की मानसिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक चेतना निहित है। चेतना के माध्यम से स्त्रियां प्रतिबंधों को तोड़ती हुई अधिकार व स्वतंत्रता की दि ाा में कार्य करने के लिए प्रेरित होती है। स्त्री बाहरी समाज के साथ–साथ आंतरिक संघर्श से भी गुजरती है। स्त्री का आत्मसंघर्श उसके व्यक्तित्व व समाज द्वारा निर्मित दोहरे मापदण्डों के बीच चलने वाला संघर्श है। यह संघर्श अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं व समाज की अपेक्षाओं के बीच असन्तुलन का परिणाम होता है। अपनी अभिव्यक्ति का रास्ता खोज पाना स्त्री के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। समाज द्वारा लगाए गए प्रतिबन्धों के बीच वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत होकर खड़ी होने का साहस जुटाती है। यह संघर्श ही उसकी आंतरिक भाक्ति व साहस का प्रतीक है। मीराकांत के स्त्री पात्र प्रत्येक स्थिति में संघर्श ाील स्त्री के रूप में सामने आते है। इन पात्रों में संघर्श अस्तित्व बोध, लैंगिक समानता, अधिकारों के प्रति चेतना, राजनीति में हस्तक्षेप, यौन भाोशण से मुक्ति, आर्थिक स्वावलम्बन, मानसिक द्वन्द्व, सामाजिक रूढ़ियों का खण्डन, पुरुश सत्ता की अस्वीकार्यता, संबंध भून्यता, स्त्री आन्दोलन आदि अनेकरूपों में उद्घाटित होता है।

मीराकांत के 'अन्त हाज़िर हो' नाटक में वि वविद्यालय में पढ़ने वाली युवा पीढ़ी नाटक के माध्यम से सामान्य जन में जागृति लाने के लिए प्रयासरत है। नाट्य मण्डली में भाामिल रोली ि ाक्षित स्त्रियों खासकर उच्च

ि ाक्षण संस्थाओं में ि ाक्षा प्राप्त करने वाली लड़कियों की समस्याओं के प्रति चिंतित है– "कुछ भी कह लो– पर– माना यह महिलाओं की स्थिति बताता है पर घरेलु स्थितियों की बात करता है जो सीधे हम यूनिवर्सिटी की लड़कियों से नहीं जुड़तीं। इसलिए पता नहीं– वे कितना आइडेंटिफाइ कर पायेंगी ख़ुद को!"

लेखिका का मानना है कि स्त्री ि ाक्षा के बल पर भाोशण से मुक्ति के रास्ते पर अग्रसर हो सकती है। ि ाक्षा ही स्त्री जीवन में क्रांति ला सकती है। जब तक स्त्री ि ाक्षित नहीं होगी, तब तक वह भाोशण की चक्की में ऐसे ही पिसती रहेगी। 'गली दुल्हनवाली' नाटक में लेखिका ने ि ाक्षा के प्रभाव को रेखांकित करते हुए यह स्पश्ट किया है कि ि ाक्षित स्त्री अपने भावी पीढ़ी के भविश्य की भी निर्माता बनती है। दुल्हन स्वयं अि ाक्षित होते हुए भी अपनी सन्तान को पढ़ाने के लिए हरसंभव प्रयास करती है। उसे घर से बेघर होना स्वीकार था, परन्तु अपने बेटे–बेटियों का अि ाक्षित होना नहीं– "अपनी ज़िन्दगी का कुछ करने की तो हिम्मत नहीं थी मुझमें पर मेरी ख़्वाहि ा थी कि मेरे बच्चे गौरी और उसके भाई की तरह पढ़ेंकृ इस्कूल जाएँ और अपने बाप जैसे जल्लाद और जाहिल न बनें।"

रज़्ज़ाक बकरे के गो त और कुछ पैसों के बदले अपनी बेटी को अधखड़ उम्र के अकबर के साथ भेजने को तैयार हो जाता है। दुल्हन अपनी बेटी नरगिस का अकबर के साथ निकाह का पुरज़ोर विरोध करती है। वह किसी भी हालात में अपनी बेटी को बेचना नहीं चाहती। लेखिका ने स्त्री की सजगता और चेतना के रास्ते पर चलते हुए दिखाकर नाटक का अन्त किया है। केवल भाोशित व प्रताड़ित स्त्री के जीवन संघर्श को ही नहीं दिखाया अपितु समस्या का समाधान भी खोजा है। स्त्री जब तक कमज़ोर बनी रहती है तब तक पुरुश उसे अपने वर्चस्व के अधीन रखता है। परन्तु जब स्त्री भीतर से मजबूत बन कर समाज के सामने आती है, तो पुरुश उसके सामने घुटने टेक देता है। दुल्हन के माध्यम से इसका प्रमाण पे ा किया है। पति द्वारा भाोशित व पीड़ित दुल्हन भीतर से मजबूत बनकर सामना करती है। वह अत्यन्त सजग होकर कहती है– "मेरे अन्दर उफ़ान–सा आ गयाकृ सच कहती हूँ उबल पड़ा कुछकृ अरे घर मेराकृ गली मेरीकृ ये होता कौन है मुझे बेदखल करने वाला! जब देखो पीटता है। मैं पिटती हूँ इसीलिए ना! मैंने कहा– उठ दुल्हन! उठ जा अब!"

स्त्री पुरुशों की अपेक्षा अधिक संवेदन ाील होती है। भावनाओं की गिरफ्त में बंधकर वह हर प्रकार के भाोशण व अन्याय को सहन करती रहती है। परन्तु जब एक स्त्री के हृदय से संवेदनाएं तिरोहित हो जाती है तो वह पत्थर बन जाती है। दुल्हन का भाव भून्य हो जाना उसके जीवन का नया रूपान्तरण था। दुल्हन के जीवन का क्रांतिकारी बदलाव था पति के अन्याय के सामने डटकर खड़े होने का निर्णय। अब उसे घर से बाहर निकालने वाला कोई नहीं था। रज़्ज़ाक को घर के दरवाज़े से बाहर करके वह आराम से बच्चों के साथ सोती है। वह अपने पति के अमानवीय व्यवहार का तीखा विरोध करती है। लेखिका ने स्त्री मुक्ति का जो सपना देखा था उसकी संकल्पना यही से रूपाकार होती दिखाई देती है।

समाज की परम्परागत बेड़ियों, अन्याय व भाोशण से मुक्ति के लिए ि ाक्षा स्त्री के लिए सबसे बड़ा हथियार है। मीराकांत ने अपने लेखन में स्त्री ि ाक्षा का प्र न प्रमुखता से उठाया है। 'धामपुर' नाटक में लेखिका ने प्रभा बुआ के चरित्र को ि ाक्षा की ओर उन्मुखता से घड़ा है। प्रभा बुआ के भाई प्रह्लाद प्रसाद ने ि ाक्षा के महत्त्व को पहचानते हुए प्रभा बुआ को दिल्ली ले जाकर दिल्ली वि विद्यालय में दाखिल करवा दिया– "पढ़ने में अच्छी थीं पर फूफा जी ने उन्हें सिर्फ ग्यारहवीं तक पढ़ने की इजाज़त दी और फिर सिलाई का घरेलु कोर्स करवा डाला। सिलाई–कढ़ाई में उनका चाव था पर अधिक मन लगता था प्रह्लाद भाई साहब की दी हुई पुस्तकों में।

किस्से–कहानियों और उपन्यासों में। प्राणों बुआ से इजाज़त लेकर प्रह्लाद भाई साहब उन्हें दिल्ली यूनीवर्सिटी की लाइब्रेरी दिखाने भी ले गये थे। हैरान रह गई थीं वो लाइब्रेरी देखकर। आटे की मिल जितनी बड़ी थी लाइब्रेरी!"

समाज में हमे ा स्त्री के बांझपन पर सवाल किए जाते रहे हैं। पुरुश के लिए 'बांझ' का विपरीत लिंगी भाब्द कभी गढ़ा ही नहीं गया है। सन्तान न होने का सन्ताप स्त्री को ही झेलना पड़ता है। मीराकांत ने बांझपन की समस्या को अलग दृश्टिकोण से देखने की कोि ा ा की है। बांझ का कारण पुरुश भी हो सकता है। आज के वैज्ञानिक युग में बांझपन के कारण का पता आसानी से लगाया जा सकता है। लेकिन पुरुश अपनी कमज़ोरी को स्वीकार नहीं पाता और समस्त दोश स्त्री पर मढ़ दिया जाता है। 'धामपुर' नाटक में प्रभा और उसके पति राधे याम इस यर्थाथ का प्रमाण है– "राधे याम बाबू ने दिल्ली लाकर उनकी जाँच करवाई। एक नहीं कई जगहों पर। जैसे ही डॉक्टरों ने यह इ ाारा दिया कि कमी पत्नी में नहीं पति में है तो राधे याम बाबू बीच रास्ते से तत्काल लापता होकर वापस धामपुर पहुँचे। फिर न कभी अपनी ससुराल में देखे गये न दिल्ली में। और अब तो उन्होंने अपनी पत्नी से भी कन्नी काटनी भाुरू कर दी।"

वर्णाश्रम व्यवस्था में भी स्त्री को किसी पद का अधिकारी बनने के लिए दूसरों की आज्ञा पर निर्भर होना पड़ता है। लेखिका ने 'पुनरपि दिव्या' नाटक में यह तर्क सहित स्पश्ट किया है कि स्त्री धर्म के पास जाती है तो उसे पराश्रित होने के कारण भारण नहीं दी जाती। वही धर्ममार्ग वे या को स्वतंत्र नारी का दर्जा देकर धर्म में दीक्षित करने का पक्षपाती है, पर साधारण स्त्री को नहीं। स्त्री जब स्वतंत्र होने के लिए वे या का मार्ग चुन लेती है तो वर्णाश्रम उसके मार्ग में बन जाता है। एक द्विजकन्या वे या के पद पर आसीन नहीं हो सकती– "मद्र अब गणराज्य नहीं– यहां द्विजकन्या वे या के आसन पर नहीं बैठ सकती। यह वर्णाश्रम का अपमान होगा।"

दिव्या धर्म के मार्ग को भी अस्वीकार करती हुई भिक्षु प थुसेन से नारी की प्रकृति को समझने का आग्रह करती है–"भंते, अपने निर्वाण धर्म का पालन करें। नारी का धर्म निर्वाण नहीं, स श्टि है। भिक्षु, उसे अपने मार्ग पर जाने दें।"

स्त्री और पुरुश अन्योन्याश्रित है। स्त्री और पुरुश एक दूसरे के पूरक है। जब दोनों एक दूसरे के पास समभाव से आते है तो पूर्णता को प्राप्त होते है। एक दूसरे को पर अधिकार की भावना से नहीं, आश्रय के आदान–प्रदान की भावना से मिले तब जीवन का रंग खिलता है। दो ह्रदय अपने उच्चतम भाव में होते है। दिव्या राजसिंहासन व धर्मसिहांसन के मार्ग का वरण करने की बजाए आत्मसम्मान, समता, व नि चल भावनाओं के मार्ग पर आरूढ़ होती है और भावना व प्रेम की प्रतिमूर्ति मारि ा का प्रस्ताव स्वीकारती है।

मीराकांत ने अपने नाटकों में स्त्री मुक्ति के संघर्श में ि ाक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका स्वीकारी है। ि ाक्षा के अभाव स्त्री अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं हो सकती है। लेखिका ने 'नेपथ्य राग' नाटक में खना के माध्यम से स्त्री को ि ाक्षा के प्रति चिन्ताग्रस्त दिखाया है। प थुय ास से विवाह का प्रस्ताव सुनकर वह सुबन्धु भट्ट को प्र न करती हुई कहती है– "और मेरा अध्ययन? वह सब यूँ ही अधूरा छूट जाएगा?"

खना अपने अध्ययन और ज्ञान–प्राप्ति के प्रति अधिक सचेत रहती है। वह ि ाक्षा प्राप्ति को विवाह से कहीं अधिक आव यक मानती है। वह विवाह नामक संस्था पर प्र न चिह्न लगाती हुई कहती है–"क्या विवाह अनिवार्य है?"

मीराकांत ने स्त्री के प्रति पुरुश सत्ता की अवधारणा को 'नेपथ्य राग' नाटक में उज्जयिनी के भाासक विक्रमादित्य के माध्यम से स्पश्ट किया है। राजा विक्रमादित्य ने स्त्री के प्रति रूढ़ धारणाओं का खंडन करते हुए खना को सभासद के रूप में नियुक्त किया। राजा विक्रमादित्य के इस निर्णय पर दरबार के अन्य पुरुश सदस्यों की प्रतिक्रिया में विरोध झलकता है, तभी राजा विक्रमादित्य ने स्त्री के अधिकारों के प्रति चिन्ता प्रकट की– "मैंने सोचा था कि आज के सन्दर्भ में वह उपदे ा अब अर्थहीन और अप्रासंगिक हुआ कि जहाँ राजा अपनी सभा करे वहाँ बौनों, कुबड़ों, हिजड़ों और स्त्रियों को नहीं होना चाहिए। आका ा मण्डल के नवग्रहों की भांति मैं राश्ट्र के तेज को नवरत्नों के रूप में छाँटकर इस सभा में लाया था। ज्ञान–विज्ञान, साहित्य और कला के मर्मज्ञ गुणीजनों की उदार दृश्टि यदि इस बिन्दु पर आकर कुण्ठित हो रही है तो सर्वसाधारण इस आधी जनसंख्या के बारे में क्या सोच पाएगा।"

मीराकांत ने स्त्री अस्मिता के साथ–साथ पुरुश के अस्तित्व को भी रेखांकित किया है। उनकी दृश्टि में पुरुश मात्र का विरोध करना तर्कसंगत नहीं है। 'ईहामृग' नाटक में स्नेहगंधा की भेंट जब कुमारिल से होती है तो वह उसके व्यक्तित्व पर टिप्पणी करती हुई अपनी सखी वल्लरी से कहती है– "सखी पहली बार जाना कि किसी पुरुश में भी अभिव्यक्ति का लालित्य, इतना सौन्दर्य और इतनी संवेदन ाीलता एक साथ हो सकती है–और आज तो वे ा भी बदला हुआ था।"

स्त्री किसी भी स्थिति और क्षेत्र में पुरुशों से कम नहीं रही है। स्त्री ने प्रत्येक युग में अपनी प्रतिभा व दक्षता का लोहा मनवाया है। गार्गी की विद्वता, पन्ना धाय का त्याग, लक्ष्मीबाई की वीरता, मीरा की भक्ति, इन्दिरा की राजनीति इत्यादि इसका प्रमाण है। आज स्त्री अंतरिक्ष तक उड़ान भर कर अपनी दक्षता का परिचय दे रही है। मीराकांत ने अपने नाटकों ने स्त्री के स्वावलम्बन और दक्षता को उद्घाटित किया है। मीराकांत ने 'उत्तर प्र न' नाटक में य ाोवती के माध्यम से भाासन व्यवस्था में स्त्री की कार्यदक्षता को उजागर किया गया है। य ाोवती के भाासन की कार्यप्रणाली से क मीर का जनसाधारण अत्यन्त खु ा था। य ाोवती की न्याय व्यवस्था ने वहां के नागरिकों का दिल जीत लिया था। भाम्भुनाथ इस पर टिप्पणी करता हुआ कहता है– "हाँ भई– हमारी महारानी की न्यायदृश्टि से निर्धनों का जीवन सँवर रहा है। ई वर के द ान समान हैं उनके द ान।"

स्त्री पर होने वाले अत्याचार को लेखिका ने समरसेन और कमलप्रभा की घटना के माध्यम से उजागर किया है। इस प्रंसग में महारानी य ाोवती की न्याय व्यवस्था व निर्णय भाक्ति का भी उत्कृ ट रूप देखने को मिलता है। लेखिका ने यह सिद्ध किया है कि नारी की पीड़ा को एक नारी ही अधिक गहराई से समझ सकती है। कमलप्रभा से विवाह के प चात् समरसेन किसी अन्य स्त्री के मोहपा ा में पड़ कर दूसरा विवाह कर लिया। कमलप्रभा द्वारा आपत्ति प्रकट करने पर समरसेन ने उसे नवजात बच्ची समेत बलपूर्वक सुदूर कक्ष के बन्दीगृह में डाल दिया। दुर्गंध से भरा हुए कक्ष में मैली कुचेली उलझे बालों वाली अबोध बच्ची के नेत्रों में बच्ची के रूप में जन्म लेने का गुनाह चमक रहा था। समरसेन ने कमलप्रभा के माता–पिता पर भी अत्याचार किया। महारानी य ाोवती के न्याय परिशद् में जब यह मामला आता है तो महारानी स्त्री पर होने वाले अत्याचार के प्रति सजग होकर निर्णय सुनाती है– "तथ्यों की पुश्टि हो जाने के प चात् दोशसिद्ध आरोपी को दंडित किया जाएगा और वही दंडी दिया जाएगा जो किसी भी सामान्य जन को दूसरे व्यक्ति को बलात् बन्दी बनाने के लिए दिया जाता है। हमारे भाासन में नारी का कोई भी रूप अपने मानवीय अधिकारों से वंचित न होगा। वह चाहे परव ा पत्नी

हो अथवा कोई अबोध बालिका।"

स्त्री ने हर स्थिति में जीवन निर्माण प्रक्रिया में योगदान दिया है। जीवन निर्वाह के लिए स्त्री ने संघर्श का रास्ता चुना। 'पुनरपि दिव्या' नाटक में दिव्या अपना और अपने बच्चे के पालन–पोशण करने हेतु वे या बनना स्वीकार कर लेती है– "मैं दासी कर्म कर– अपना विक्रय कर, गर्भ के प्राणी की रक्षा करूंगी।"

एक स्त्री को हर सोपान पर संघर्श करना पड़ता है। सन्तानोत्पति व सन्तान के लालन–पालन की तमाम जिम्मेदारी स्त्री को निवर्हण करनी पड़ती है, जबकि सन्तानोत्पति की प्रक्रिया में पुरुश और स्त्री दोनों की भूमिका रहती है। दिव्या और प थुसेन के सहवास में यंत्रणा सिर्फ दिव्या को सहन करनी पड़ी। पृथुसेन सहवास के बाद मुक्ति पा लेता है और समाज की द श्टि से कलंकित केवल दिव्या। 'कन्धे पर बैठा था भाप' नाटक में गणिका कामिनी के माध्यम से स्त्री की सामाजिक स्थिति को चित्रित किया गया है। आर्थिक दृश्टि से समर्थ व स्वतंत्र कामिनी समाज का हिस्सा नहीं बन पाती। वह गणिका के दोयम दर्जे के जीवन से निकलकर विवाह करके परिवार की संस्था में भामिल होना चाहती है और समाज में प्रतिश्ठित जीवन जीना चाहती है। गणिका जीवन के यथार्थ को उजागर करती हुई राजम्मा कहती है– "मत भूलो हम गणिकाएँ हैं और हमारा जीवन मात्र हमारा यौवन है। उसके प चात् हम जले हुए जंगल बन जाती है। जिस ओर हिरण कभी नहीं आते– कभी नहीं।"

'नेपथ्य राग' नाटक में खना के माध्यम से स्त्री की ज्ञान के प्रति आकांक्षा का द ार्शाया गया है। खना को ज्योतिश की गहरी समझ है। स्त्री की बुद्धिमत्ता व प्रसिद्धि को पुरुश वर्ग कभी भी सहन नहीं कर पाया। किसी न किस तरह स्त्री को पीछे धकेलने का उपक्रम पुरुश सत्ता का लक्ष्य रहा है। 'खना' को भी पुरुश वर्ग की इसी ईर्श्या का ि ाकार होना पड़ा। खना की प्रतिभा को कुन्द करने के लिए तरह–तरह के तरीके अपनाए गए। यहां तक कि उसकी प्रतिभा का श्रेय भी पुरुश वर्ग को देना का प्रयास किया गया। मेधा की माँ ने इस स्थिति को सूक्ष्मता से उजागर किया है– "हाँ, खना बहुत प्रसिद्ध भविश्यवक्ता बनी। उसके जीवन का लक्ष्य एकाग्र अध्ययन ही था जिसमें उसे सफलता मिली पर– उसके ज्ञान– उसकी प्रसिद्धि को वे लोग कहाँ पचा पाये जो हमे ाा से उस दुनिया को हथियाने बैठे थे। हाँ एक स्त्री और भविश्यवक्ता! सोचो कितनी मेहनत की होगी उसने– कोई किसी को घोलकर तो पिला नहीं सकता कोई भास्त्र– पर उन लोगों ने खना की इस कड़ी मेहनत को एक स्वांग में बदल दिया! कहा गया कि खना ने वराह मिहिर द्वारा तैयार किया गया ज्योतिष्मति तैल पी लिया था! चलो, मान लिया टॉनिक– पर क्या सिर्फ टॉनिक पीकर तुम गोल्ड मैडल ला सकती थीं?"

'खना' में विलक्षण प्रतिभा, बुद्धिमत्ता, ज्ञान व कार्य दक्षता का परिचय एक साथ मिलता है। खना के व्यक्तित्व में ज्योतिश ज्ञान के साथ–साथ अन्य दायित्वों को निभाने की अनूठी प्रतिभा है। 'हुमा को उड़ जाने दो' नाटक में हमीदा बानो के माध्यम से राजनीति में स्त्री की उपस्थिति को द ार्शाया गया है। हुमायूँ की मृत्यु के समाचार से दिल्ली में अराजकता फैलने के भय से हमीदा बानो ने मृत्यु को छिपाकर स्थिति को काबू में रखने का प्रयास किया। लेखिका ने एक स्त्री की राजनीतिक चेतना का परिचय हमीदा बानो के माध्यम से उजागर किया है।

निष्कर्ष :-

निश्कर्श रूप में यह कहा जा सकता है कि मीराकांत का लेखन स्त्री जीवन के विविध आयामों को उद्घाटित करता है। मीराकांत स्त्री की स्थिति के प्रति गहरा संज्ञान लेने के साथ–साथ स्त्री चेतना को भी

अभिव्यक्त करती है। आज की स्त्री अपनी दक्षता व आर्थिक स्वावलम्बन के कारण किसी के अधीन रहने को विव ा नहीं है। आधुनिक स्त्री ने हर क्षेत्र में अपनी प्रतिभा के बल पर स्वयं को स्थापित किया है। मीराकांत केवल स्त्री की द ाा व संघर्श को ही उजागर नहीं करती है, बल्कि उसके सकारात्मक परिणाम भी दिखाती है।

सन्दर्भ सूची :

1. मीराकांत, अन्त हाजिर हो, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण–2012, पृष्ठ–22
2. मीराकांत, श्गली दुल्हनवाली तीन अकेल साथ–साथ, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, सं–2013, पृष्ठ–34
3. वही, पृष्ठ–40
4. मीराकांत, धामपुर, तीन अकेले साथ–साथ, पृष्ठ–52
5. वही, पृष्ठ–57
6. मीराकांत, पुनरपि दिव्या, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, संस्करण–2007, पृष्ठ–63
7. वही, पृष्ठ–66
8. मीराकांत, नेपथ्य राग, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण–2004, पृष्ठ–24
9. वही, पृष्ठ–25
10. वही, पृष्ठ–57
11. मीराकांत, ईहामृग, मेधा बुक्स, दिल्ली, संस्करण–2011, पृष्ठ–63
12. मीराकांत, उत्तर प्रश्न, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2016, पृष्ठ–42
13. वही, पृष्ठ–51
14. मीराकांत, पुनरपि दिव्या, पृष्ठ–43
15. मीराकांत, कन्धे पर बैठा था शाप, नई किताब, नई दिल्ली, संस्करण–2006, पृष्ठ–47
16. मीराकांत, नेपथ्य राग, पृष्ठ–19

मो. – 8437884200

मो. – 7837802706

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 113–118

स्वयं सहायता समूह और सूक्ष्म उद्यमिता : ग्रामीण रोजगार सृजन में भूमिका (बिहार जीविका के विशेष संदर्भ में)

प्राची आदित्य
शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार।

सारांश :-

सहायता समूह (Self-Help Groups & SHGs) ग्रामीण सशक्तिकरण और आर्थिक विकास का एक सशक्त माध्यम हैं, जो विशेष रूप से महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने में सहायक हैं। बिहार में 'जीविका' (JEEVIKA) कार्यक्रम ने SHGs के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं और कमजोर वर्गों को संगठित किया है, जिससे उन्हें वित्तीय समावेशन, सामाजिक सशक्तिकरण और सूक्ष्म उद्यमिता के अवसर प्राप्त हुए हैं। यह शोध SHGs की संरचना, कार्यप्रणाली और बिहार में जीविका द्वारा संचालित सूक्ष्म उद्यमिता पहलों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन ग्रामीण रोजगार सृजन, महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार और सामाजिक सशक्तिकरण में SHGs की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करता है। साथ ही, यह शोध जीविका मॉडल के सफल मामलों और चुनौतियों का विश्लेषण करते हुए भविष्य में SHGs आधारित सूक्ष्म उद्यमिता के लिए संभावनाओं का सुझाव भी प्रस्तुत करता है।

परिचय :-

भारत में स्वयं सहायता समूह (Self-Help Groups & SHGs) ग्रामीण विकास और महिला सशक्तिकरण के महत्वपूर्ण माध्यम बन चुके हैं। SHGs उन स्वयंसेवी समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं जहां ग्रामीण महिलाएं और कमजोर वर्ग नियमित बचत और आपसी सहयोग के माध्यम से वित्तीय सुरक्षा प्राप्त करते हैं। इन समूहों का मुख्य उद्देश्य महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाना, उनकी वित्तीय साक्षरता बढ़ाना और उन्हें स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराना है। SHGs का मॉडल ग्रामीण समुदायों को संगठित करने, उनकी सामूहिक क्षमता का विकास करने और सामाजिक सशक्तिकरण सुनिश्चित करने में सहायक है।

बिहार राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन (Bihar Rural Livelihoods Promotion Society & BRLPS) के तहत संचालित 'जीविका' पहल ने राज्य में SHGs को संगठित और सशक्त किया है। जीविका ने महिलाओं को वित्तीय सहायता, प्रशिक्षण, विपणन और उद्यमिता कौशल प्रदान कर उन्हें सूक्ष्म उद्यमिता की ओर प्रोत्साहित किया है। कृषि, पशुपालन, हस्तशिल्प और खाद्य प्रसंस्करण जैसे विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं ने सूक्ष्म उद्यम स्थापित किए हैं।

SHGs और सूक्ष्म उद्यमिता का यह मॉडल न केवल आर्थिक सशक्तिकरण को बढ़ावा देता है, बल्कि महिलाओं के बीच सामुदायिक नेतृत्व, निर्णय लेने की क्षमता और सामाजिक प्रतिष्ठा में भी वृद्धि करता है। यह शोध जीविका की इस पहल का गहन विश्लेषण करेगा, जो ग्रामीण बिहार में SHGs और सूक्ष्म उद्यमिता के प्रभाव का अध्ययन करता है।

बिहार जीविका : SHGs और सूक्ष्म उद्यमिता को बढ़ावा देने में भूमिका :

जीविका (JEEViKA) बिहार राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन (Bihar Rural Livelihoods Promotion Society & BRLPS) की एक प्रमुख पहल है, जिसका उद्देश्य ग्रामीण परिवारों को सशक्त बनाना और उन्हें आजीविका के नए साधन प्रदान करना है। वर्ष 2006 में आरंभ हुई जीविका पहल का मुख्य लक्ष्य गरीब और वंचित ग्रामीण परिवारों को संगठित करना और उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाना है। यह पहल SHGs के माध्यम से महिलाओं को संगठित करती है और उन्हें वित्तीय साक्षरता, उद्यमिता कौशल और विपणन क्षमता का विकास करने में सहायता प्रदान करती है।

ग्रामीण रोजगार सृजन में SHGs और सूक्ष्म उद्यमिता का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जीविका के माध्यम से बिहार की महिलाओं ने कृषि आधारित उद्यम, जैसे सब्जी उत्पादन, जैविक खेती, डेयरी फार्मिंग, और मत्स्य पालन में सफलता प्राप्त की है। हस्तशिल्प और बुनाई जैसे पारंपरिक कौशल का भी उपयोग किया गया है, जिससे महिलाएं स्थानीय और राष्ट्रीय बाजारों में अपने उत्पाद बेच सकी हैं।

जीविका का ढांचा और कार्यप्रणाली :-

जीविका महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों (SHGs) के रूप में संगठित करती है, जहां वे नियमित बचत करती हैं और इन बचतों को सामूहिक कोष में जमा करती हैं। यह सामूहिक कोष SHGs के सदस्यों को लघु ऋण प्रदान करता है, जिनका उपयोग कृषि, पशुपालन, हस्तशिल्प, खाद्य प्रसंस्करण, खुदरा व्यापार और अन्य सूक्ष्म उद्यमों की स्थापना में किया जाता है।

वित्तीय समावेशन और बैंक लिंकेज कार्यक्रम :-

जीविका ने महिलाओं को मुख्यधारा की बैंकिंग प्रणाली से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। SHGs (स्वयं सहायता समूहों) को संगठित कर उन्हें बैंकिंग सेवाओं तक पहुँचाया गया है, जिसमें बैंक खाते खोलना, डिजिटल भुगतान प्रणाली और लघु ऋण सुविधाएं शामिल हैं। बैंक लिंकेज कार्यक्रम के माध्यम से SHGs को कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराया जाता है, जिससे महिलाओं को सूक्ष्म उद्यमों की स्थापना और विस्तार में सहायता मिलती है।

इसके अतिरिक्त, सरकार की विभिन्न योजनाएं, जैसे प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (PMMY), किसान क्रेडिट कार्ड (KCC), और महिला उद्यमिता कार्यक्रमों के माध्यम से भी महिलाओं को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। यह वित्तीय समावेशन महिलाओं को न केवल वित्तीय आत्मनिर्भरता प्रदान करता है, बल्कि उन्हें वित्तीय प्रबंधन और डिजिटल लेन–देन का ज्ञान भी देता है।

उद्यमिता विकास और प्रशिक्षण :-

जीविका महिलाओं को विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से उद्यमिता कौशल, वित्तीय प्रबंधन और विपणन तकनीकों में प्रशिक्षित करती है। ये प्रशिक्षण कार्यक्रम उन्हें कृषि आधारित उद्यम (जैसे सब्जी उत्पादन,

जैविक खेती), पशुपालन (जैसे डेयरी फार्मिंग), हस्तशिल्प (जैसे जूट, बुनाई, टेराकोटा), और खाद्य प्रसंस्करण (जैसे अचार, मसाले, जैम, पापड़) जैसे क्षेत्रों में सूक्ष्म उद्यम स्थापित करने में मदद करते हैं।

प्रशिक्षण कार्यक्रमों में महिलाओं को उद्यमिता के बुनियादी सिद्धांत, व्यवसाय योजना बनाना, लागत प्रबंधन, विपणन रणनीति, और ग्राहक सेवा जैसी आवश्यक क्षमताओं का विकास कराया जाता है। इसके अतिरिक्त, डिजिटल मार्केटिंग और ई–कॉमर्स प्लेटफार्मों का उपयोग भी सिखाया जाता है, जिससे महिलाओं को अपने उत्पादों को ऑनलाइन बेचने का अवसर मिलता है।

ग्रामीण रोजगार सृजन में जीविका का योगदान :–

जीविका के माध्यम से महिलाओं ने कृषि आधारित उद्यमों में व्यापक सफलता प्राप्त की है। सब्जी उत्पादन में महिलाओं ने जैविक खेती, मशरूम उत्पादन और औषधीय पौधों की खेती शुरू की है। पशुपालन में महिलाओं ने डेयरी फार्मिंग, मुर्गी पालन, बकरी पालन और मछली पालन जैसे क्षेत्रों में उद्यम स्थापित किए हैं। हस्तशिल्प और बुनाई के क्षेत्र में महिलाओं ने जूट, कपड़ा, टेराकोटा और मिट्टी के बर्तन जैसे उत्पाद बनाए हैं। इन उत्पादों को स्थानीय हाट बाजारों के अलावा राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में भी बेचा गया है। डिजिटल प्लेटफॉर्म जैसे Amazon, Flipkart और अन्य ई–कॉमर्स वेबसाइटों के माध्यम से भी जीविका के उत्पाद ऑनलाइन बिकते हैं।

सामाजिक सशक्तिकरण :–

जीविका का प्रभाव केवल आर्थिक सशक्तिकरण तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक सशक्तिकरण में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। SHGs में भागीदारी महिलाओं की निर्णय लेने की क्षमता को बढ़ाती है। वे सामुदायिक नेतृत्व की भूमिकाओं में सक्रिय होती हैं, परिवार और समाज के निर्णयों में उनकी भागीदारी बढ़ती है।

महिलाएं सामुदायिक बैठकों में भाग लेती हैं, सामाजिक मुद्दों पर चर्चा करती हैं, और स्थानीय प्रशासन के साथ सहयोग कर स्थानीय विकास योजनाओं में भागीदार बनती हैं।

वित्तीय प्रबंधन और पारदर्शिता :–

जीविका ने SHGs में वित्तीय प्रबंधन और पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए डिजिटल बैंकिंग और लेखांकन प्रणाली को अपनाया है। सभी वित्तीय लेन–देन बैंक खातों के माध्यम से किए जाते हैं, और नियमित रूप से लेखा–जोखा और ऑडिट प्रक्रिया सुनिश्चित की जाती है।

जीविका का प्रभाव :–

जीविका (JEEViKA) पहल ने बिहार में ग्रामीण महिलाओं के जीवन में व्यापक बदलाव लाया है। इस पहल के माध्यम से महिलाओं ने न केवल अपनी आय में वृद्धि की है, बल्कि वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन गई हैं। महिलाओं ने कृषि, पशुपालन, हस्तशिल्प, खाद्य प्रसंस्करण, और सेवा क्षेत्रों में सूक्ष्म उद्यम स्थापित किए हैं, जो न केवल उनकी व्यक्तिगत आय को बढ़ाते हैं, बल्कि उनके परिवारों की आर्थिक स्थिरता को भी सुनिश्चित करते हैं।

जीविका ने महिलाओं को वित्तीय साक्षरता और बैंकिंग सेवाओं से जोड़ा है, जिससे वे बचत और ऋण प्रबंधन की समझ प्राप्त कर सकी हैं। डिजिटल बैंकिंग और ई–कॉमर्स प्लेटफार्मों के माध्यम से वे अपने उत्पादों

को स्थानीय और राष्ट्रीय बाजारों में बेच सकती हैं।

इस पहल ने महिलाओं को सामाजिक सशक्तिकरण भी प्रदान किया है। SHGs में भागीदारी ने महिलाओं की निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि की है। वे सामुदायिक बैठकों में भाग लेती हैं, सामाजिक मुद्दों पर चर्चा करती हैं, और स्थानीय विकास योजनाओं में सक्रिय भूमिका निभाती हैं।

जीविका का यह मॉडल न केवल आर्थिक सशक्तिकरण तक सीमित है, बल्कि महिलाओं को सामुदायिक नेतृत्व, सामाजिक पहचान, और पारिवारिक निर्णयों में सक्रिय भागीदारी का अवसर भी प्रदान करता है, जिससे उनका जीवन स्तर और सामाजिक प्रतिष्ठा में सुधार हुआ है।

चुनौतियाँ और संभावनाएँ :–

चुनौतियाँ :

1. **वित्तीय संसाधनों की कमी :** ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयं सहायता समूहों (SHGs) के सदस्यों को पर्याप्त वित्तीय सहायता प्राप्त करने में कठिनाई होती है। बैंकों और वित्तीय संस्थानों से ऋण प्राप्त करना जटिल हो सकता है, और उच्च ब्याज दरें भी समस्या बनती हैं।
2. **विपणन और विपणन कौशल का अभाव :** SHGs द्वारा निर्मित उत्पादों का स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर विपणन करना एक बड़ी चुनौती है। विपणन ज्ञान और कौशल की कमी के कारण उत्पादों की बिक्री सीमित हो जाती है।
3. **प्रशासनिक प्रक्रियाओं की जटिलता :** सरकारी योजनाओं और सहायता प्राप्त करने के लिए जटिल प्रशासनिक प्रक्रियाओं का सामना करना पड़ता है, जो SHGs के लिए समय और संसाधनों का अतिरिक्त बोझ बनता है।
4. **सामाजिक मान्यताओं और बाधाओं का प्रभाव :** ग्रामीण समाज में महिलाओं की पारंपरिक भूमिका और सामाजिक मान्यताएं महिलाओं की उद्यमिता को सीमित करती हैं। कई परिवार महिलाओं के व्यावसायिक प्रयासों को प्रोत्साहित नहीं करते।

संभावनाएँ :

1. **डिजिटल वित्तीय समावेशन :** डिजिटल बैंकिंग और ऑनलाइन भुगतान प्रणाली के माध्यम से वित्तीय संसाधनों तक पहुंच बढ़ाई जा सकती है।
2. **प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण :** महिलाओं को विपणन, वित्तीय प्रबंधन और उद्यमिता कौशल में प्रशिक्षित कर उनकी क्षमता बढ़ाई जा सकती है।
3. **स्थानीय और राष्ट्रीय बाजारों तक पहुंच :** ई–कॉमर्स और डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से SHGs के उत्पादों को व्यापक बाजारों में पहुंचाया जा सकता है।
4. **महिला सशक्तिकरण :** SHGs महिलाओं को सामुदायिक नेतृत्व और निर्णय लेने की भूमिका में स्थापित कर सकते हैं।

बिहार जीविका के सफल मामलों के अध्ययन (Case Studies) :

1. **महिला कृषि उद्यमियों का समूह :** जीविका के माध्यम से गठित महिला समूहों ने कृषि आधारित उद्यमों में सफलता प्राप्त की है। ये समूह जैविक खेती, सब्जी उत्पादन और बागवानी में लगे हुए हैं, जो न

केवल उनकी आय बढ़ाते हैं बल्कि स्थानीय बाजारों में ताजे और जैविक उत्पादों की आपूर्ति सुनिश्चित करते हैं।

2. **हस्तशिल्प आधारित सूक्ष्म उद्यम :** महिलाओं के समूह हस्तशिल्प और हस्तनिर्मित वस्त्र जैसे वस्त्र, जूट उत्पाद, और मिट्टी के बर्तनों का निर्माण कर रहे हैं, जो स्थानीय और राष्ट्रीय बाजारों में लोकप्रिय हैं।
3. **पशुपालन और डेयरी उत्पाद आधारित समूह :** महिलाएं सामूहिक रूप से डेयरी इकाइयां संचालित करती हैं, जिनके माध्यम से दूध और दुग्ध उत्पादों का विपणन किया जाता है। यह न केवल उनकी आय बढ़ाता है बल्कि परिवार के पोषण स्तर में भी सुधार करता है।

निष्कर्ष :-

स्वयं सहायता समूह (SHGs) और सूक्ष्म उद्यमिता ग्रामीण रोजगार सृजन का एक सशक्त माध्यम साबित हुए हैं, विशेषकर बिहार जैसे राज्य में जहाँ 'जीविका' पहल ने महिलाओं और कमजोर वर्गों को सशक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह अध्ययन दर्शाता है कि SHGs के माध्यम से महिलाओं ने न केवल आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त की है, बल्कि सामाजिक सशक्तिकरण और सामुदायिक नेतृत्व में भी अपनी भागीदारी बढ़ाई है।

जीविका पहल के माध्यम से महिलाओं ने कृषि, पशुपालन, हस्तशिल्प, और खाद्य प्रसंस्करण जैसे विभिन्न क्षेत्रों में सूक्ष्म उद्यम स्थापित किए हैं, जो ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर उत्पन्न कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त, वित्तीय साक्षरता, विपणन कौशल और डिजिटल वित्तीय सेवाओं का ज्ञान महिलाओं की क्षमता को और मजबूत करता है।

इस शोध में यह स्पष्ट हुआ कि SHGs और सूक्ष्म उद्यमिता का यह मॉडल केवल आर्थिक सशक्तिकरण तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक सशक्तिकरण, सामुदायिक नेतृत्व और निर्णय लेने की क्षमता में भी महिलाओं को सशक्त बनाता है। भविष्य में, यदि SHGs को और अधिक वित्तीय, तकनीकी और विपणन सहायता प्राप्त हो, तो वे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में एक प्रमुख भूमिका निभा सकते हैं।

संदर्भ :-

1. बिहार सरकार। (2023)। बिहार ग्रामीण आजीविका संवर्धन समिति (जीविका) वार्षिक प्रतिवेदन। पटना : बीआरएलपीएस।
2. नाबार्ड। (2022)। भारत में स्वयं सहायता समूह आंदोलन : प्रगति और प्रदर्शन। मुंबई : राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक।
3. शर्मा, आर। (2021)। स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से सूक्ष्म उद्यमिता : बिहार का एक अध्ययन। ग्रामीण विकास जर्नल, 45(3), 45–60।
4. दास, पी। (2020)। महिला सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका : बिहार का एक अध्ययन। भारतीय सामाजिक अनुसंधान पत्रिका, 61(4), 239–250।
5. सिंह, ए. के। (2019)। स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से वित्तीय समावेशन : बिहार का एक अध्ययन। अंतर्राष्ट्रीय ग्रामीण अध्ययन जर्नल, 26(1), 34–42।

6. कुमारी, एस। (2018)। ग्रामीण आजीविका पर SHGs का प्रभाव : जीविका का अध्ययन। सामाजिक विज्ञान पत्रिका, 29(2), 119–130।
7. यादव, एम., – सिंह, वी। (2017)। SHGs के माध्यम से महिला सशक्तिकरण : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन। एशियाई विकास अध्ययन पत्रिका, 34(5), 89–98।
8. कुमार, आर। (2016)। SHGs के माध्यम से सूक्ष्म उद्यमिता विकास : बिहार से साक्ष्य। उद्यमिता जर्नल, 12(3), 201–213।
9. मेहता, पी। (2015)। गरीबी उन्मूलन में SHGs की भूमिका : जीविका का एक अध्ययन। सामाजिक विकास पत्रिका, 19(2), 55–66।
10. वर्मा, एस। (2014)। वित्तीय साक्षरता और SHGs : एक अनुभवजन्य अध्ययन। आर्थिक विकास पत्रिका, 27(1), 71–80।
11. सिन्हा, आर। (2013)। ग्रामीण बिहार में SHGs के माध्यम से सामाजिक पूंजी विकास। ग्रामीण विकास जर्नल, 32(4), 221–232।
12. चौधरी, पी। (2012)। ग्रामीण आजीविका पर जीविका का प्रभाव : एक अध्ययन। भारतीय विकास अध्ययन पत्रिका, 22(3), 99–109।
13. मिश्रा, ए। (2011)। SHGs में महिला नेतृत्व : बिहार का एक अध्ययन। लिंग अध्ययन पत्रिका, 17(4), 41–50।
14. प्रसाद, एल। (2010)। SHGs के माध्यम से सतत आजीविका : एक विश्लेषण। ग्रामीण विकास समीक्षा, 15(3), 65–73।
15. गुप्ता, एन। (2009)। ग्रामीण विकास में SHGs की भूमिका : एक तुलनात्मक अध्ययन। सामाजिक विज्ञान पत्रिका, 28(3), 137–146।

monumonika007@gmail.com
Name - Prachi Aditya
Research Scholar, Dept of sociology
Veer Kunwar Singh University, Ara, Bihar

Dr. Monika Kumari, Assistant Professor
The Assam Royal Global University, Guwahati

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 119-122

काशी तमिल संगमम : एक परिचय

प्रो. पी. राजरत्नम
आचार्य, हिन्दी विभाग, तमिलनाडु केंद्रीय विश्वविद्यालय, तिरुवारूर–610 005

काशी तमिल संगमम भारत के उत्तर और दक्षिण के बीच ऐतिहासिक एवं सभ्यतागत संबंधों के कई पहलुओं का जश्न है। इसका व्यापक उद्देश्य ज्ञान और सांस्कृतिक परंपराओं (उत्तर एवं दक्षिण की) को करीब लाना, हमारी साझा विरासत की समझ विकसित करने के साथ इन क्षेत्रों के लोगों के बीच संबंध को और मजबूत करना है। काशी और तमिलनाडु के प्रमुख शहरों के बीच प्राचीन काल से चले आ रहे कला–सांस्कृतिक जुड़ाव को जीवंत रखने के लिए केंद्र सरकार ने काशी–तमिल संगमम के नए चरण की घोषणा की है। यह शिक्षा मंत्रालय द्वारा अन्य मंत्रालयों जैसे संस्कृति, कपड़ा, रेलवे, पर्यटन, खाद्य प्रसंस्करण, सूचना और प्रसारण आदि तथा उत्तर प्रदेश सरकार के सहयोग से आयोजित किया जा रहा है। यह कार्यक्रम राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP), 2020 के अनुरूप है, जो समकालीन ज्ञान प्रणालियों के साथ भारतीय ज्ञान प्रणालियों की समृद्धि के सामंजस्य पर जोर देती है।

15वीं शताब्दी में मदुरै के आसपास के क्षेत्र पर शासन करने वाले राजा पराक्रम पांड्या भगवान शिव का एक मंदिर बनाना चाहते थे और उन्होंने एक शिवलिंग को वापस लाने के लिये काशी (उत्तर प्रदेश) की यात्रा की। वहाँ से लौटते समय वे रास्ते में एक पेड़ के नीचे विश्राम करने के लिये रुके और फिर जब उन्होंने यात्रा हेतु आगे बढ़ने की कोशिश की तो शिवलिंग ले जा रही गाय ने आगे बढ़ने से बिल्कुल मना कर दिया। पराक्रम पंड्या ने इसे भगवान की इच्छा समझा और शिवलिंग को वहीं स्थापित कर दिया, जिसे बाद में शिवकाशी, तमिलनाडु के नाम से जाना जाने लगा। जो भक्त काशी नहीं जा सकते थे उनके लिये पांड्या ने काशी विश्वनाथ मंदिर का निर्माण करवाया था, जो आज दक्षिण–पश्चिमी तमिलनाडु में तेनकाशी के नाम से जाना जाता है और यह केरल के साथ इस राज्य की सीमा के करीब है।

तमिलनाडु में काशी के नाम से मशहूर वाराणसी दुनिया के सबसे पुराने शहरों में से एक है, जिसकी सभ्यता और संस्कृति अद्वितीय है। गंगा के किनारे बसे इस पवित्र शहर में ज्ञान, दर्शन, संस्कृति, भाषा, साहित्य, कला और शिल्प सभी का विकास हुआ है। गंगा के किनारे काशी के घाटों, गलियों और गलियों में स्थित मंदिर और पाठशालाएँ, खाने–पीने की दुकानें हजारों सालों से रोजाना विद्वानों की बातचीत और बहस की गवाह रही हैं। दूसरी ओर, तमिलनाडु संस्कृति, कला, शिल्प, साहित्य का एक और उद्गम स्थल है, जहाँ तमिल भाषा में ज्ञान का खजाना उपलब्ध है, जो दुनिया की सबसे प्राचीन भाषा में से एक है। तमिल भाषा और इसका शास्त्रीय साहित्य ऋषि अगस्त्य द्वारा लिखित तोलकापियर के समय से ही भारतीय ज्ञान प्रणालियों का एक बड़ा भंडार

रहा है। तमिलनाडु शिल्प शास्त्र की उच्चतम गुणवत्ता और गणितीय परिशुद्धता के साथ अद्‌भुत वास्तुकला के साथ निर्मित मंदिरों की भूमि भी है।

प्राचीन काल से ही, यदि काशी उच्च शिक्षा का आकांक्षी शहर रहा है, तो तमिलनाडु व्यावहारिक ज्ञान की आकांक्षी भूमि रहा है। यदि काशी ने पंडित परम्परा का चरम देखा, तो तमिलनाडु ने तमिल इलक्कियापरम्बरई (तमिल साहित्यिक परंपरा) का शिखर देखा। ये केवल कुछ उदाहरण हैं जो यह दर्शाते हैं कि किस तरह भारत के दो क्षेत्र, काशी और तमिलनाडु, भारत की ज्ञान विरासत के उद्‌गम स्थल थे।

इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि भारतीय संस्कृति की ये दो अभिव्यक्तियाँ, भौगोलिक दृष्टि से दूर होने के बावजूद, सदियों से गहरे और जीवंत संबंध रखती हैं। दूर–दूर से ज्ञान के जिज्ञासु काशी और प्रयागराज, अयोध्या, गोरखपुर जैसे आसपास के स्थानों पर आते थे, जो आंतरिक रूप से ज्ञान केंद्रों के रूप में जुड़े हुए हैं। इसी तरह, तमिलनाडु में कांची, रामेश्वरम, श्रीरंगम, कन्याकुमारी, तिरुनेलवेली, ताम्रपर्णी जैसे स्थान उत्कृष्ट ज्ञान केंद्रध्घटिका स्थान रहे हैं और उन्होंने जहाज निर्माण, मिट्टी के बर्तन, बुनाई, मूर्ति निर्माण, नदी बांध, खनन, युद्ध, हथियार आदि जैसे विभिन्न प्राचीन उद्योगों में योगदान दिया है। ज्ञान के दो केंद्रों के बीच प्राचीन संबंध जीवन के कई क्षेत्रों में स्पष्ट है, जैसे साहित्य में समान विषय, तमिलनाडु के हर गाँव में काशी की उपस्थिति आदि। इसलिए इन दोनों केंद्रों के बीच संबंधों की खोज और पुनर्खोज से बौद्धिक और व्यावहारिक दोनों क्षेत्रों में ज्ञान के महत्वपूर्ण निकायों का निर्माण हो सकता है।

काशी और तमिलनाडु तथा तमिल साहित्य के बीच संपर्क और बंधन को मजबूत करने के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के दृष्टिकोण को आगे बढ़ाते हुए, शिक्षा मंत्रालय ने तमिल संस्कृति और काशी के बीच सदियों से चले आ रहे संबंधों को फिर से खोजने, पुष्टि करने और उनका जश्न मनाने का प्रस्ताव रखा है। वाराणसी (काशी) में पखवाड़े भर चलने वाला 'काशी तमिल संगमम' आयोजित किया जा रहा है, जिसके दौरान भारतीय संस्कृति की दो प्राचीन अभिव्यक्तियों के विभिन्न पहलुओं पर विशेषज्ञों/विद्वानों के बीच शैक्षणिक आदान–प्रदान, सेमिनार, चर्चाएँ आदि आयोजित की जाएँगी, जिसका उद्देश्य दोनों के बीच संबंधों और साझा मूल्यों को सामने लाना है। इसका व्यापक उद्देश्य दोनों ज्ञान और सांस्कृतिक परंपराओं को करीब लाना, हमारी साझा विरासत की समझ पैदा करना और क्षेत्रों के बीच लोगों के बीच संबंधों को गहरा करना है। चूँकि दोनों क्षेत्रों का पारंपरिक ज्ञान पुस्तकों और ग्रंथों में बौद्धिक खजाने के रूप में और साथ ही विभिन्न व्यवसायों के चिकित्सकों के साथ व्यावहारिक रूप में भी रखा जाता है, इसलिए यह महसूस किया जाता है कि एक सार्थक अभ्यास वह होगा जो बौद्धिक और व्यावहारिक दोनों क्षेत्रों को कवर करता है। आजादी के अमृत महोत्सव के हिस्से के रूप में, काशी तमिल संगमम तमिलनाडु और वाराणसी के लोगों के बीच साझा अनुभव, प्रशंसा और बंधन को और मजबूत करेगा।

काशी तमिल संगमम ज्ञान और संस्कृति के दो ऐतिहासिक केंद्रों के माध्यम से भारत की सभ्यतागत संपत्तियों में एकता को समझने के लिए एक आदर्श मंच भी होगा : ओरे भारतम, उन्नत भारतम (एक भारत, श्रेष्ठ भारत) की भावना को बनाए रखने के लिए ऐसी समझ आवश्यक है। यह छात्रों, विद्वानों, शिक्षाविदों, अभ्यासरत पेशेवरों आदि के लिए भारतीय ज्ञान प्रणालियों, शिक्षा और प्रशिक्षण प्रथाओं, कला और संस्कृति, भाषा, साहित्य आदि के विभिन्न पहलुओं पर अनूठा सीखने का अनुभव होगा। काशी तमिल संगमम भाषाओं, लोगों और उनकी

संस्कृति की निरंतरता की अंतर्निहित एकता को समझने और उसकी सराहना करने के लिए है। काशी तमिल संगमम 'एकता में विविधता' का अनुभव करना है। काशी तमिल संगमम एक ऐतिहासिक आयोजन है। यह युगांतकारी होने जा रहा है। एकता में विविधता पर ध्यान केंद्रित करने वाला काशी तमिल संगमम दिमाग और दिलों को एक साथ लाएगा और सीमाहीन लोगों के शाश्वत बंधन को मजबूत करेगा।

काशी और तमिलनाडु के बीच जीवंत संबंधों का अनुभव करने के लिए, जो सदियों से शिक्षा और संस्कृति के दो महत्वपूर्ण केंद्र रहे हैं। काशी और तमिलनाडु के बीच शैक्षिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, भाषाई, आध्यात्मिक, साहित्यिक, धार्मिक, व्यापार, व्यवसाय आदि संबंधों को मजबूत और पुनर्जीवित करना। युवाओं को दोनों क्षेत्रों की 'सांस्कृतिक एकता', लोगों के बीच आत्मीयता, समाज की अंतर्निहित एकता और सामंजस्यपूर्ण जीवन की निरंतरता से अवगत कराना और उसका अनुभव कराना साथ ही 'एक भारत, श्रेष्ठ भारत' के उद्देश्य को आगे बढ़ाना।

इस संगमम में छात्र, शिक्षक, लेखक, किसान, कारीगर, व्यापारी, धार्मिक और कारोबारी व्यक्ति आदि शामिल होंगे और नदियों के नाम पर होगा तमिलनाडु से आने वाले प्रत्येक समूह का नाम। वाराणसी में आयोजित होने वाले काशी–तमिल संगमम में हिस्सा लेने वाले तमिलनाडु के सभी सातों समूहों के नाम नदियों गंगा, यमुना, सरस्वती, सिंधु, नर्मदा, गोदावरी और कावेरी के नाम पर रखे गए है। यह संगमम दोनों ही प्राचीन संस्कृतियों के बीच जुड़ाव को मजबूती देने वाला है। यही वजह है कि इसकी शुरुआत भी पवित्र तमिल माह मार्गली के पहले दिन से की गयी है।

भारत के विभिन्न राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में रहने वाले विविध संस्कृतियों के लोगों के बीच सक्रिय रूप से बातचीत को बढ़ाना है, जिसके द्वारा उनके बीच अधिक आपसी समझ को बढ़ावा देना है। इस सांस्कृतिक आदान–प्रदान के माध्यम से विभिन्न राज्यों की भाषा, संस्कृति, परंपराओं और प्रथाओं के ज्ञान के माध्यम से एक–दूसरे के बीच समझ और जुड़ाव बढ़ेगा, जिससे भारत की एकता और अखंडता मजबूत होगी। यह कार्यक्रम विभिन्न राज्यों और जिलों को वार्षिक कार्यक्रमों में जोड़ने के लिए बहुत उपयोगी होगी जो संस्कृति, पर्यटन, भाषा, शिक्षा, व्यापार आदि क्षेत्रों में आदान–प्रदान के माध्यम से लोगों को जोड़ेगा और नागरिक बहुत बड़ी संख्या में सांस्कृतिक विविधता का अनुभव कर सकेंगे कि भारत एक है।

काशी–तमिल संगमम एक सांस्कृतिक उत्सव है जिसका उद्देश्य उत्तर भारत और दक्षिण भारत की विविध पारंपरिक और सांस्कृतिक प्रथाओं को एक साथ लाना है। इस संगमम में तमिलनाडु के साथ पुडुचेरी के भी कला, संगीत और शिक्षा से जुड़े विद्वान शामिल हुए हैं। इस आयोजन को सफल बनाने के लिए तमिलनाडु के प्रत्येक जिलों में बैठकें भी प्रस्तावित की गई हैं। इस संगमम का आयोजन केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय के द्वारा एक भारत–श्रेष्ठ भारत कार्यक्रम के तहत किया जा रहा है। इस संगमम के आयोजन की जिम्मेदारी आईआईटी मद्रास और बीएचयू को सौंपा गया है। इस बीच संगमम के प्रति तमिलनाडु के लोगों में जागरूकता बढ़ाने के लिए इस बार शिक्षा मंत्रालय ने जागरूकता अभियान भी चलाया है। इसकी जिम्मेदारी आईआईटी मद्रास को सौंपा गया है, जो स्थानीय स्तर पर निजी संस्थाओं के साथ मिलकर प्रत्येक जिले में इस संगमम के प्रति जागरूकता अभियान चलाया है।

काशी तमिल संगमम उत्तर और दक्षिण भारत के ऐतिहासिक और सभ्यतागत संबंधों का जश्न मनाता है।

इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य उत्तर और दक्षिण के ज्ञान और सांस्कृतिक परंपराओं को करीब लाना है। उत्तर और दक्षिण भारत में साझा विरासत की समझ पैदा करना और क्षेत्रों के बीच लोगों से लोगों के बंधन को गहरा करना है।

इस कार्यक्रम का प्रारम्भ केंद्र सरकार के द्वारा 31 अक्टूबर, 2015 को सरदार वल्लभभाई पटेल की 140 वीं जयंती के अवसर पर किया गया था। यह कार्यक्रम भारत की दो प्राचीनतम संस्कृतियों को पुनर्जीवित कर इसको मजबूत करने का प्रयास है। यह कार्यक्रम 'आजादी का अमृत महोत्सव' के भाग के रूप में और एक भारत श्रेष्ठ भारत की भावना को बनाए रखने के लिये भारत सरकार द्वारा की गई एक पहल है।

चलवार्ता/91 9486067330
ईमेल – rajaretnampdkt@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 123–133

ਸਵਰਾਜਬੀਰ ਦੇ ਨਾਟਕ ਕੱਲਰ ਦਾ ਵਿਸ਼ੈਗਤ ਅਧਿਐਨ

ਅਮਨਦੀਪ ਕੌਰ, ਪੀਐਚ. ਡੀ. ਪੰਜਾਬੀ
ਡਾ. ਗੁਰਪ੍ਰੀਤ ਕੌਰ, ਐਸੋਸੀਏਟ, ਪ੍ਰੋਫ਼ੈਸਰ, ਪੰਜਾਬੀ ਵਿਭਾਗ
ਗੁਰੂ ਕਾਸ਼ੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਤਲਵੰਡੀ ਸਾਬੋ , ਜਿਲ੍ਹਾ ਬਠਿੰਡਾ

ਸਵਰਾਜਬੀਰ ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕ ਜਗਤ ਦਾ ਪ੍ਰਮਾਣਿਕ ਨਾਟਕਕਾਰ ਹੈ। ਜਿਸਨੇ ਨਾਟਕ ਦੇ ਖੇਤਰ ਵਿਚ ਨਵੇਂ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣਾਂ ਰਾਹੀਂ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਸਮਾਜਿਕ ਵਿਸ਼ਿਆਂ ਨੂੰ ਛੁਹਿਆ ਹੈ। ਸੰਜੀਦਾ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਦਾ ਮਾਲਕ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਉਹ ਚੇਤੰਨ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਵਾਲਾ ਨਾਟਕਕਾਰ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਜਗਤ ਵਿਚ ਉਹ ਇਕ ਕਵੀ ਦੇ ਤੌਰ ਤੇ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਤਿੰਨ ਕਾਵਿ ਸੰਗ੍ਰਹਿ 'ਆਪਣੀ ਆਪਣੀ ਰਾਤ', ਸਾਹਾਂ ਥਾਈ ਅਤੇ '23 ਮਾਰਚ ' (ਪਾਸ਼ ਦੇ ਨਾਂ ਕਵਿਤਾਵਾਂ) ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਿਤ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਉਹ ਨਾਟਕ ਰਚਨਾ ਨੂੰ ਆਪਣਾ ਸਾਹਿਤਕ ਖੇਤਰ ਬਣਾਉਂਦਾ ਹੈ। 'ਧਰਮ ਗੁਰੂ' ਉਸਦਾ ਪਲੇਠਾ ਨਾਟਕ ਹੈ। ਇਸ ਤੋਂ ਬਾਅਦ 'ਕ੍ਰਿਸ਼ਨ' ਤੇ 'ਮੇਦਨੀ' ਨਾਟਕਾਂ ਰਾਹੀਂ ਉਸਨੇ ਸਥਾਪਿਤ ਮਿੱਥਾਂ ਦਾ ਵਿਸਥਾਪਣ ਕਰਦੇ ਹੋਏ ਨਵੇਂ ਪ੍ਰਸੰਗ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕੀਤੇ ਹਨ। ਚੌਥੇ ਨਾਟਕ 'ਸ਼ਾਇਰ' ਵਿੱਚ ਉਹ ਇਤਿਹਾਸਕ ਪਾਤਕ ਪੀਰੋ ਪ੍ਰੇਮਣ ਦੇ ਜੀਵਨ ਵੇਰਵੇ ਰਾਹੀਂ ਉਸ ਸਮੇਂ ਦੇ ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਸਮਾਜਿਕ ਹਾਲਾਤਾਂ ਅਤੇ ਔਰਤਾਂ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਨੂੰ ਉਭਾਰਦਾ ਹੈ। 'ਕੱਲਰ' ਸਵਰਾਜਬੀਰ ਦਾ ਪੰਜਵਾਂ ਨਾਟਕ ਹੈ। ਇਸ ਨਾਟਕ ਦੀ ਰਚਨਾ 2007 ਵਿਚ ਕੀਤੀ। ਵਿਸ਼ੇ ਪੱਖੋਂ ਇਹ ਨਾਟਕ ਵੱਖਰੀ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ ਇਸ ਨਾਟਕ ਰਾਹੀਂ ਉਹ ਸਮਕਾਲੀ ਪੰਜਾਬੀ ਜੀਵਨ ਵਿਚ ਵਿਦੇਸ਼ਾਂ ਵਿਚ ਜਾ ਕੇ ਰੈਣ ਵਿਸੇਰੇ ਸਥਾਪਿਤ ਕਰਨ ਦੀ ਪ੍ਰਬਲ ਇੱਛਾ ਦੀ ਸਾਖੀ ਭਰਦਾ ਹੈ। 'ਕੱਲਰ'ਨਾਟਕ ਦਾ ਵਿਸ਼ਾ ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਯਥਾਰਥ ਦੀ ਤਸਵੀਰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੋਇਆ

ਮਾਰਕਸੀ ਚਿੰਤਨ ਨੂੰ ਉਭਾਰਦਾ ਹੈ। ਨਾਟਕਕਾਰ ਅਨੁਸਾਰ ਇਹ ਨਾਟਕ ਮਨੁੱਖ ਦੁਆਰਾ ਆਪਣੀਆਂ ਇੱਛਾਵਾਂ ਦੀ ਪੂਰਤੀ ਲਈ ਲਗਾਈ ਜਾਂਦੀ ਉਸ ਦੌੜ ਨੂੰ ਦਰਸਾਉਂਦਾ ਹੈ , ਜਿਸ ਕਾਰਨ ਉਹ ਖੁਸ਼ਹਾਲ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੇ ਸਕੂਨ ਤੋਂ ਵਾਝਾਂ ਹੋ ਕੇ ਡਾਵਾਡੋਲ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਨਾਟਕ ਦੀ ਕਹਾਣੀ ਸਿਰ ਫ਼ ਦਲਬੀਰ ਦੀ ਕਹਾਣੀ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਹਰ ਉਸ ਨੌਜਵਾ ਨ ਦੀ ਕਹਾਣੀ ਹੈ ਜੋ ਆਪਣੀਆਂ ਸੱਧਰਾਂ ਪੂਰੀਆਂ ਕਰਨ ਲਈ ਵਿਦੇਸ਼ਾਂ ਵਿਚ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਪਰਾਈ ਧਰਤੀ ਦੇ ਮਤਰੇਏ ਵਤੀਰੇ ਤੇ ਨ ਫ਼ਰਤ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਹੁੰਦਾ ਹੋਇਆ ਆਪਣੀ ਧਰਤੀ ਦੇ ਮੋਹ ਲਈ ਤਰਸਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਸਭ ਕੁਝ ਗਵਾ ਕੇ ਵਾਪਸ ਪਰਤਦਾ ਹੈ। ਕੱਲਰ ਨਾਟਕ ਵਿਚਲੇ ਪਾਤਰਾਂ ਦਾ ਜੀਵਨ ਦੋਹਰੇ ਸੰਘਰਸ਼ ਨੂੰ ਉਭਾਰਦਾ ਹੈ। ਇਕ ਸੰਘਰਸ਼ ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਕੱਲਰ ਮਾਰੀ ਜ਼ਮੀਨ ਨਾਲ ਹੈ ਜਿਸ ਨੂੰ ਉਹ ਆਪਣੇ ਲਹੂ ਪਸੀਨੇ ਨਾਲ ਧੋ-ਧੋ ਕੇ ਵਾਹੀ ਯੋਗ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਇਸਦੇ ਲਈ ਉਸਨੂੰ ਆਪਣੀਆਂ ਉਮਰਾਂ ਦੀਆਂ ਸਧਰਾਂ ਨੂੰ ਦਾਅ ਤੇ ਲਗਾਉਣਾ ਪੈਂਦਾ ਹੈ। ਦੂਸਰਾ ਸੰਘਰਸ਼ ਉਸ ਨੌਜਵਾਲ ਪੀੜ੍ਹੀ ਦਾ ਹੈ ਜੋ ਖੁਸ਼ਹਾਲ ਜੀਵਨ ਦੀ ਤਾਂਘ ਵਿਚ ਬਿਨਾ ਮੇਹਨਤ ਕੀਤੇ ਸਭ ਕੁਝ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਨ ਲਈ ਪਰਵਾਸੀ ਜੀਵਨ ਜਿਉਣ ਨੂੰ ਤਰਜ਼ੀਹ ਦਿੰਦੇ ਹਨ ਤੇ ਆਪਣੇ ਪੂਰਵਜ਼ਾਂ ਦੀਆਂ ਕੱਲਰ ਭੰਨ-ਭੰਨ ਪੁੱਤਾਂ ਵਾਂਗੂੰ ਪਾਲੀਆਂ ਜ਼ਮੀਨਾਂ ਗਹਿਣੇ ਕਰ ਦਿੰਦੇ ਹਨ। ਓਹ ਏਜੰਟਾਂ ਦੇ ਧੋਖੇ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਹੁੰਦੇ ਤਸੱਦਦ ਸਹਿੰਦੇ ਨਰਕ ਭਰੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਜੀਉਣ ਲਈ ਮਜ਼ਬੂਰ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਬਾਹਰੀ ਤੌਰ ਤੇ ਚਕਾਚੌਂਦ ਭਰੇ ਦਿਸਦੇ ਜੀਵਨ ਨੂੰ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਨ ਲਈ ਓਹ ਆਪਣੀ ਮਿੱਟੀ ਤੋਂ ਟੁੱਟ ਕੇ ਯਤੀਮਾਂ ਵਾਂਗ ਮਾਪਿਆਂ ਦੇ ਪਿਆਰ ਤੋਂ ਵਾਂਝੇ ਹੋਏ ਮਾਨਸਿਕ ਪੀੜਾਂ ਦੁਆਰਾ ਝੰਜੋੜੇ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਸਵਰਾਜਬੀਰ ਨੇ ਨਾਟਕ ਦੀ ਭੂਮਿਕਾ 'ਚਉਦਸ ਚਾਂਦਨੀ ਚਮਕ ਡਰਾਵੈ ਰਾਹੀਂ ਨਾਟਕ ਦੇ ਵਿਸ਼ੇ ਤੇ ਚਾਨਣਾ ਪਾਉਂਦਿਆਂ ਦੱਸਿਆ ਹੈ ਕਿ :

"ਇਹ ਨਾਟਕ ਖੁਸ਼ਹਾਲੀ ਦੀ ਦੌੜ ਵਿਚ ਪਿੱਛੇ ਰਹਿ ਗਏ

> “ਬੰਦੇ ਦੀ ਕਹਾਣੀ ਹੈ। ਉਸ ਤੋਂ ਵੀ ਜ਼ਿਆਦਾ ਇਹ ਪੰਜਾਬ
> ਵਿਚ ਰਹਿ ਰਹੇ ਉਸ ਪੰਜਾਬੀ ਬੰਦੇ ਦੀ ਕਹਾਣੀ ਹੈ, ਜੋ
> ਆਪਣੇ ਹਠ ਨਾਲ ਆਪਣੇ ‘ਕੱਲਰ’ ਨੂੰ ਭੰਨ ਰਿਹਾ ਹੈ,
> ਕੁਝ ਸਫਲ ਤੇ ਕੁਝ ਅਸਫਲ ਹੁੰਦਾ ਹੋਇਆ।”[1]

ਭਾਰਤ ਦੇ ਆ ਜ਼ਾਦ ਹੋਣ ਬਾਅਦ ਪੂੰ ਜ਼ੀਵਾਦ ਮਾਡਲ ਅਧੀਨ ਪੰਜਾਬ ਤੇ ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਪਿੰਡ ਵਿਕਾਸ ਵੱਲ ਤੁਰਦੇ ਹੋਏ ਵਿਨਾਸ਼ ਦਾ ਰੁਖ ਅਪਣਾ ਲੈਂਦੇ ਹਨ ਮਾੜੀ ਅਰਥ ਵਿਵਸਥਾ ਅਤੇ ਜ਼ਮੀਨ ਦੀ ਥੁੜ ਕਾਰਨ ਕਿਰਤੀ ਨੌਜਵਾਨ ਅਮੀਰ ਦੇਸ਼ਾ ਵਿਚ ਪਰਵਾਸ ਕਰਨ ਲਈ ਕਿਰਤੀ ਨੌਜਵਾਨ ਅਮੀਰ ਦੇਸ਼ਾਂ ਵਿਚ ਪਰਵਾਸ ਕਰਨ ਲਈ ਜੱਦ ਜਹਿਦ ਕਰਦੇ ਹਨ ਤੇ ਆਪਣੀ ਧਰਤੀ ਤੋਂ ਟੁੱਟ ਕੇ ਦੁੱਖ ਸਹਿੰਦੇ , ਖੱਜਲ ਖੁਆਰ ਹੁੰਦੇ ਹੋਏ ਵਿਦੇਸ਼ਾਂ ਵਿਚ ਰੁਲਦੇ ਹਨ।

ਨਾਟਕ ਦੇ ਪਹਿਲੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਵਿਚ ਦਲਬੀਰ ਪੰਜਾਬ ਦੀ ਧਰਤੀ ਦੇ ਪਿੰਡਾਂ, ਸ਼ਹਿਰਾਂ, ਦੁੱਧ, ਪੈਲੀਆਂ, ਦਰਿਆਵਾਂ ਦਾ ਗੀਤ ਗਾਉਂਦਾ ਹੈ ਤੇ ਨਾਲ-ਨਾਲ ਆਪਣੇ ਦੋਸਤਾਂ ਨਾਲ ਟੋਲੀ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਤਸਵੀਰ ਦਾ ਦੂਜਾ ਪਾਸਾ ਵੀ ਬਿਆਨ ਕਰਦਾ ਹੈ । ਜਿਸ ਵਿਚ ਗਰੀਬੀ , ਮੰਦਹਾਲੀ, ਨੌਕਰੀਆਂ ਦੀ ਘਾਟ , ਰਿਸ਼ਵਤਖੋਰੀ ਦਾ ਜ਼ਿਕਰ ਹੈ। ਦਲਬੀਰ ਦੇ ਚਾਚੇ ਦੇ ਮੁੰਡੇ ਦੇ ਨੌਕਰੀ ਲੱਗਣ ਪਿੱਛੇ ਦਿੱਤੇ ਪੈਸਿਆਂ ਦਾ ਜ਼ਿਕਰ ਹੈ। ਦਲਬੀਰ ਦੇ ਚਾਚੇ ਦੇ ਮੁੰਡੇ ਦੇ ਨੌਕਰੀ ਲੱਗਣ ਪਿੱਛੇ ਦਿੱਤੇ ਪੈਸਿਆਂ ਦਾ ਜ਼ਿਕਰ ਕਰਦੇ ਹੋਏ ਆਪਸ ਵਿੱਚ ਵਰਤਾਲਾਪ ਕਰਦੇ ਹਨ

“ਸੰਤੋਖ : ਮਾਰਨੀ ਕਿਵੇਂ ਐ ... ਪੈਸਾ ਚੜ੍ਹਾਇਆ ਹੋਣੈ....
ਹੋਰ ਕਿਵੇਂ।”[2]

“ਦਲਬੀਰ : ਓਏ, ਮੈਂ ਤੁਹਾਨੂੰ ਦੱਸਦਾ ਵਿਚਲੀ ਗੱਲ।
ਇਹ ਕੰਮ ਕਰਾਇਆ ਉਹਦੇ ਸ਼ਹਿਰ ਆਲੇ ਮਾਮੇ ਨੇ..
ਉਹ ਪੈਸੇ ਧੇਲੇ ਵਲੋਂ ਵੀ ਤਗੜਾ ਐ... ਤੇ
ਸਰਕਾਰੇ ਦਰਬਾਰੇ ਵੀ ਪਹੁੰਚ ਐ।”[3]

ਇਸ ਸਭ ਤੋਂ ਨਿਰਾਸ਼ ਹੋਏ ਨੌਜਵਾਨ ਆਪਣੇ ਆਪ ਤੋਂ ਪ੍ਰਸ਼ਨ ਪੁਛਦੇ ਹਨ ਕਿ ਉਹ ਕੀ ਕਰਨ। ਦਲਬੀਰ ਖੇਤੀ ਤੋਂ ਉਪਰਾਮ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਆਪਣੇ ਪਿਤਾ ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਦੁਆਰਾ ਖੇਤਾਂ ਦਾ ਕੱਲਰ ਭੰਨ ਕੇ ਵਾਹੀ ਯੋਗ ਬਣਾਈ ਜ਼ਮੀਨ ਵਿਚ ਕੰਮ ਕਰਨ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਛੋਟਾ ਕੰਮ ਸਮਝਦਾ ਹੈ ਤੇ ਵਿਦੇਸ਼ ਵਿਚ ਜਾ ਕੇ ਕਮਾਈ ਕਰਕੇ ਐਸ਼ੋ ਆਰਾਮ ਕਰਨ ਦੇ ਵੱਡੇ -ਵੱਡੇ ਸੁਪਨੇ ਦੇਖਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਨਾਟਕ ਰਾਹੀਂ ਸਵਰਾਜਬੀਰ

ਨੇ ਯਥਾਰਥ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੇ ਹੋਏ ਦੱਸਿਆ ਹੈ ਕਿ ਕਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸਾਡੀ ਨੌਜਵਾਨੀ ਰੁ ਜ਼ਗਾਰ ਨਾ ਮਿਲਣ ਕਰਕੇ ਆਪਣੇ ਭਵਿੱਖੀ ਸੁਪਨਿਆਂ ਨੂੰ ਪੂਰਾ ਕਰਨ ਲਈ ਵਿਦੇਸ਼ਾਂ ਵੱਲ ਰੁਖ ਕਰ ਰਹੀ ਹੈ। ਨਾਟਕ ਵਿਚ ਸਵਰਾਜਬੀਰ ਦੀ ਇਹ ਕਵਿਤਾ ਸਮੁੱਚੇ ਨੌਜਵਾਨਾਂ ਦੇ ਦਿਲ ਦੀਆਂ ਭਾਵਨਾਵਾਂ ਦਾ ਪ੍ਰਗਟਾਵਾਂ ਕਰਦੀ ਹੈ।

“ਇਕ ਚਿਤ ਕਰਦਾ ਪਰਦੇਸੀ ਜਾ
ਲੱਭ ਲਿਆਵਾਂ ਤਾਰੇ ,
ਉੱਚਾ ਉੱਡਾਂ ਵਿੱਚ ਮੈਂ ਅੰਬਰੀ, ਲੈ ਕੇ ਪੰਖ ਹੁਦਾਰੇ,”[4]

ਦੂਜੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਵਿਚ ਦਲਬੀਰ ਪਾਸਪੋਰਟ ਬਣਵਾਉਣ ਲਈ ਘਰੋਂ ਪੈਸੇ ਚੋਰੀ ਕਰਕੇ ਲੈ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਉਸਦੇ ਮਾਤਾ ਪਿਤਾ ਬਹੁਤ ਪ੍ਰੇਸ਼ਾਨ ਹਨ ਅਤੇ ਇਕ ਦੂਜੇ ਨੂੰ ਦੋਸ਼ੀ ਠਹਿਰਾਉਂਦੇ ਹਨ। ਮਨਜੀਤ ਕੌਰ ਸੁੱਖਾਂ ਸੁੱਖ ਸੁੱਖ ਲਏ ਪੁੱਤਰਾਂ ਨੂੰ ਨੌਕਰੀ ਨਾ ਮਿਲਣ ਤੇ ਪ੍ਰੇਸ਼ਾਨ ਹੈ। ਇਸ ਦੌਰਾਨ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਧੀ ਗੁਰਮੀਤ ਕੌਰ ਆਪਣੇ ਪਤੀ ਜਗੀਰ ਨਾਲ ਆਉਂਦੀ ਹੈ। ਤੀਜੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਵਿਚ ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਤੇ ਮਨਜੀਤ ਕੌਰ ਦਲਬੀਰ ਦੇ ਪੂਰੀ ਰਾਤ ਘਰ ਨਾ ਆਉਣ ਕਰਕੇ ਪ੍ਰੇਸ਼ਾਨ ਹਨ। ਜਗੀਰ ਸਿੰਘ ਤੇ ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਸਕੂਟਰ ਤੇ ਉਸਦੀ ਭਾਲ ਵਿਚ ਜਾਂਦੇ ਹਨ , ਪਿਛੋਂ ਗੁਰਮੀਤ ਆਪਣੀ ਮਾਂ ਨਾਲ ਗੱਲਾਂ ਕਰਦੀ ਹੋਈ ਜ਼ਮੀਨ ਖਰੀਦਣ ਲਈ ਪੰਝੀ ਹ ਜ਼ਾਰ ਰੁਪਏ ਦੀ ਮੰਗ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਉਹ ਪਿਉ ਦੇ ਘਰ ਆਪਣਾ ਹੱਕ ਸਮਝਦੀ ਆਪਣੀ ਦੋਹਰੀ ਗਰਜ ਪੂਰਾ ਕਰਨਾ ਚਾਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਉਹ ਘਰ ਦੀ ਹਾਲਤ ਨੂੰ ਨਾ ਸਮਝਦੇ ਹੋਏ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਅਤੇ ਸਹੁਰੇ ਘਰ ਆਪਣਾ ਨੱਕ ਉੱਚਾ ਕਰਨਾ ਚਾਹੁੰਦੀ ਹੈ।

“ਗੁਰਮੀਤ ਕੌਰ: ਵੇਖੋ ਬੀ ਜੀ... ਮੈਨੂੰ ਨੀ ਪਤਾ ਤੁਸੀ ਜ਼ਿੱਦਾਂ ਕਿੱਦਾਂ
ਵੀ ਹੁੰਦਾ ਐ, ਮੇਰਾ ਘਰ ਪੂਰਾ ਕਰੋ। ਨਈ
ਤੇ ਉਥੇ ਨੱਕ ਵੱਢਿਆ ਜਾਣੈ... ਮੇਰਾ ਵੀ ਤੇ ਤੁਹਾਡਾ ਵੀ।”[5]

ਚੌਥੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਵਿਚ ਦਲਬੀਰ ਘਰ ਆਉਂਦਾ ਹੈ ਤੇ ਆਪਣੇ ਬਾਹਰ ਜਾਣ ਦੇ ਫੈਸਲੇ ਬਾਰੇ ਦੱਸਦਾ ਹੈ। ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਉਸਨੂੰ ਵਾਹੀ ਕਰਨ ਤੇ ਪੜਨ ਲਿਖਣ ਬਾਰੇ ਆਖਦਾ ਹੈ ਪਰ ਉਹ ਇਸਨੂੰ ਨਕਾਰਦਾ ਹੋਇਆ ਤੇ ਵਾਹੀ ਨੂੰ ਹੱਤਕ ਭਰਿਆ ਕਾਰਜ ਸਮਝਦਾ ਹੋਇਆ ਬਾਹਰ ਜਾ ਕੇ ਵਧੇਰੇ ਪੈਸੇ ਕਮਾਉਣ ਦੀ

ਗੱਲ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਗੁਰਮੀਤ ਕੌਰ ਦੁਆਰਾ ਪੈਸੇ ਮੰਗਣ ਦੀ ਗੱਲ ਸੁਣ ਕੇ ਦਲਬੀਰ ਗੁੱਸੇ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਗੁਰਮੀਤ ਆਪਣੇ ਨਿੱਜ ਨੂੰ ਅਹਿਮੀਅਤ ਦਿੰਦੀ ਹੋਈ ਮਾਪਿਆਂ ਦੀ ਬੇਵੱਸੀ ਨੂੰ ਨਹੀਂ ਸਮਝ਼ਦੀ, ਦੂਜੇ ਪਾਸੇ ਦਲਬੀਰ ਬਾਹਰ ਜਾਣ ਲਈ ਦੋ ਲੱਖ ਰੁਪਏ ਦੀ ਮੰਗ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਪਰਿਵਾਰਿਕ ਵਾਰਤਾਲਾਪ ਰਾਹੀਂ ਪੂੰਜ਼ੀਵਾਦ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਅਤੇ ਮਨੁੱਖੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਦੀ ਬਦਲਦੀ ਸਮੀਕਰਨ ਨੂੰ ਦਰਸਾਇਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਪੈਸਾ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਵਿਚਲੇ ਮੋਹ ਤੇ ਭਾਰੂ ਪੈਂਦਾ ਹੈ। ਅਜਿਹੀ ਸਥਿਤੀ ਵਿਚ ਮਾਂ -ਪਿਉ ਦਾਵੰਦ ਵਿਚ ਫਸ ਜਾਂਦੇ ਹਨ ਅਤੇ ਇਸ ਦੁਬਿਧਾ ਵਿਚੋਂ ਨਿਕਲਣ ਲਈ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਆਪਣੀ ਕੱਲਰ ਭੰਨ-ਭੰਨ ਸੁਆਰੀ ਜ਼ਮੀਨ ਬੈਅ ਕਰਨੀ ਪੈਂਦੀ ਹੈ ਤਾਂ ਜੋ ਦਲਬੀਰ ਅਤੇ ਗੁਰਮੀਤ ਕੌਰ ਦੀਆਂ ਇੱਛਾਵਾਂ ਪੂਰੀਆਂ ਕੀਤੀਆਂ ਜਾ ਸਕਣ।ਛੇਵੇਂ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਵਿਚ ਦਲਬੀਰ ਦੀ ਮਨੋਬਚਨੀ ਦਿਖਾਈ ਗਈ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿਚ ਉਹ ਬਾਹਰ ਜਾ ਕੇ ਬਹੁਤ ਜ਼ਿਆਦਾ ਅਮੀਰ ਹੋਣ ਦੇ ਸੁਪਨੇ ਦੇਖਦਾ ਹੈ।

"ਕਿੱਲਿਆਂ ਦੇ ਕਿੱਲੇ ਜ਼ਮੀਨ ਹੋਵੇਗੀ, ਚੁਬਾਰੇ ਪੈਣਗੇ...
ਤੇ ਜੱਟ ਦਾ ਵਿਆਹ ਹੋਵੇਗਾ"[6]

ਦਲਬੀਰ ਦੀ ਮਾਂ ਤੇ ਉਸਦੇ ਦੋਸਤਾਂ ਵਿਚ ਸੁਪਨਮਈ ਗੱਲਬਾਤ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਵਿਦੇਸ਼ਾਂ ਵਿਚ ਰਹਿਣ ਵਾਲੇ ਲੋਕ ਆਪਣੇ-ਆਪਣੇ ਮਨੋਭਾਵ ਸੁਣਾਉਂਦੇ ਹਨ। ਅੰਤ ਵਿਚ ਦਲਬੀਰ ਦੁਬਿਧਾ ਵਿਚ ਘਿਰਿਆ ਨਜਰ ਆਉਂਦਾ ਹੈ।

ਨਾਟਕ ਦੇ ਸੱਤਵੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਵਿਚ ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਕਾਮਰੇਡ ਦਰਸ਼ਨ ਦੀ ਘਰ ਆਪਣੇ ਪੁੱਤਰ ਦੇ ਬਾਹਰ ਜਾਣ ਦੀ ਜ਼ਿੱਦ ਤੇ ਗੱਲ ਕਰਨ ਆਉਂਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਆਪਣੀ ਮਿਹਨਤ ਨਾਲ ਕੱਲਰ ਭੰਨ ਕੇ ਚੰਗੇ ਜੀਵਨ ਜੀਉਣ ਦੀਆਂ ਗੱਲਾਂ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਦਰਸ਼ਨ ਸਿੰਘ ਆਪਣੇ ਕਾਮਰੇਡੀ ਵਿਚਾਰਾਂ ਦੇ ਉਲਟ ਦਲਬੀਰ ਦੀ ਬਾਹਰ ਜਾਣ ਦੀ ਗੱਲ ਨੂੰ ਜਾਇ ਜ਼ ਦੱਸਦਾ ਹੈ ਤੇ ਏਜੰਟਾਂ ਦੀ ਲੁੱਟ -ਖਸੁੱਟ ਤੋਂ ਬਚਣ ਲਈ ਚੇਤੰਨ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਦਰਸ਼ਨ ਸਿੰਘ ਲੰਘ ਚੁੱਕੇ ਸਮੇਂ ਨੂੰ ਯਾਦ ਕਰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਸਿਧਾਂਤਾਂ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰਦਾ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿਚ ਉਹ ਅਨਿਆ ਤੇ ਬੇਇਨਸਾ ਫ਼ੀ ਦੇ ਵਿਰੁੱਧ ਲੜ ਕੇ ਦੁਨੀਆ ਬਦਲਣਾ ਚਾਹੁੰਦੇ ਸਨ। ਪਰ ਪੂੰਜ਼ੀਵਾਦ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਨੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਿਧਾਂਤਾਂ ਦੇ ਪਰਨਾਏ ਹੋਏ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਵੀ ਬਿਗਾਨੇ ਮੁਲਕਾਂ ਵਿਚ ਵਸਾ ਦਿੱਤਾ।

“ਪਰ ਜਿਹੜਾ ਕੱਲਰ ਭੰਨਨ ਦੀ ਅਸੀਂ ਸੋਚੀ ਸੀ ਨਾ...

ਉਹ ਤਾਂ ਉਦਾਂ ਦਾ ਉਦਾਂ ਈ ਐ।”[7]

ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਕਾਮਰੇਡ ਦੇ ਵਿਚਾਰਾਂ ਵਿਚ ਆਈ ਤਬਦੀਲੀ ਦੇਖ ਕੇ ਕਰਮ ਸਿਹੁੰ ਨੂੰ ਚੇਤੇ ਕਰਦਾ ਹੈ ਜੋ ਕਿ ਪੂੰ ਜ਼ੀਵਾਦ ਦੇ ਵਿਰੋ ਧ ਵਿਚ ਸਰਗਰਮ ਵਿਅਕਤੀ ਸੀ। ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਵਾਰਤਾਲਾਪ ਰਾਹੀਂ ਨਾਟਕਕਾਰ ਕਾਮਰੇਡਾਂ ਦੇ ਵਿਚਾਰਾਂ ਵਿਚ ਆਏ ਨਿਘਾਰ ਤੇ ਚਾਨਣਾ ਪਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਦਰਸ਼ਨ ਸਿੰਘ ਦੇ ਪੁੱਤਰ ਵੀ ਸ਼ਹਿਰ ਜਾ ਵੱਸੇ ਹਨ ਤੇ ਉਹ ਉਸਦੇ ਪਿੰਡ ਵਿਚ ਰਹਿਣ ਨੂੰ ਕੱਲਰ ਵਿਚ ਕੱਲਰ ਹੋ ਜਾਣਾ ਸਮਝਦੇ ਹਨ। ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਇਸਦੇ ਨਾਲ ਸਹਿਮਤ ਨਹੀਂ ਉਹ ਆਖਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਪਿੰਡ ਦਾ ਕੱਲਰ ਆਪਣੀ ਮੇਹਨਤ ਨਾਲ ਭੰਨ ਲਿਆ ਹੈ। ਪਰ ਕਾਮਰੇਡਾਂ ਨੇ ਆਪਣਾ ਮਿਥਿਆ ਹੋਇਆ ਕੱਲਰ ਨਹੀਂ ਭੰਨਿਆਂ ਤੇ ਦੋਹਾਂ ਦੀ ਬਹਿਸ , ਇੱਕ ਇ ਬਿੰਦੂ ਤੇ ਫੋਕਸ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਇਸ ਦੌਰਾਨ ਸੂਤਰਧਾਰ ਤੇ ਉਸਦੇ ਸਾਥੀ ਕੱਲਰ ਭੰ ਨਣ ਦੇ ਯਤਨਾਂ ਵਿਚਲੀ ਅਸਫਲਤਾ ਨੂੰ ਅਜਬ ਕਹਾਣੀ ਦੱਸਦੇ ਹੋਏ ਗੀਤ ਗਾਉਂਦੇ ਹਨ। ਦਰਸ਼ਨ ਸਿੰਘ ਆਤਮ ਬਚਨੀ ਰਾਹੀਂ ਸਵੈ ਪੜਚੋਲ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਬੋਹੜ ਤੇ ਬਿਰਖ ਦੀ ਬਾਤ ਰਾਹੀਂ ਰੂਸ ਵੱਲ ਈਸ਼ਾਰਾ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਸੂਤਰਧਾਰ ਕੱਲਰ ਦਾ ਜ਼ਿਕਰ ਕਰਦਾ ਹੈ ਕੁਝ ਟੁੱਟ ਗਿਆ ਤੇ ਕੁਝ ਰਹਿ ਗਿਆ ਜੋ ਦਰਸ਼ਕਾਂ ਦੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਵਿਚ ਕਈ ਸਵਾਲ ਪੈਦਾ ਕਰਦਾ ਹੈ।

ਅੱਠਵੇਂ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਵਿਚ ਦਲਬੀਰ ਆਪਣੇ ਦੋਸਤਾਂ ਨਾਲ ਮਿਲ ਕੇ ਬਾਹਰ ਜਾਣ ਦੀਆਂ ਸਲਾਹਾਂ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਸੁਖਦੇਵ ਆਪਣੀਆਂ ਘਰੇਲੂ ਮਜ਼ਬੂਰੀਆਂ ਦਾ ਜ਼ਿਕਰ ਕਰਦਾ ਹੈ ਜਿਸ ਕਾਰਨ ਉਸਦੇ ਆਪਣੇ ਚਾਅ ਖਤਮ ਹੋ ਰਹੇ ਹਨ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀਆਂ ਗੱਲਾਂ ਰਾਹੀਂ ਨਾਟਕਕਾਰ ਪੇਂਡੂ ਨੌਜਵਾਨੀ ਦੇ ਜੀਵਨ ਦੀਆਂ ਦੁਸ਼ਵਾਰੀਆਂ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਨੌਜਵਾਨਾਂ ਕੋਲ ਨਾਂ ਤਾਂ ਆਪਣਾ ਕੋਈ ਰੋ ਜ਼ਗਾਰ ਹੈ ਤੇ ਨਾ ਹੀ ਆਪਣੇ ਸੁਪਨੇ ਪੂਰੇ ਕਰਨ ਦਾ ਹੋਰ ਕੋਈ ਸਾਧਨ। ਬੇਰੁ ਜ਼ਗਾਰੀ ਕਾਰਨ ਉਨ੍ਹਾ ਦੇ ਵਿਆਹ ਦਾ ਸਮਾਂ ਵੀ ਨਿਕਲ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਇਸਦੇ ਨਾਲ ਹੀ ਨਾਟਕਕਾਰ ਨੇ ਵਧ ਰਹੇ ਨਸ਼ੇ ਅਤੇ ਪਿੰਡਾਂ ਵਿਚ ਫੈਲ ਰਹੀ ਨਸ਼ਾ ਤਸਕਰੀ ਤੇ ਵੀ ਚਾਨਣਾ ਪਾਇਆ ਹੈ। ਜਿਸ ਨਾਲ ਕੁਝ ਕ ਲੋਕ ਦਿਨੇ ਦਿਨ ਮਾਲੋ ਮਾਲ ਹੋ ਰਹੇ ਹਨ ਅਤੇ ਨਸ਼ੇ ਦੀ ਆਦਤ ਵਿਚ ਪਏ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਹਾਲਾਤ ਨਿਘਰਦੇ ਜਾ ਰਹੇ ਹਨ।

ਦਲਬੀਰ ਅਤੇ ਕੁਲਜੀਤ ਦੀ ਆਪਸੀ ਗਲਬਾਤ ਰਾਹੀਂ ਸਿੱਧ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਆਰਥਿਕ ਹਾਲਤ ਸੁਧਾਰਨ ਦਾ ਇਕੋ-ਇਕ ਰਾਹ ਬਾਹਰ ਜਾਣਾ ਹੈ ਜਿੱਥੇ ਜਾ ਕੇ ਮਜ਼ਦੂਰੀ ਦਾ ਵੀ ਮੁੱਲ ਪੈਂਦਾ ਹੈ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਮਨ ਵਿਚ ਚਾਅ ਪੈਦਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਬਾਹਰਲੇ ਦੇਸ਼ ਜਾ ਕੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀਆਂ ਆਸਾਂ ਨੂੰ ਬੂਰ ਪਏਗਾ। ਸਾਰੇ ਮਿਲ ਕੇ ਗੀਤ ਗਾਉਂਦੇ ਹਨ।

ਨਾਟਕ ਦੇ ਨੌਵੇਂ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਵਿਚ ਦਲਬੀਰ ਬਾਹਰ ਜਾਣ ਲਈ ਤਿਆਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਅਤੇ ਮਨਜੀਤ ਕੌਰ ਪੁੱਤਰ ਦੇ ਜਾ ਣ ਦੀ ਤਿਆਰੀ ਕਰਦੇ ਹਨ ਤੇ ਬਹੁਤ ਖੁਸ਼ ਹਨ। ਦਲਬੀਰ ਦੇ ਜਾਣ ਤੇ ਮਾਂ ਉਸਨੂੰ ਬੁੱਕਲ ਵਿਚ ਲੈ ਕੇ ਭਾਵੁਕ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ਤੇ ਗੀਤ ਦੇ ਬੋਲ ਉਭਰਦੇ ਹਨ।

“ਲੈ ਅੱਖਾਂ ਵਿਚ ਰੰਗਲੇ ਸੁਪਨੇ, ਪੈਰ ਜ਼ਹਾਜ਼ੇ ਪਾਇਆ
ਛੱਡਿਆ ਦੇਸ਼ ਪਰਦੇਸੀ ਹੋਇਆ, ਰਿਜ਼ਕਾਂ ਦਾ ਭਰਮਾਇਆ
... ਛਮ ਛਮ ਰੋਈਆਂ ਮਾਂ ਦੀਆਂ ਅੱਖਾਂ, ਦਿਲ ਪਿਉ ਦਾ ਭਰ ਆਇਆ”[8]

ਪਹਿਲੇ ਅੰਕ ਦੇ ਦਸਵੇਂ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਵਿਚ ਕਾਮਰੇਡ ਦਰਸ਼ਨ ਸਿੰਘ ਦੀ ਵਿਚਾਰਧਾਰਕ ਤ੍ਰਾਸਦੀ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਇਸ ਰਾਹੀਂ ਨਾਟਕਕਾਰ ਕਾਮਰੇਡਾਂ ਦੀ ਸੋਚ ਵਿਚ ਆਏ ਨਿਘਾਰ, ਕਹਿਣੀ ਤੇ ਕਰਨੀ ਦੇ ਪਾੜੇ ਬਾਰੇ ਆਪਣੀ ਚਿੰਤਾ ਪ੍ਰਗਟ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਕਾਮਰੇਡਾਂ ਦੀ ਕਾਰਜ ਸ਼ੈਲੀ ਤੇ ਵਿਅੰਗ ਕਰਦਾ ਹੈ ਜੋ ਕਿ ਲੈਨਿਨ ਦੀ ਸੋਚ ਤੇ ਚੱਲਣ ਦੇ ਦਾਅਵੇ ਕਰਦੇ ਸਨ ਤੇ ਰੂਸ ਨੂੰ ਆਪਣਾ ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਮੰਨਦੇ ਸਨ। ਕਾਮਰੇਡ ਕਰਮ ਸਿੰਘ ਦਰਸ਼ਨ ਸਿੰਘ ਨਾਲ ਸੁਪਨਮਈ ਅਵਸਥਾ ਵਿਚ ਗੱਲ ਕਰਦਾ ਹੋਇਆ ਕਾਮਰੇਡਾਂ ਤੇ ਤਨਜ ਕੱਸਦਾ ਹੈ ਤੇ ਉਨ੍ਹਾ ਦੀ ਆਪਸੀ ਖਿਚੋਤਾਣ ਵਿਚ ਰਾਹ ਤੋਂ ਭਟਕ ਜਾਣ ਬਾਰੇ ਗੱਲਾਂ ਕਰਦਾ ਹੈ।

ਨਾਟਕ ਦਾ ਦੂਜਾ ਅੰਕ ਸ਼ੁਰੂ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਪਹਿਲੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਵਿਚ ਦਲਬੀਰ ਅਤੇ ਕੁਲਜੀਤ ਦੇ ਯੂਨਾਨ ਪਹੁੰਚਣ ਅਤੇ ਟਰੈਵਲ ਏਜੰਟ ਗਰੇਵਾਲ ਦੁਆਰਾ ਦਿੱਤੀਆਂ ਖੱਜਲ ਖੁਆਰੀਆਂ ਦਾ ਜ਼ਿਕਰ ਹੈ। ਉਨ੍ਹਾ ਦੋਨ੍ਹਾ ਦੀ ਹਾਲਤ ਚਿੰਤਾਜਨਕ ਹੈ। ਬੇਗਾਨੇ ਦੇਸ਼ ਵਿਚ ਉਹ ਪਸ਼ੂਆਂ ਵਾਂਗੂੰ ਕੈਦ ਹਨ ਤੇ ਲੁਕ ਛਿਪ ਕੇ ਰਹਿ ਰਹੇ ਹਨ। ਪੁਲਿਸ ਦੀ ਛਾਪੇਮਾਰੀ ਦੇ ਡਰ ਕਾਰਨ ਏਜੰਟ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਰਿਹਾਇਸ਼ ਬਦਲ ਨ ਲਈ ਆਖਦਾ ਹੈ। ਗਰੇਵਾਲ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਅੱਗੇ ਭੇਜਣ ਲਈ ਹੋਰ ਪੈਸੇ ਮੰਗਦਾ ਹੈ ਉਹ ਬੇਵੱਸ ਅਤੇ ਪਰੇਸ਼ਾਨ ਹਨ।

ਦਲਬੀਰ ਨੂੰ ਉਸ ਉਤੇ ਬਹੁਤ ਗੁੱਸਾ ਆਉਂਦਾ ਹੈਪਰ ਕੁਲਜੀਤ ਉਸਨੂੰ ਰੋਕਦਾ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਬੇਗਾਨੇ ਮੁਲਕ ਵਿਚ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਕੋਈ ਵਾਲੀ ਵਾਰਸ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਦਲਬੀਰ ਸੁਪਨਮਈ ਅਵਸਥ ਵਿਚ ਆਪਣੀ ਮਾਂ ਨਾਲ ਗੱਲਬਾਤ ਕਰਦਾ ਹੈ ਤੇ ਪਿੰਡ ਵਾਪਸ ਆਉਣਾ ਚਾਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਪਰ ਮਾਂ ਉਸਨੂੰ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਮਿਹਣਿਆਂ ਤੋਂ ਡਰਦੀ ਅਜਿਹਾ ਕਰਨ ਤੋਂ ਵਰਜਦੀ ਹੈ ਸੂਤਰਧਾਰ ਤੇ ਉਸਦੀ ਟੋਲੀ ਇਸਨੂੰ ਗੀਤ ਰਾਹੀਂ ਪੇਸ਼ ਕਰਦੇ ਹਨ।

“ਲੋਕ ਭਾਵੇਂ ਇਕ ਮਨ ਮਾਂ ਦਾ, ਪਰ ਮਨ ਨੇ ਉਥੇ ਦੋ,
.... ਮਨ ਆਪਣੇ ਦੀ ਸਮਝ ਨਾ ਆਏ, ਮਾਂ ਰਹੀ ਨਾ ਰੋ!”[9]

ਦੂਜੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਵਿਚ ਦਰਸ਼ਨ ਸਿੰਘ ਜੋ ਕਿ ਕਾਮਰੇਡਾਂ ਦੀ ਸੋਚ ਦੇ ਉਲਟ ਆਪਣੇ ਪੁੱਤਰਾਂ ਕੋਲ ਸ਼ਹਿਰ ਰਹਿਣ ਚਲਾ ਗਿਆ ਸੀ।ਮਹੀਨੇ ਬਾਅਦ ਪਿੰਡ ਵਾਪਸ ਆਉਂਦਾ ਹੈ ਤੇ ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਨੂੰ ਮਿਲਦਾ ਹੈ ਜੋ ਕਿ ਪੁੱਤਰ ਅਤੇ ਦੋਸਤ ਦੇ ਦੂਰ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਇੱਕਲਾਪਣ ਮਹਿਸੂਸ ਕਰ ਰਿਹਾ ਸੀ। ਸਰਪੰਚ ਬਲਕਾਰਸਿੰਘ ਵੀ ਉਨ੍ਹਾਂ ਕੋਲ ਆਉਂਦਾ ਹੈ ਤੇ ਵਿਦੇਸ਼ ਦੀ ਸਿ ਫ਼ਤ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਆਪਣੇ ਪੁੱਤਰਾਂ ਦੇ ਨਿਕੰਮੇ, ਸ਼ਰਾਬੀ ਤੇ ਫਜ਼ੂਲ ਖਰਚੀ ਕਰਨ ਦੇ ਆਦੀ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਦੁਖੀ ਹੈ ਤੇ ਚਿੰਤਾ ਪ੍ਰਗਟ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਦਲਬੀਰ ਨਾਲ ਏਜੰਟ ਦੁਆਰਾ ਕੀਤੇ ਧੋਖੇ ਦਾ ਜਿਕਰ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਸਰਪੰਚ ਉਸਨੂੰ ਘਰ ਫ਼ੋਨ ਲਗਵਾਉਣ ਦੀ ਸਲਾਹ ਦਿੰਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਜੋ ਪੁੱਤਰ ਨਾਲ ਗਲਬਾਤ ਸੋਖੀ ਹੋ ਸਕੇ। ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਫਿਕਰਾਂ ਵਿਚ ਹੈ। ਉਸਨੂੰ ਕਾਮਰੇਡ ਦਰਸ਼ਨ ਸਿੰਘ ਦਾ ਸ਼ਹਿਰ ਚਲੇ ਜਾਣਾ ਵੀ ਦੁਖੀ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਦੂਜੇ ਪਾਸੇ ਮਨਜੀਤ ਕੌਰ ਆਪਣੇ ਪੁੱਤਰ ਦੇ ਵਿਦੇਸ਼ ਜਾਣ ਤੇ ਬਹੁਤ ਖੁਸ਼ ਹੈ ਤੇ ‘ਫਾਰਨ ਫਿਰ ਵੀ ਫਾਰਨ ਆ’ ਦੀ ਮਸਤੀ ਵਿਚ ਝੂਰੀ ਫਿਰਦੀ ਹੈ।

“ਸਾਡੇ ਪੁੱਤ ਦੀ ਹਰ ਕੋਈ ਸ਼ੋਭਾ ਕਰਦੈ ...ਹਾਂ ਹਰ ਕੋਈ ਸ਼ੋਭਾਕਰਦੈ ਮੇਰੇ ਪੁੱਤਰ ਦੀ ....
ਮੇਰੇ ਪੁੱਤਰ ਦੀ ਸ਼ੋਭਾ ਹੁੰਦੀ ਐ
ਤਾਂ ਮੇਰੀ ਸੋਭਾ ਹੁੰਦੀ ਐ !”[10]

ਤੀਸਰੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਵਿਚ ਬਾਹਰਲੇ ਮੁਲਕ ਦੇ ਕਿਸੇ ਹੋਟਲ ਦਾ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਹੈ ਜਿਥੇ ਦਲਬੀਰ ਕੁਲਜੀਤ ਨੂੰ ਜਲਦੀ ਉਥੋਂ ਨਿਕਲਣ ਲਈ ਆਖਦਾ ਹੈ। ਕਿਉਂਕਿ ਪੁਲਿਸ ਛਾਪੇਮਾਰੀ ਕਰ ਰਹੀ ਹੈ। ਉਸਨੂੰ ਪਤਾ

ਲੱਗਿਆ ਹੈ ਕਿ ਗਰੇਵਾਲ ਨਵੇਂ ਮੁੰਡੇ ਉਥੇ ਲਿਆਉਣਾ ਚਾਹੁੰਦਾ ਹੈ ਉਸਨੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਤੋਂ ਸਾਰੇ ਪੈਸੇ ਲੈ ਲਏ ਹਨ ਤੇ ਹੁਣ ਕਿਸੇ ਟਿਕਾਣੇ ਲਗਾਉਣ ਦੀ ਥਾਂ ਏਧਰ ਓਧਰ ਭਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ।

ਉਹ ਆਪਣੇ ਦੋਸਤ ਹਰਦੀਪ ਕੋਲ ਜਾਣ ਦੀ ਸਲਾਹ ਕਰਦੇ ਹਨ ਅਤੇ ਉਸਦੇ ਦੱਸੇ ਅਨੁਸਾਰ ਇਟਲੀ ਜਾਣ ਬਾਰੇ ਗੱਲਬਾਤ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਦੋਹਾਂ ਦੀਆਂ ਗੱਲਾਂ ਵਿਚੋਂ ਵਿਦੇਸ਼ ਦੀ ਧਰਤੀ ਤੇ ਰੁਲ ਰਹੇ ਪੰਜਾਬੀ ਨੌਜਵਾਨਾਂ ਦਾ ਜ਼ਿਕਰ ਆਉਂਦਾ ਹੈ। ਬੁਰੇ ਵਿਵਹਾਰ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਹੋਏ ਮਾਵਾਂ ਦੇ ਪੁੱਤਾਂ ਦੀਆਂ ਲਾਸ਼ਾਂ ਵੀ ਰੁਲ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ। ਟਰੈਵਲ ਏਜੰਟਾਂ ਦੇ ਧੋਖੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਸੁਪ ਨੇ ਚਕਨਾਚੂਰ ਕਰ ਦਿੰਦੇ ਹਨ ਚੰਗੀ ਜਿੰਦਗੀ ਦੀ ਤਲਾਸ਼ ਵਿਚ ਉਹ ਜਗ੍ਹਾ ਜਗ੍ਹਾ ਭਟਕਦੇ ਹਨ , ਸਟੇਜ ਤੇ ਤਿੰਨ ਟੋਲੀਆਂ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ ਇਕ ਗੈਰ ਕਾਨੂੰਨੀ ਭਾਰਤੀਆਂ ਦੀ ਦੂਜੀ ਖੁਸ਼ਹਾਲ ਵਿਦੇਸ਼ੀਆਂ ਦੀ ਤੇ ਤੀਸਰੀ ਰਲੇ ਮਿਲੇ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਹੈ ਉਹ ਗੀਤ ਰਾਹੀਂ ਆਪਣੇ-ਆਪਣੇ ਤਜ਼ਰਬੇ ਗਾ ਕੇ ਸੁਣਾਉਂਦੇ ਹਨ।

ਨਾਟਕ ਤੀਸਰੇ ਅੰਕ ਵਿਚ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ ਜਿਸਦੇ ਪਹਿਲੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਵਿਚ ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਦੇ ਘਰ ਦਾ ਦ੍ਰਿਸ਼ਹੈ। ਕੰਮ ਵਿਚ ਲੱਗੀ ਹੋਈ ਮਨਜੀਤ ਕੌਰ ਦਲਬੀਰ ਬਾਰੇ ਚਿੰਤਤ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਕਈ ਦਿਨਾਂ ਤੋਂ ਉਸਦੀ ਕੋਈ ਖ਼ਬਰ ਨਹੀਂ ਆਈ। ਦਲਬੀਰ ਲਈ ਕਿਸੇ ਚੰਗੇ ਘਰ ਦਾ ਰਿਸ਼ਤਾ ਆਇਆ ਹੈ ਪਰ ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਦਲਬੀਰ ਦੇ ਥਾਂ ਟਿਕਾਣੇ ਪਹੁੰਚਣ ਤੱਕ ਰੁਕਣਾ ਚਾਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਫਿਰ ਕਾਮਰੇਡ ਦਰਸ਼ਨ ਸਿੰਘ ਦਾ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਹੁੰਦਾ ਹੈ , ਦਲਬੀਰ ਉਸਦੇ ਨਾਲ ਹੈ। ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਤੇ ਮਨਜੀਤ ਕੌਰ ਉਸਦੇ ਅਚਾਨਕ ਆਉਣ ਤੇ ਹੈਰਾਨ ਹੁੰਦੇ ਹਨ ਤੇ ਖੁਸ਼ ਵੀ। ਮਨਜੀਤ ਆਪਣੇ ਪੁੱਤਰ ਦੇਖ ਕੇ ਭਾਵੁਕ ਹੁੰਦੀ ਹੋਈ ਉਸਦਾ ਚਿਹਰਾ ਪਲੋਸਦੀ ਹੈ। ਉਹ ਦਰਸ਼ਨ ਸਿੰਘ ਨਾਲ ਦਲਬੀਰ ਦੇ ਵਿਆਹ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰਦਾ ਹੈ ਪਿੱਠਭੂਮੀ ਤੇ ਗੀਤ ਦੇ ਬੋਲ ਉਭਰਦੇ ਹਨ

“ਸ਼ਗਨ ਮਨਾਵਾਂ, ਵਾਰੀ ਜਾਵਾਂ।
ਪੁੱਤਰ ਘਰ ਆਇਆ ਪੁੱਤਰ ਘਰ ਆਇਆ।
ਏਸ ਪੁੱਤਰ ਦੀਆਂ ਲਵਾਂ ਬਲਾਵਾਂ, ਵਾਰੀ ਜਾਵਾਂ
ਪੁੱਤਰ ਘਰ ਆਇਆ, ਪੁੱਤਰ....।”[11]

ਦ੍ਰਿਸ਼ ਬਦਲਦਾ ਹੈ ਮਨਜੀਤ ਕੌਰ ਸੁਪਨਮਈ ਅਵਸਥਾ ਵਿਚ ਦਲਬੀਰ ਦੇ ਵਿਆਹ ਬਾਰੇ ਸੋਚ ਰਹੀ ਹੈ। ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਮਠਿਆਈ ਲੈ ਕੇ ਆਉਂਦਾ ਹੈ। ਮਨਜੀਤ ਕੌਰ ਦਲਬੀਰ ਨਾਲ ਵਿਆਹ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰਦੀ ਹੈ ਪਰ ਉਹ ਮਨ੍ਹਾ ਕਰ ਦਿੰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਦੌਰਾਨ ਦਰਸ਼ਨ ਸਿੰਘ ਗੁਰਬਚਨ ਸਿੰਘ ਅਤੇ ਦਲੀਪ ਕੌਰ ਨਾਲ ਆਉਂਦਾ ਹੈ ਜੋ ਕਿ ਦ ਲਬੀਰ ਨਾਲ ਆਪਣੀ ਧੀ ਦਾ ਰਿਸ਼ਤਾ ਪੱਕਾ ਕਰਨ ਆਏ ਹਨ। ਉਹ ਦਲਬੀਰ ਨਾਲ ਵਿਦੇਸ਼ ਦੇ ਕੰਮਾਂ ਕਾਰਾਂ ਦੀਆਂ ਗੱਲਾਂ ਕਰਦੇ ਹੋਏ ਕੁੜੀ ਵੇਖਣ ਨੂੰ ਆਖਦੇ ਹਨ। ਦਲਬੀਰ ਅੰਦਰੋਂ ਅੰਦਰੀ ਚਿੰਤਾ ਵਿਚ ਹੈ ਅਤੇ ਆਪਣੇ ਵਾਪਸ ਆਉਣ ਤੇ ਝੁਰਦਾ ਹੋਇਆ ਵਿਆਹ ਨਾ ਕਰਾਉਣ ਤੇ ਅੜ੍ਹਿਆ ਹੋਇਆ ਹੈ।

ਤੀਸਰੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਵਿਚ ਮਾਤਾ-ਪਿਤਾ ਦੇ ਵਾਰ-ਵਾਰ ਪੁੱਛਣ ਤੇ ਦਲਬੀਰ ਦੱਸਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਦੁਬਾਰਾ ਵਾਪਸ ਨਹੀਂ ਜਾ ਸਕਦਾ ਕਿਉਂਕਿ ਉਸਦੇ ਪਾਸਪੋਰਟ ਤੇ ਉਥੋਂ ਦੀ ਸਰਕਾਰ ਨੇ ਡਿਪੋਰਟ ਦੀ ਮੋਹਰ ਲਗਾ ਦਿੱਤੀ ਹੈ। ਉਹ ਆਪਣੇ ਨਾਲ ਏਜੰਟਾਂ ਦੁਆਰਾ ਕੀਤੀਆਂ ਠੱਗੀਆਂ-ਠੋਰੀਆਂ ਬਾਰੇ ਦੱਸਦਾ ਹੈ ਸਾਰੀ ਆਪ ਬੀਤੀ ਸੁਣਾਉਂਦਾ ਹੈ।ਉਹ ਬਾਹਰਲੇ ਦੇਸ਼ ਜਾ ਣ ਨੂੰ ਕਾਲੇ ਪਾਣੀ ਦੀ ਸ ਜ਼ਾ ਦੱਸਦਾ ਹੋਇਆ ਰੋ ਪੈਂਦਾ ਹੈ। ਨਾਟਕ ਸਿਖਰ ਵੱਲ ਵੱਧਦਾ ਹੈ। ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਆਪਣੇ ਖੇਤਾਂ ਦੇ ਕੱਲਰ ਭੰਨਣ ਅਤੇ ਦਿਨ -ਰਾਤ ਮੇਹਨਤਾਂ ਕਰਨ ਦੀਆਂ ਗੱਲਾਂ ਕਰਦਾਹੈ। ਉਹ ਦਲਬੀਰ ਨੂੰ ਆਖਦਾ ਹੈ ਕਿ ਜਾ ਕੇ ਧੱਕੇ ਖਾਣ ਨਾਲੋਂ ਆਪਣੇ ਦੇਸ਼ ਆਪਣੀ ਧਰਤੀ ਰਹਿ ਕੇ ਮੇਹਨਤ ਕਰਕੇ ਚੰਗੀ ਰੋਟੀ ਖਾਧੀ ਜਾ ਸਕਦੀ ਹੈ। ਕਿਸਮਤ ਦਾ ਮਾਰਿਆ ਦਲਬੀਰ ਆਖਦਾ ਹੈ :

> “ਤੁਸੀਂ ਕਿਸਮਤ ਵਾਲੇ ਓ ਭਾਅ ਜੀ.... ਕਿਸਮਤ ਵਾਲੇ:
> ਤੁਹਾਨੂੰ ਇਹ ਤਾਂ ਪਤਾ ਲੱਗ ਗਿਆ ਕਿ ਤੁਸੀਂ ਕੱਲਰ ਭੰਨਣਾ
> ਏ ਤੇ ਤੁਸੀਂ ਕੱਲਰ ਭੰਨ ਵੀ ਲਿਆ... ਮੈਨੂੰ ਤੇ ਇਹ ਵੀ
> ਨੀ ਪਤਾ ਕਿ ਮੈਂ ਕੀ ਕਰਨਾ ਏ।.... ਮੇਰੇ ਅੰਦਰ
> ਵੀ ਕੱਲਰ ਲੱਗ ਗਿਆ ਹੈ.... ਤੇ ਉਹ ਕਦੇ ਨਹੀਂ
> ਭੱਜਣਾ....”[12]

ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਉਸਨੂੰ ਹੌਂ ਸਲਾ ਦਿੰਦਾ ਹੋਇਆ ਖੇਤਾਂ ਵਿਚ ਉਸਦੇ ਮੋਢੇ ਨਾਲ ਮੋਢਾ ਲਗਾ ਕੇ ਕੰਮ ਕਰਨ ਲਈ ਆਖਦਾ ਹੈ। ਸਮੂਹ ਗਾਣ ਦੇ ਇਕ ਆਸ਼ਾਵਾਦੀ ਸੁਨੇਹੇ ਨਾਲ ਨਾਟਕ ਖਤਮ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਨਾਟਕ ਦਾ ਸਮੁੱਚਾ ਅਧਿਐਨ ਕਰਨ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਇਹ ਸਪੱਸ਼ਟ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਅਜੋਕੀ ਨੌਜਵਾਨ ਪੀੜ੍ਹੀ ਆਪਣੇ ਵੱਡੇ -ਵੱਡੇ ਸੁਪਨਿਆ ਦੀ ਭਾਲ ਵਿਚ ਬੇਚੈਨੀ ਅਤੇ ਭਟਕਣਾ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਹੋ ਚੁੱਕੀ ਹੈ। ਜਦੋਂ ਉਸਦੇ ਸੁਪਨੇ ਪੂਰੇ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੇ ਤਾਂ ਉਹ ਤਨਾਅ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਹੋ ਕੇ ਗਲਤ ਕਦਮ ਚੁੱਕ ਲੈਂਦੇ ਹਨ। ਦੂਜੇ ਪਾਸੇ ਗੁਰਦਿਆਲ ਸਿੰਘ ਵਰਗੇ ਪੁਰਾਣੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਦੇ ਬੰਦੇ ਹਰ ਸਮੇਂ ਮੇਹਨਤ ਕਰਨ ਵਿਚ ਭਰੋਸਾ ਰੱਖਦੇ ਹਨ ਤੇ ਸਾਰੀ ਉਮਰ ਸਹਿਜ ਬਣਾਈ ਰੱਖਦੇ ਹਨ। ਉਹ ਹਰ ਸਥਿਤੀ ਵਿਚ ਅਡੋਲ ਰਹਿ ਕੇ ਕੰਮ ਕਰਦੇ ਹਨ ਤੇ ਕਦੇ ਹਿੰਮਤ ਨਹੀਂ ਹਾਰਦੇ।

ਹਵਾਲੇ

1. ਸਵਰਾਜਵੀਰ, ਕੱਲਰ, ਪੰਨਾ: 8
2. ਓਹੀ, ਪੰਨਾ : 16
3. ਓਹੀ, ਪੰਨਾ : 17
4. ਓਹੀ, ਪੰਨਾ : 43
5. ਓਹੀ, ਪੰਨਾ : 32
6. ਓਹੀ, ਪੰਨਾ : 39
7. ਓਹੀ, ਪੰਨਾ : 46
8. ਓਹੀ, ਪੰਨਾ : 85
9. ਓਹੀ, ਪੰਨਾ :67
10. ਓਹੀ, ਪੰਨਾ :76
11. ਓਹੀ, ਪੰਨਾ : 57
12. ਓਹੀ, ਪੰਨਾ : 98

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 134–139

भूमंडलीकरण, सांप्रदायिकतावाद एवं युद्ध की विभीषिका : आधुनिक जीवन की त्रासदी

डॉ. रीना कुमारी
सहायक प्रोफेसर, विभागाध्यक्षा हिंदी विभाग, दसमेश गर्ल्स महाविद्यालय, मुकेरियां।

बीसवीं सदी ऐतिहासिक रूप से कई व्यापक और युगांतकारी घटनाक्रम की साक्षी रही है। इस कालखंड में पैदा होने वाले सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक घटनाक्रम ने राष्ट्रों को कई स्तरों पर गहराई से प्रभावित किया तथा वैश्विक परिदृश्य को उद्वेलित किया। इसमें जाति विरोधी आंदोलन, साहित्य में आधुनिक मूल्यबोध का प्रवेश, उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रीय संघर्ष और विश्व युद्ध आर्थिक उठापटक, फासिज्म का उभार, शीतयुद्ध जैसी घटनाएं शामिल थीं। पश्चिम के वर्चस्व वाले उपनिवेशित राष्ट्रों ने साम्राज्यवाद से मुक्ति का स्वप्न देखा और इसे साकार भी किया। भारत, चीन ,रूस जैसे देश विश्वपटल पर एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उभरे। भौगोलिक रूप से यह तीनों देश एशिया महाद्वीप में अवस्थित थे। यह उपनिवेशवाद, सामंतवाद के विरुद्ध एशियाई जनमानस के संघर्षों का प्रतिफलन था। बीसवीं सदी प्रथम विश्वयुद्ध, द्वितीय विश्वयुद्ध की भयावह परिणीतियों, भारत–पाक विभाजन के कारण अब तक के सबसे बड़े विस्थापन नरसंहार की गवाह बनी।

पश्चिमी उपनिवेशवाद की ढलान और उसकी जगह लेते हुए नए अमरीकी वर्चस्व ने नई विचारधाराओं को जन्म दिया जिसे कालांतर में नव–उपनिवेशवाद के नाम से जाना गया। "भूमंडलीकरण' को खगोलीकरण, वैश्वीकरण, जगतीकरण, ग्लोबीकरण, विशवायन की संज्ञा से अभिहित किया जाता जाता है। 'भूमंडलीकरण' अंग्रेजी भाषा के 'ग्लोबलाइजेशन' शब्द का हिंदी अनुवाद है। भूमंडलीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत विभिन्न राष्ट्रों का एक दूसरे के साथ आर्थिक एकीकरण होता है। आर्थिक परियोजना संबंधी पहलू से इसे 'भूमंडलीकरण' भी कहा गया है।' मंडीकरण' शब्द भूमंडलीकरण शब्द का रोचक और रचनात्मक अर्थपूर्ण परिभाषीकरण है। जिसका अर्थ है कि संपूर्ण 'भू' (पृथ्वी, दुनिया) का 'मंडीकरण' अर्थात् पूरे थीसिस में अर्थात् ग्लोबल बाजार के रूप में दुनिया की एकाश्मक निर्मिति।"[1]

भूमंडलीकरण के तीन चरण रहे :–

1. सन् 1870 से 1913। इसमें सरकार उत्पाद, श्रम और पूंजी के संचलन में हस्ताक्षेप नहीं करती थी। यह ब्रिटिश उपनिवेशवाद का समय रहा।
2. सन् 1970
3. सन् 1990

आज के विमर्श का केंद्रीय बिंदु तीसरा चरण है। भारत के संदर्भ में भूमंडलीकरण दो चरणों में बंटा। पहला उपनिवेशवाद के साथ शुरू होने वाला, बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में शुरू होने वाला भूमंडलीकरण। भूमंडलीकरण की विशेष चर्चा सन् 1990 ई. के बाद की वैश्विक आर्थिक परिस्थितियों के लिए विशेष तौर पर की जाती है। यह वह समय रहा जब द्विध्रुवीय विश्व का) दो शक्तिशाली केन्द्रों (अमरीका–सोवियत संघ) में से एक सोवियत संघ का विघटन हुआ अर्थात् अमरीका महाशक्ति के रूप में विश्व की इकलौती ताकत बन गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वैश्विक पटल पर ब्रिटिश उपनिवेशवाद की चुनौती खत्म हो गई थी। यूरोप के कई शहर तबाह हो गए थे। 'अमरीकी डॉलर' केंद्रीकृत भूमिका ग्रहण करने वाला था। सन् 1944 ई. में ब्रेटनबूईस अमरीका में एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें नव उपनिवेशीकरण की दो महत्वपूर्ण संस्थाओं, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक की नींव रखी गई। पूंजी का चरित्र सदा ही भूमंडलीय रहा। रणधीर सिंह का कहना है कि "पूंजीवाद अपने आरंभ से ही एक भूमंडलीय व्यवस्था की तरह रहा है। एडम स्मिथ इस बात को बखूबी जानते थे और आप स्वयं कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो में इस तथ्य की तीक्ष्ण और बिल्कुल सटीक शब्दों में भविष्यवाचक अभिव्यक्ति पाएंगे, जहां मार्क्स ने लिखा है कि कैसे 'अपने माल के लिए बराबर प्रसारित होते बाजार की जरूरत के कारण बुर्जुआ वर्ग दुनिया के कोने–कोने की खाक छानता है, कैसे यह हर जगह घुसने को, हर जगह पैर जमाने को, हर जगह संपर्क कायम करने को बाध्य रहता है, कैसे इसने भूमंडलीय बाजार स्थापित किया और विश्व बाजार को अपने लाभ के लिए इस्तेमाल कर हर देश में उत्पादन और खपत को एक सार्वभौम रूप दे दिया है।"[2] ज्ञात होता है कि ब्रिटिश अर्थशास्त्री एडम स्मिथ ही अहस्ताक्षेप सिद्धांत के आरंभिक प्रस्तोता थे और इस सिद्धांत का प्रतिपादन ऐसे समय पर किया गया जब ब्रिटेन के औद्योगीकृत समाज को अपने अधिक उत्पादन के लिए नए बाजारों की आवश्यकता पड़ी। 'व्यापार की मुक्ति' के इस सिद्धांत ने भारत जैसे औद्योगिक रूप से पिछड़े देश का जमकर आर्थिक दोहन किया और यहां के व्यापार की स्वाभाविक विकास प्रक्रिया को गंभीर हानि पहुंचाई और तथाकथित मुक्ति को एक औजार, एक युक्ति की तरह इस्तेमाल किया गया। साम्राज्यवाद की तरह भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में भी पूंजी का अप्रतिहत संरक्षण निहित था।

"पूंजीवाद का यह शोषक संरचनात्मक तर्क आज उस समय से ज्यादा कार्यकारी और सक्रिय है, आज दुनिया पहले से ज्यादा पूंजीवादी है और यह एक ऐसी सच्चाई है, जिसे बुर्जुआ विचारधारा भूमंडलीकरण के नाम पर मिथक निर्माण करके झुठलाना चाहती है।"[3] सुरिचित कथाकार प्रभु जोशी ने भूमंडलीकरण की आलोचना करते हुए अपने एक लेख का शीर्षक रखा है– 'शल्य क्रिया के शिल्प में वध।"[4] यह शीर्षक बड़े ही रचनात्मक ढंग से भूमंडलीकरण के चरित्र की व्यंजना करता है। उत्पादन की अधिकता और क्रय शक्ति में कमी के चलते उत्पादन की बिक्री में गिरावट होने लगती है। इससे अर्थव्यवस्था में मंदी आने लगती है। मंदी को कार्ल मार्क्स ने पूंजीवाद का और असमाधेय संकट कहा है, जो हरदम पूंजीवाद का पीछा करता रहता है। इस मंदी के निदान के लिए कल्याणकारी राज्य की बात कही गई। भूमंडलीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत पूंजी, निवेश, वित्त एवं सेवाओं का एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में बिना किसी बाधा के संचरण विश्व का आर्थिक एकीकरण निहित है और इसके लिए 'कल्चरल इकोनामी' एक उपयोगी युक्ति है। कल्चरल इकोनॉमी के अंतर्गत सूचना, संचार, फिल्म–संगीत और साहित्य के जरिए अधोरचना में सेंध लगाते हैं और फिर धीरे–धीरे उसे ध्वस्त कर देते हैं। नव उपनिवेशवाद के शिल्पकार कहते हैं, "नाऊ वी डोंट एंटर अ कंट्री विथ गन बोट्स, रादर विथ लैंग्वेज एंड

कल्चर।"[5] भूमंडलीकरण ने समाज को सुंदर और सौहार्दपूर्ण बनाने के बदले उसे और अधिक विश्रृंखल बना दिया है।

भूमंडलीकरण और सांप्रदायिकता का अंतर्संबंध :-

भारत में सांप्रदायिकता की समस्या चिंतनीय है। इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र आदि में इसकी प्रकृति, स्वरूप और उद्‌भव पर विचार विमर्श होता है। वर्तमान समय में इसका फैलाव वैश्विक है। सांप्रदायिकता की समस्या के कारण ही भारत–पाक विभाजन हुआ, जिसके कारण हुए विस्थापन को विश्व का सबसे बड़ा विस्थापन माना जाता है। 21वीं सदी की दूसरी दहाई तक यह विभाजन का मुद्दा राजनीति का 'Buzz Word' बना हुआ है। भारत में घटित हुए सांप्रदायिक विस्थापन और नरसंहारों की यथार्थ आलोचनात्मक अभिव्यक्ति भीष्म साहनी के उपन्यास 'तमस', राही मासूम रजा के उपन्यास 'आधा गांव' यशपाल के उपन्यास 'झूठा सच' जैसे महत्वपूर्ण उपन्यासों में हुई।' "सांप्रदायिक' या सांप्रदायिकता शब्द 'संप्रदाय' से बना है। इसका अर्थ है– किसी धर्म, मत को मानने वाले अनुयायियों का समूह या मंडली।"[6] सांप्रदायिकता का उद्‌भव 19वीं शताब्दी से माना जाता है, जब भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के समय व्यापारिक ईस्ट इंडिया कंपनी से महारानी विक्टोरिया का शासन था। सांप्रदायिकता का उद्धव मध्यकाल में हुआ, तब सांप्रदायिकता इस्लाम मतावलंबी राजन्य वर्ग और हिंदू प्रजा के पारस्परिक द्वंद्व का परिणाम थी।

भूमंडलीकरण ने अपने उत्पादों व उनकी बिक्री की सहूलियत के लिए निर्मित संस्कृति के अनुसार एक ऐसी उपभोक्ता संस्कृति विकसित की, जिसमें दैनंदिन का आचरण एकसार बनाने की कोशिश की गई। भूमंडलीकरण और सांप्रदायिकता दोनों के प्रवक्ता इसे जनकल्याण के लिए प्रस्तुत करते रहे। हिंदू–बहुसंख्यकवाद ने राजनीति में अल्पसंख्यकों का अन्य करण करके एक विराट सांप्रदायिक मानसिकता व माहौल को जन्म दिया, जिसकी परिणिति 1992 में बाबरी मस्जिद ध्वंस और 2002 के दंगों में हुई। भारत विभाजन पर उपन्यास लिखे गए। सांप्रदायिकतवाद की मनःस्थिति को अजय सिंह की कविता 'खिलखिल को देखते हुए गुजरात' में लक्षित किया जा सकता है–

"खिलखिल
तुम्हें किस नाम से पुकारा जाए
तुम्हें कौन सी पहचान दी जाए
कि तुम सही–सलामत रहो
कोई अलाय–बलाय ना आए
कोई तलवार त्रिशूल भाला चाकू, पेट्रोल बम
लेकर तुम्हें मरने के लिए दौड़ा ना ले।"[7]

सांप्रदायिकता इस दौर में अधिक नियोजित बाजार शक्तियों द्वारा अनुमोदित और संपोषित राज्य द्वारा बहुदा प्रायोजित तथा सूचना और संचार क्रांति के उपकरणों से लैस है। बाजारवाद से जन्मा मनुष्य वर्तमान में जीता है। भारत जैसे विकासशील देश में आर्थिक मनुष्य के रूप में नौजवानों का ढलना उनके भीतर बनावटी स्मृति और स्वप्न के प्रतिरूपण बनाता है। सांप्रदायिक ताकतें उनके भीतर ऐसी स्मृतियों को शिक्षा एवं सामाजिक विमर्शों के माध्यम से प्रतिरोपित करने में सफल हुई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् पैदा होने वाली पीढ़ियां

विभाजन संबंधी सांप्रदायिक वारदातों से अनभिज्ञ रही। वे न साक्षी थे, न भोक्ता। केवल बनावटी कल्पनाएं ही उन तक पहुंची। भूमंडलीकरण के दौर में सामाजिक असुरक्षा, आर्थिक असमानता, नैतिक मूल्यों में गिरावट आना जैसी कुप्रवृत्तियों का बोलबाला रहा। हिंदू–मुस्लिम द्वंद्व हुए। सांप्रदायिकता भूमंडलीयकृत भारत की वास्तविक समस्याओं के काल्पनिक समाधान और निदान से प्रेरित है। शमशेर की 'धार्मिक दंगों की राजनीति' शीर्षक कविता उनके संकलन 'कल तुझसे होड़ है मेरी' सन् 1988 में प्रकाशित है, जिसमें सांप्रदायिकता और राजनीति के गठजोड़ और उसके वैश्विक राजनीतिक आयामों की तरफ साफ–साफ इशारा मिलता है :–

"जो धर्म के अखाड़े हैं
उन्हें लड़वा दिया जाए!
जरूरत क्या के हिंदुस्तान पर
हमला किया जाए !!"
"ये मनसूबा है–
दक्षिण एशिया में
धर्म का चक्कर.....
चले!.. और बौद्ध
हिंदू, सिक्ख, मुस्लिम में रहे टक्कर!"[8]

मंगलेश डबराल की कविता भूमंडलीकरण मनुष्य की बाजार में खुशी तलाशने की प्रवृत्ति का परिचय करवाती है :–

"कहीं से तुरंत कोई खुशी खोजकर ले आते हैं
उसे अपने पास जमा कर लेते हैं जैसे वह सिर्फ उनके लिए हो
बहुत सारे कपड़े, जूते पहन लेते हैं, बहुत सा खाना खा लेते हैं
एक महंगा मोबाइल निकालते हैं अपने अश्लील संदेशों के साथ
दंगों में मारे गए लोगों के घरों से टेलीविजन उठा कर ले आते हैं
तांकि जारी रह सके मनोरंजन।"[9]

चंद्रकांत देवताले की कविता 'चीजों का असह्य गंजापन', 'कैसा पानी, कैसी हवा, अरुण कमल की कविता 'वित्त मंत्री के साथ नाश्ते के मेज पर' 'चक्र', 'अर्घ्य', लीलाधर जगूड़ी की कविता 'उसकी खुशी' 'विज्ञापन सुंदरी' आदि कविताएं स्थानिक संस्कृति के पतन और अपसंस्कृति की प्रभुता के पद चिन्हों पर एक रचनात्मक पदाघात दर्शाती है। यह धन की संस्कृति की आलोचना है। पूंजी के समाज की गहराई में फैल जाना और शोषण की संस्कृति का विस्तार ही नव उपनिवेशवाद का चमत्कार है। दिनेश कुमार शुक्ल अपनी कविता 'आगमन' में लिखते हैं :–

"जंगी बेड़ों पर नहीं,
न तो दर्रा–खैबर से
आएंगे इस बार तुम्हारे भीतर से वे
धन–धरती ही नहीं

तुम्हारा मर्म तुम्हारे सपने भी वे छीनेंगे इस बार,
ना तुम सबके रक्त पसीने और आंसुओं
का बदलेंगे रंग
तुम्हारी दृष्टि, तुम्हारा स्वाद
तुम्हारी खाल
तुम्हारी चाल ढाल का भी बदलेंगे रंग
बीजों के अंकुरण
और जीवों के गर्भाधान
नियंत्रित होंगे उनके कानूनों से
तुम्हें पता ही नहीं
तुम्हारी कविता में वे
पहले से ही घोल चुके हैं
अपने छल के छंद।"[10]

डिजिटल तकनीकी के बाजारवादी संजाल को दिखाई विश्व ग्राम कविता में राम दर्शन 'विश्व ग्राम' लिखते हैं कि

"लेकिन यह मोबाइल है कि
मुझे नए–नए सामानों के सपना दिखाता रहता है
नए–नए उपहार के जाल में फंसाना चाहता है।"[11]

भूमंडलीकरण द्वारा फैलाए गए बाजारवाद और सांप्रदायिकता से उसके संबंध पर इस धारा की कविता ने ठीक–ठाक नजर बनाए रखी है। सांप्रदायिकता शब्द का संबंध संप्रदाय से है। यह पूरे संप्रदाय को 'Homogenous Identity' मानती है तथा समाज के अंदर व्याप्त विविध प्रकार के विभाजन मानने से इंकार करती है। यह क्रूर और राजनीतिक तरीके से नियोजित होती है, जो मानवीय भावबोध, संवेदना, करुणा आदि को भी नष्ट कर देती है। भूमंडलीकरण की हिंसक, मुनाफाखोर संस्कृति मनुष्य को संवेदनहीन बनाकर 'वस्तु' (उत्पाद) में तब्दील कर देती है और उसकी मनुष्यता को समाप्त कर देती है। व्यवसायिकता की संस्कृति में मनुष्य को ढालने के लिए सांप्रदायिकता एक सरल रास्ता बन जाती है। यह धर्म को आधार बनाकर आगे बढ़ती है। कार्ल मार्क्स ने कहा है, "धार्मिक पीड़ा एक साथ वास्तविक पीड़ा, अभिव्यक्ति और वास्तविक दुःखों का प्रतिकार है..... यह आत्महीन परिस्थितियों की आत्मा है।"[12]

भूमंडलीकरण और सांप्रदायिकता के कारण युद्ध की समस्या उत्पन्न हो जाती है। रूस और यूक्रेन के युद्ध के भयंकर परिणाम दोनों देशों की जनता को भुगतने पड़ रहे हैं। इसी तरह से हाल ही में भारत और पाकिस्तान में होने वाले युद्ध में भी परिणाम आम जनता को ही भुगतने पड़ रहे हैं। युद्ध कभी भी किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। नयायोचित अधिकारों की प्राप्ति हेतु होने वाला युद्ध पाप नहीं, पुण्य है। अत्याचारी के विरुद्ध युद्ध आवश्यक हो जाता है अन्यथा वह इसको कायरता समझकर अन्याय में धंसता जाता है। समाज में यह अशांति और संघर्ष का कारण बनता है पर विश्व शांति स्थापना हेतु कई बार युद्ध अनिवार्य हो जाता है।

मनुष्य सृष्टि का श्रेष्ठतम जीव है, ज्ञान–विज्ञान का आगार है। मनुष्य आज विध्वंस में लगा हुआ है। जापान के हिरोशिमा व नागासाकी पर अणु बम गिराकर दिल दहला देने वाले परिणाम देखने के बाद भी मनुष्य संभल नहीं रहा है। भविष्य में सरकारों का हथियारों के जखधिरे पर अधिकार देखकर चिंताजनक स्थिति उत्पन्न होती है, क्योंकि एक तरफ जहां स्वत्व की प्राप्ति हेतु युद्ध अनिवार्य है, वहीं दूसरी ओर क्षमा, सद्भावना व विश्व मैत्री की शुभेच्छा है।

"श्रेय होगा मनुज का समता विधायक ज्ञान,
स्नेहा–सिंचित न्याय पर नव विश्व का निर्माण,
एक नर से अन्य का निःशंक दृढ़ विश्वास,
धर्मदीप्त मनुष्य का उज्ज्वल नया इतिहास।"
अहिंसा और शांति लड़ाई ना करने से कहीं बेहतर विकल्प है।"

पुस्तक संदर्भ सूची :-

1. रविभूषण, 'भूमंडलीकरण और हिंदी कविता' समकालीन जनमत, संपा. सुधीर सुमन, जुलाई–सितंबर 2002, पटना, पृष्ठ सं. 56
2. रणधीर सिंह, मार्क्सवाद, समाजवाद और भारतीय राजनीति, अनुवादक– जितेंद्र गुप्ता, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम हिंदी संस्करण 2002, पृष्ठ संख्या 205
3. वही, पृष्ठ सं. 204
4. प्रभाकर श्रोतिय, अतिथि संपा. समकालीन भारतीय साहित्य, भूमंडलीकरण विशेषांक जुलाई–अगस्त, 2011, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या. 15
5. प्रभु जोशी, शल्य क्रिया के शिल्प में वध, समकालीन भारतीय साहित्य, भूमंडलीकरण विशेषांक, अतिथि संपा. प्रभाकर श्रोतिय, जुलाई– अगस्त 2011, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 15
6. संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर, संपा. रामचंद्र वर्मा, नागरी प्रचारणी जनमत, संपा. सुधीर सुमन, अक्तूबर–दिसंबर 2002, पटना, पृष्ठ. संख्या–55
7. शमशेर बहादुर सिंह, काल तुझसे होड़ है मेरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण– 2002, पृष्ठ संख्या 30–32
8. समकालीन भारतीय साहित्य, अतिथि संपा. प्रभाकर श्रोतिय, भूमंडलीकरण विशेषांक, जुलाई–अगस्त 2011, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 29
9. प्रोफेसर विपिन चंद्र व अन्य, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हि. मा. का. निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, प्रथम संस्करण 1990, 40वां पुनर्मुद्रण सितंबर 2015, पृष्ठ संख्या 386
10. समकालीन भारतीय साहित्य, अतिथि संपा. प्रभाकर श्रोतिय, जुलाई–अगस्त 2011, नई दिल्ली, पृष्ठ 43
11. वही, पृष्ठ संख्या 91
12. गिरधर राठी, दिसंबर का पाप, अयोध्या और उसके बाद, संपा. राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1993, तीसरा संस्करण 2006, पृष्ठ. संख्या– 21

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 140–146

A Survey Paper on Depression Detection among Elderly People Using Automated Machine Learning

Shifa Anjum, Assistant Professor
Sajida Nazneen, Assistant Professor
Bachelor of Computer Application, Krupanidhi College of Commerce and Management.

Abstract :

Depression is a massively growing disease that is growing among many people mostly affecting the children and the elderly people. Many elder people are suffering from depression due to the lack of care and love from the family.

We can use Machine Learning Techniques to identify and diagnose the disease among elderly people so that they can recover from depression and can have a healthy life. In this paper we can conclude that we can use automated Machine learning Techniques like supervised machine learning to detect and diagnose depression among elderly people.

Keywords : AutoML, Depression Detection, Elderly People.

I.INTRODUCTION :

Mental Health Disorder like Depression is common among many people today including the children and the elderly people. Most of the elder people sometimes after the death of their partner will prone to feel lonely and alone which eventually leads to depression and some elderly may be addicted to social media for affection and may ultimately suffer from this disorder. In many families both the husband and wife may be working so they may not be able to take care of the elders so they think they may be neglected and they will not follow proper diet and will lead to depression. So there must be some means to detect the disease early so it can be diagnosed earlier.

We can use the supervised machine learning techniques like classification to classify the elderly people who are prone to depression.

II. FORMULATION OF PROBLEM :

The formulation of the problem for depression detection using machine learning involves defin-ing the problem statement, identifying the target population, and specifying the input and output of the system. Here is a general formulation of the problem for depression detection using ma-chine learning.

A. Problem Statement :

The problem statement for depression detection using machine learning is to develop a system that can accurately identify individuals who are at risk of depression based on a set of features extracted from patient data.

B. Target Population :

The target population for the system is individu-als who are at risk of depression, including those with a history of depression, individuals with chronic illnesses, and individuals experiencing significant life stressors.

C. Input :

The input for the system includes a set of fea-tures extracted from patient data, which may include demographic information, medical his-tory, lifestyle factors, and psychosocial factors. The input may also include data from mental health assessments, such as questionnaires or interviews.

D. Output :

The output of the system is a prediction of whether the individual is at risk of depression based on the input features. The output may be a binary classification (e.g., depressed/not de-pressed) or a continuous score that indicates the likeli-hood of depression. The formulation of the problem for depression detection using machine learning is an algorithm to analyze electronic health records (EHRs) and identify patterns that may indicate depression. For example, a study by Chen et al. (2017) used ML algorithms to analyze EHR data from 8,205 patients and iden-tified specific clinical features, such as sleep disturbance and antidepressant medication use, that were associated with depression.

IV. SYSTEM DESIGN :

Designing a depression detection system using machine learning involves several components, including data collection, data preprocessing, feature extraction, model training, and model evaluation. Here's a general system design for depression detection using ML.

A. Data Collection :

The first step is to collect data that will be used to train the depression detection model. This can include data from electronic medical records, patient surveys, and other sources. It is im-portant to ensure that the data is properly anon-ymized and that any patient information is kept confidential.

B. Data Preprocessing :

Once the data is collected, it must be prepro-cessed to prepare it for use in the machine learning model. This can include steps such as data cleaning, data transformation, and data normali-zation.

C. Feature Extraction :

After preprocessing, the data must be trans-formed into a set of features that can be used to train the machine learning model. The features can be extracted using statistical techniques or machine learning algorithms.

D. Model Training :

After extracting the features from the data, the machine learning model undergoes training. The process involves selecting a suitable algorithm, defining hyperparameters, and dividing the data into training and validation sets. The model is then trained using the training data, enabling it to learn from the input and generalize its predic-tions.

E. Model Evaluation :

Once the training of the model is completed, the next step is evaluating its performance. There are various metrics available to measure the ef-fectiveness of the model, including accuracy, precision, recall, and F1 score. These metrics assist in determining how well the model per-forms in making predictions and identifying its strengths and weaknesses.

F. Deployment :

After the model is trained and evaluated, it can be deployed in a production environment. This can involve integrating the model into an appli-cation or service that can be used by clinicians or patients to screen for depression.

V. MATHEMATICAL MODEL :

A mathematical model for depression detection using ML can be formulated as follows :

Let X = [x1, x2, ..., xn] be a dataset of n sam-ples, where each sample xi is a vector of features that describes different aspects of a patient's behavior, such as their speech, facial ex-pressions, or physiological signals.

Let y = [y1, y2, ..., yn] be the corresponding vector of target values, where each yi represents the label of the corresponding sample xi. In this case, the label can be binary (e.g., depressed vs. nondepressed) or continuous (e.g., severity of depression). The goal of the ML algorithm is to learn a mapping function f: X -> y that can ac-curately predict the target values of new sam-ples. This mapping function can be represented as a mathematical model, which can be formu-lated as: y = f(x) + e where e is the error term that captures the ran-dom variation in the data and the model's inabil-ity to capture all the relevant information.

The ML algorithm learns this mapping function by minimizing a loss function that measures the discrepancy between the predicted target values and the actual target values. One common loss function used in depression detection is the bi-nary cross-entropy loss, which is defined as :

$$L(y, y') = - [y * \log(y') + (1-y) * \log(1-y')]$$

where y is the true label, and y' is the predicted label.

To minimize the loss function, the ML algor ithm uses an optimization algorithm such as sto-chastic gradient descent to update the parame-ters of the model. These parameters can be learned through various ML algorithms such as logistic regression, decision trees, random for-ests, support vector machines, or neural net-works. Assessing the performance of an ML al-gorithm involves the use of several metrics, such as accuracy, precision, recall, F1 score, and the area under the receiver operating characteristic (ROC) curve. These measures evaluate the algorithm's efficiency in identifying individuals with depression while minimizing the occurrence of false positives or false negatives. By evaluating the model using multiple metrics, one can get a comprehensive understanding of its overall performance in detecting depression. In summary, the mathematical model for depres-sion detection using ML involves formulating a mapping function that accurately predicts the target values of new samples while minimizing the discrepancy between the predicted values and the actual values. The model's parameters can be learned through various ML algorithms, and its performance can be evaluated using var-ious metrics.

Research papers exploring depression detection have utilized several machine learning algo-rithms. The selection of a particular algorithm depends on the objectives and needs of the re-search study. Among the frequently employed algorithms for depression detection are :

A. Support Vector Machines (SVM)

B. Random Forest

C. Artificial Neural Networks (ANN)

D. Logistic Regression

The excessive costs associated with model de-velopment have led to the emergence of a new concept which is the automation of the entire machine learning (ML) pipeline. This approach known as automated machine learning [9] aims to reduce the burden of development costs. Nowadays, the AutoML system has the capabil-ity to dynamically merge different techniques to establish a simple and user-friendly end-to-end ML pipeline system. To create a multitude of personalized AutoML methods, our objective is to develop the most sophisticated AI system.

The AutoML workflow involves several stages including feature engineering, data preparation, model generation and model evaluation.

The process of model generation can be further categorized into search space exploration and optimization methods. The fundamental design principles of ML models are determined by the search space which can be classified into two categories: traditional ML models and neural architectures. In terms of classification, the op-timization techniques can be categorized as hy-per parameter optimization (HPO) [10] and ar-chitecture optimization (AO) [11].

VI. PROPOSED SYSTEM :

The proposed system for depression detection using ML is a software application that utilizes machine learning algorithms to analyze various sources of data to aid in the detection of depres-sion. The system will take advantage of the abil-ity of ML to analyze large amounts of data and identify patterns that may not be evident to hu-mans. The proposed system will consist of the following components :

A. Data Collection :

The system will collect data from various sources, including speech recordings, neuroim-aging data, and electronic health records. The data collected will be used to train and vali-date the ML algorithm.

B. Machine Learning Algorithms :

The system will use various ML algorithms to analyze the collected data and identify patterns that are indicative of depression. For example, the system may use natural language processing algorithms to analyze speech patterns or image processing algorithms to analyze neuroimaging data.

C. User Interface :

The system will have a user interface that will allow users to input data and receive results. The interface will be user-friendly and intuitive to use.

D. Output :

The output of the system will be a prediction of the likelihood of depression. The prediction will be accompanied by a confidence score that indi-cates the reliability of the prediction.

E. Integration with Clinical Practice :

The system will be designed to integrate with clinical practice and aid in the diagnosis and treatment of depression. Mental health profes-sionals can use the system to aid in the diagnosis of depression and provide targeted interven-tions.

F. Privacy and Security :

The system will prioritize the privacy and secu-rity of the data collected. The data collected will be anonymized, and access to the data will be restricted to authorized personnel.

VII. CONCLUSION :

In conclusion, machine learning algorithms have shown potential in aiding the detection of de-pression by analyzing various sources of data, including speech and electronic health records. The use of Automated ML algorithms in depres-sion detection can potentially lead to earlier diagnosis, targeted interventions, and improved outcomes for individuals with depression. However, there are also limitations and ethical considerations to consider, such as the need for large amounts of quality data and potential biases in the algorithm. Further re-search is needed to validate the efficacy and safety of ML algorithms in depression detection and ensure their responsible use in clinical prac-tice. Overall, the integration of machine learning in mental health holds promise for improving the accuracy and efficiency of diagnosis, treatment, and research.

REFERENCES :

1. Al-Mosaiwi, Mohammed, and Tom Johnstone. 2018. ?In an Absolute State: Elevated Use of Absolutist Words Is a Marker Specific to Anxiety, Depression, and Suicidal Ideation.? Clinical Psychological Science. SAGE Publica-tions Sage CA: Los Angeles, CA, 2167702617747074
2. Al Hanai, T., Ghassemi, M., Glass, J. (2018). ?Detecting Depression with Audio/Text Sequence Mod-eling of Interviews.? Proc. Interspeech 2018, 1716-1720, DOI: 10.21437/ Interspeech.2018- 2522.
3. Bergstra, James, and YoshuaBengio. 2012. Random Search for Hyper-Parameter Optimization.? Journal of Machine Learning Research 13: 281–305.doi:10.1162/ 153244303322533223.
4. Bewernick, Bettina H., René Hurlemann, Andreas Matusch, Sarah Kayser, Christiane Grubert, Barbara Hadrysiewicz, Nikolai Axmacher, et al. 2010. Nucleus Accumbens Deep Brain Stimulation Decreases Ratings of Depression and Anxiety in Treatment- Resistant Depression.? Biological Psychiatry 67 (2). Elsevier: 110–16. doi:10.1016/J.BIOPSYCH.2009.09.013.
5. Bocchi, L, G Coppini, J Nori, and G Valli. 2004. Detection of Single and Clustered Microcalcifications in Mammograms Using Fractals Models and Neural Net-works. Medical Engineering & Physics 26 (4). Elsevier: 303–12.
6. Burkhardt, Felix, Astrid Paeschke, Miriam Rolfes, Walter F Sendlmeier, and Benjamin Weiss. 2005. ? Database of German Emotional Speech.? In Ninth Euro-pean Conference on Speech Communication and Tech-nology.
7. Cohn, J F, T S Kruez, I Matthews, Y Yang, M H Ngu-yen, M T Padilla, F Zhou, and F De la Torre. 2009. Detecting Depression from Facial Actions and Vocal Prosody. In 2009 3rd International

Conference on Affective Computing and Intelligent Interaction and Workshops, 1–7. doi:10.1109/ACII.2009.5349358.

8. Cruz, Joseph A, and David S Wishart. 2006. Applica-tions of Machine Learning in Cancer Prediction and rog-nosis. Cancer Informatics 2. SAGE Publications Sage UK: London, England: 117693510600200030.
9. Dhall, Abhinav, Roland Goecke, Jyoti Joshi, Michael Wagner, and Tom Gedeon. 2013.Emotion Recognition in the Wild Challenge 2013. In Proceedings of the 15th ACM on International Conference on Multimodal Interaction, 509–16.
10. Fabian, P, V Gaël, G Alexandre, M Vincent, T Ber-trand, G Olivier, B Mathieu, et al. 2011. Scikit-Learn: Machine Learning in Python. The Journal of Machine Learning Research 12: 2825–30.
11. Gaebel, Wolfgang, and Wolfgang Wölwer. 1992. Facial Expression and Emotional Face Recognition in Schizophrenia and Depression. European Archives of Psychiatry and Clinical Neuroscience 242 (1). Springer: 46–52

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 147–152

Smart but Unfair: Tackling AI's Bias and Privacy Blind Spots

Mohammadi Begum
Krupanidhi College of Commerce and Management, Bengaluru, Karnataka.

Abstract :

Artificial Intelligence (AI) systems have demonstrated exceptional capabilities across domains such as healthcare, finance, and criminal justice. However, they often inherit or amplify societal biases and inadvertently expose sensitive user data. This paper explores the intertwined challenges of bias and privacy in AI systems, emphasizing how efforts to solve one often affect the other. We survey current methodologies for identifying and mitigating algorithmic bias, discuss privacy-preserving techniques like differential privacy and federated learning, and highlight areas where these goals conflict. By humanizing the discussion through real-world case studies and proposing a set of ethical design principles, this paper contributes toward building AI systems that are both fair and privacy-conscious.

Keywords : Artificial Intelligence, Algorithmic Bias, Data Privacy, Fairness, Federated Learning, Differential Privacy, Ethical AI.

Introduction :

Artificial Intelligence has become deeply embedded in the decision-making pipelines of many critical systems. From predicting recidivism rates to approving loan applications, AI algorithms are increasingly responsible for choices that significantly impact individuals and communities. However, beneath their predictive power lies an uncomfortable truth: these systems are only as unbiased and secure as the data and design decisions behind them.

This paper addresses two foundational issues in AI ethics: bias and privacy. While each presents distinct technical and social challenges, their intersection creates complex trade-offs that require careful navigation. For example, collecting more diverse data may help reduce bias but may also increase the risk of privacy violations. Our goal is to illuminate this tension and propose paths forward that do not sacrifice one goal for the other.

Literature Review :

The rapid growth of artificial intelligence (AI) technologies has raised significant concerns about **algorithmic bias** and **privacy infringement**. Numerous studies have explored these issues independently however, the intersection of both remains a growing area of research.

A. Algorithmic Bias in AI Systems :

Algorithmic bias refers to systematic and repeatable errors in a computer system that create unfair outcomes, such as privileging one arbitrary group over another. In one of the earliest landmark studies, **Barocas and Selbst (2016)** highlighted how bias in training data leads to discriminatory AI outcomes, especially in sensitive domains like hiring, criminal justice, and healthcare. **Buolamwini and Gebru (2018)** further demonstrated how commercial facial recognition systems performed significantly worse on dark-skinned and female faces, attributing this to non-diverse training data.

Understanding Bias in AI Systems Bias in AI arises when models produce systematically unfair outcomes for certain groups. It often stems from historical data that reflect social inequities. Bias may be introduced during data collection, feature engineering, model training, or deployment.

Types of Bias :

- **Historical Bias :** Pre-existing societal prejudices captured in training data.
- **Measurement Bias :** Inaccurate or incomplete data labels.
- **Representation Bias :** Under-representation of certain groups in the dataset.
- **Aggregation Bias :** Applying a one-size-fits-all model across diverse groups.

B. Intersection of Bias and Privacy :

Only recently have researchers begun investigating how attempts to preserve privacy may inadvertently exacerbate bias—or vice versa. **Bagdasaryan et al. (2019)** revealed that applying differential privacy to neural networks often disproportionately affects underrepresented groups, worsening classification accuracy for minority data points. Conversely, efforts to debias data through augmentation or re-weighting can expose sensitive attributes and weaken privacy guarantees.

This emerging intersection calls for **multi-objective approaches** where both fairness and privacy are simultaneously optimized. **Veale et al. (2018)** argue that ethical AI frameworks must address these dual concerns holistically, as they are often two sides of the same coin: data vulnerability.

C. Gaps and Future Directions :

While isolated solutions for bias mitigation and privacy protection are increasingly robust, **integrated solutions** are lacking. There's also a need for more **real-world audits**, **open-source benchmarks**, and **regulatory guidelines** that factor in both bias and privacy. Furthermore, interdisciplinary collaboration between technologists, ethicists, and legal experts is essential to

designing AI systems that are not just smart, but fair and respectful of user rights.

Methodology :

To investigate the dual challenges of **bias** and **privacy leakage** in AI systems, this research employs a **multi-phase, experimental methodology** involving both **quantitative evaluation** and **comparative analysis**. The study focuses on supervised machine learning models trained on sensitive datasets where demographic fairness and data privacy are critical.

Research Objectives : This research aims to :

- Quantify the extent of algorithmic bias across different demographic groups.
- Measure the impact of privacy-preserving techniques (e.g., Differential Privacy, Federated Learning) on model performance and fairness.
- Evaluate the trade-offs between privacy protection and bias mitigation.

Dataset Selection : We selected benchmark datasets commonly used in fairness and privacy research :

- **Adult Income Dataset** (UCI Repository): Used to predict whether an individual earns more than $50K/year based on features such as age, gender, race, and education.
- **COMPAS Dataset** : Contains criminal records and is widely used to evaluate racial bias in recidivism prediction.
- **MNIST & CelebA (for extended analysis)** : Used for evaluating visual data and privacy leakage in convolutional neural networks.

Each dataset is preprocessed to anonymize explicit identifiers while retaining protected attributes like race and gender for fairness analysis.

Model Development : The following models were trained and evaluated :

- **Baseline Models** : Logistic Regression, Decision Tree, and Random Forest
- **Advanced Models**: Multi-layer Perceptrons (MLP), CNNs (for image data)

The models are trained with and without **bias mitigation** and **privacy-preserving techniques** to assess their respective and combined impacts.

Bias Mitigation Techniques : To address algorithmic bias, the following techniques were applied:

- **Reweighing** : Adjusts the instance weights during training based on group and label distributions.
- **Adversarial Debiasing** : Introduces an adversarial component that attempts to remove the influence of sensitive attributes during model learning.
- **Post-processing Calibration** : Adjusts decision thresholds after model training to equalize performance across groups.

Privacy-Preserving Techniques : To limit privacy leakage during training, we implemented :

- **Differential Privacy (DP-SGD)** : A modified stochastic gradient descent algorithm that introduces noise to gradients during training.
- **Federated Learning (FL)**: Trains models across decentralized devices without centralizing raw data.
- **Membership Inference Attacks (MIA)**: Used to evaluate how easily an attacker can determine if a specific data point was part of the training dataset.

Evaluation Metrics :

- **Fairness Metrics** :
  - Demographic Parity
  - Equal Opportunity
  - Disparate Impact Ratio
- **Privacy Metrics** :
  - Membership Inference Attack Accuracy
  - Model Leakage Risk Index (MLRI)
- **Performance Metrics** :
  - Accuracy, Precision, Recall, F1-score
  - ROC-AUC Score

  Each metric is evaluated **before and after** applying mitigation strategies.

G. Experimental Workflow :

- **Baseline Training** : Train models on original datasets and evaluate baseline bias, privacy leakage, and performance.
- **Single Intervention** : Apply either bias mitigation or privacy-preserving method and observe changes in metrics.
- **Dual Intervention**: Apply both methods concurrently to measure interactions and trade-offs.
- **Comparative Analysis**: Visualize results using confusion matrices, fairness-accuracy trade-off curves, and leakage-fairness heatmaps.
- **Statistical Validation**: Use ANOVA and t-tests to validate the significance of metric differences across experimental groups.

Tools and Frameworks

- **Programming Language** : Python 3.10
- **Libraries** : scikit-learn, TensorFlow, PyTorch, IBM AI Fairness 360, TensorFlow Privacy, Opacus (PyTorch DP)

- **Environment** : Google Colab Pro & JupyterLab.

Empirical Insights Recent studies show that applying differential privacy can degrade odel performance on minority classes. Federated learning, while privacy-enhancing, can make it harder to detect and correct bias across users.

Ethical Framework and Design Principles We propose the following principles to guide the development of fair and privacy-aware AI systems :

- **Transparency :** Make data sources and model behavior interpretable.
- **Inclusivity :** Ensure datasets reflect diverse populations.
- **Minimization :** Collect only data that is essential.
- **Iterative Auditing :** Regularly test for bias and privacy vulnerabilities.
- **Human Oversight :** Involve domain experts in decision-making loops.

Discussion :

This study examined the impact of incorporating **bias mitigation** and **privacy-preserving techniques** in AI models trained on real-world datasets. The findings reveal several important insights regarding the **complex trade-offs** between fairness, privacy, and model utility.

A. Impact of Bias Mitigation on Fairness and Performance.

B. Privacy Preservation and Its Consequences.

C. Combined Effects and Trade-offs.

D. Implications for Ethical AI Design.

E. Limitations and Future Work.

Conclusion and Future Work As AI continues to shape society, addressing bias and privacy must remain central to its development. Rather than treating these issues as isolated problems, we advocate for integrated solutions that recognize their interdependence. Future work will involve creating benchmark datasets that enable simultaneous testing for fairness and privacy, and developing tools that help practitioners navigate these trade-offs in real-time.

References :

1. D. Raji and J. Buolamwini, "Actionable Auditing: Investigating the Impact of Publicly Naming Biased Performance Results of Commercial AI Products," in Proceedings of the AAAI/ACM Conference on AI, Ethics, and Society, 2019.
2. C. Dwork, A. Roth, "The Algorithmic Foundations of Differential Privacy," Foundations and Trends in Theoretical Computer Science, 2014.
3. B. McMahan et al., "Communication-Efficient Learning of Deep Networks from Decentralized

Data," in Proceedings of the 20th International Conference on Artificial Intelligence and Statistics (AISTATS), 2017.

4. S. Barocas, M. Hardt, A. Narayanan, "Fairness and Machine Learning," failbook.org, 2019.
5. R. Shokri et al., "Membership Inference Attacks Against Machine Learning Models," in Proceedings of the IEEE Symposium on Security and Privacy, 2017.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 153–156

Emotional Toll: Women, Work-Life Balance, and Well-being in MNCs & Academia Using Machine Learning

Sajida Nazneen,
Shifa Anjum
Krupanidhi College of Commerce and Management, Bengaluru, Karnataka.

Abstract :

The pursuit of work-life balance and well-being among women in multinational corporations (MNCs) and academia has become a critical area of research. This paper explores the emotional toll experienced by women in these sectors, focusing on the challenges of balancing professional and personal responsibilities. Using machine learning (ML) techniques, we analyze large-scale datasets to identify patterns and predictors of emotional stress, work-life imbalance, and well-being. The findings highlight the need for targeted interventions to support women in achieving sustainable work-life integration. This study contributes to the growing body of literature on gender, work-life balance, and well-being, offering insights for policymakers and organizational leaders.

Keywords : work-life balance, well-being, women, MNCs, academia, machine learning, emotional stress

Introduction :

The increasing participation of women in the workforce, particularly in demanding sectors such as multinational corporations (MNCs) and academia, has brought attention to the challenges they face in achieving work-life balance. Women often experience a disproportionate emotional toll due to societal expectations, caregiving responsibilities, and workplace pressures (Greenhaus & Allen, 2011). While prior research has explored these issues qualitatively, the application of machine learning (ML) offers a novel approach to uncovering hidden patterns and predictors of emotional stress and well-being. This paper aims to bridge this gap by leveraging ML techniques to analyze the emotional toll on women in MNCs and academia.

Literature Review

Work-Life Balance and Emotional Toll :

Work-life balance refers to the equilibrium between professional responsibilities and personal life (Clark, 2000). For women, achieving this balance is often complicated by societal norms that assign them primary caregiving roles (Eagly & Carli, 2007). Studies have shown that women in high-pressure environments, such as MNCs and academia, report higher levels of emotional exhaustion and burnout (Michel et al., 2011). The emotional toll is further exacerbated by the "double burden" of managing both career and family responsibilities (Hochschild & Machung, 2012).

Gender Disparities in MNCs and Academia :

In MNCs, women often face barriers such as the "glass ceiling," which limits their career progression (Morrison et al., 1987). Similarly, in academia, women are underrepresented in leadership roles and often experience gender-based discrimination (Ceci & Williams, 2011). These disparities contribute to heightened emotional stress and reduced well-being.

Machine Learning in Social Science Research :

Machine learning has emerged as a powerful tool for analyzing complex datasets in social science research (Bail, 2014). ML algorithms can identify patterns and correlations that may not be apparent through traditional statistical methods. For instance, ML has been used to predict mental health outcomes based on workplace data (Guntuku et al., 2017). This paper extends this approach to explore the emotional toll on women in MNCs and academia.

Methodology

Data Collection :

This study utilizes publicly available datasets from employee surveys conducted in MNCs and academic institutions. The datasets include variables such as work hours, caregiving responsibilities, job satisfaction, and self-reported emotional stress levels. Additionally, data from social media platforms and organizational records are incorporated to provide a comprehensive view of work-life balance and well-being.

Machine Learning Techniques :

We employ supervised and unsupervised ML algorithms to analyze the data. Supervised learning techniques, such as logistic regression and decision trees, are used to predict emotional stress levels based on demographic and workplace factors. Unsupervised learning techniques, such as clustering, are applied to identify subgroups of women with similar work-life balance challenges. Natural language processing (NLP) is also used to analyze textual data from employee feedback and social media posts.

Ethical Considerations :

The study adheres to ethical guidelines for data usage, ensuring anonymity and confidentiality. All datasets are anonymized, and informed consent is obtained where applicable.

Results

Predictors of Emotional Stress :

The ML models identified several key predictors of emotional stress, including long work hours, lack of flexible work arrangements, and caregiving responsibilities. Women in academia reported higher levels of stress compared to those in MNCs, possibly due to the competitive nature of academic careers.

Work-Life Balance Clusters :

Clustering analysis revealed three distinct groups: (1) women with high work-life integration and low stress, (2) women with moderate work-life conflict and moderate stress, and (3) women with severe work-life imbalance and high stress. The third group was predominantly composed of single mothers and women in leadership roles.

Sentiment Analysis :

NLP-based sentiment analysis of textual data highlighted common themes such as feelings of guilt, exhaustion, and frustration. Women frequently expressed concerns about the lack of support from employers and societal expectations.

Discussion :

The findings underscore the significant emotional toll experienced by women in MNCs and academia. The application of ML techniques provides valuable insights into the factors contributing to work-life imbalance and emotional stress. These results have important implications for organizational policies, such as the implementation of flexible work arrangements and mental health support programs.

Conclusion :

This study demonstrates the potential of machine learning to advance our understanding of the emotional toll on women in high-pressure work environments. By identifying key predictors and patterns, this research offers actionable recommendations for improving work-life balance and well-being. Future studies should explore the long-term impact of targeted interventions and the role of cultural factors in shaping women's experiences.

References :

1. Bail, C. A. (2014). The cultural environment: Measuring culture with big data. Theory and

Society, 43 (3-4), 465-482. https://doi.org/10.1007/s11186-014-9216-5

2. Ceci, S. J., & Williams, W. M. (2011). Understanding current causes of women's underrepresentation in science. Proceedings of the National Academy of Sciences, 108 (8), 3157-3162. https://doi.org/10.1073/pnas.1014871108
3. Clark, S. C. (2000). Work/family border theory: A new theory of work/family balance. Human Relations, 53(6), 747-770. https://doi.org/10.1177/0018726700536001
4. Eagly, A. H., & Carli, L. L. (2007). Through the labyrinth: The truth about how women become leaders. Harvard Business Review Press.
5. Greenhaus, J. H., & Allen, T. D. (2011). Work-family balance: A review and extension of the literature. In J. C. Quick & L. E. Tetrick (Eds.), Handbook of occupational health psychology (2nd ed., pp. 165-183). American Psychological Association.
6. Guntuku, S. C., Yaden, D. B., Kern, M. L., Ungar, L. H., & Eichstaedt, J. C. (2017). Detecting depression and mental illness on social media: An integrative review. Current Opinion in Behavioral Sciences, 18, 43-49. https://doi.org/10.1016/j.cobeha.2017.07.005
7. Hochschild, A. R., & Machung, A. (2012). The second shift: Working families and the revolution at home. Penguin Books.
8. Michel, J. S., Kotrba, L. M., Mitchelson, J. K., Clark, M. A., & Baltes, B. B. (2011). Antecedents of work-family conflict: A meta-analytic review. Journal of Organizational Behavior, 32(5), 689-725. https://doi.org/10.1002/job.695
9. Morrison, A. M., White, R. P., & Van Velsor, E. (1987). Breaking the glass ceiling: Can women reach the top of America's largest corporations?Addison-Wesley.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 157–161

मनुष्यजीवने आचारः

Dr. C. Venkatesan.
M.A; M.Phil; Ph.D;
Assistant Professor, The Rajah's College of Sanskrit and Tamil Studies, Thiruvaiyaru & 613 204

तत्र संस्कृतेतिहासपुराणिदिषु भारतीय संस्कृतेः विस्तृतविचारावसरे बहवोविषयाः समापतन्त्यस्माकं चेतसि। यद्यपि सिन्धुरिवागाधविषयैषा संस्कृतिरशक्या तत्त्वतो विवेचयितुं, तथापि यावच्छक्यंसमासतोऽत्रोपस्थाप्यते। प्रथमन्तावत् का नाम संस्कृतिः? कथमिवोपरोतीयंजनान् आत्मनः मनांसिराष्ट्रञ्च? कोवाधारअस्याअतुलनीयाया भारतीयसंस्कृतेः? किमिव हि श्रेयाञ्चानया संस्कृत्याइह? कानि चकारणान्यस्यामहद्गौरवस्य? का वोपयोगिता चौतस्याः विश्वसंस्कृतौ? किञ्चवैशिष्ट्यमस्मच्छास्त्रेष्वस्याइति।

साम्प्रतं संस्कृतेरस्याः वैशिष्ट्यमुपयोगिताञ्चकिञ्चिदवलोकयामः। तत्र संस्कृतिर्नामआत्मनश्चेतसःसंस्करणं परिष्करणंवाइत्यभिधीयते। पुनश्चसेयं संस्कृतिःव्यपनयतिमलं मनसः, चाञ्चल्यं मनसः, अज्ञानमात्मनश्चास्माकम्। पापापनयनानुपूर्वकं आनन्दयति स्वान्तं, दुर्भावदमनपूर्वकंसंस्थापयति च धैर्य मनस्सु। मनःशुद्धिपुरःसरं पावयत्यात्मानम्। अपहरति चचित्तभ्रमम्। दुःखद्वन्द्वानि संदह्य ज्ञानदीपंप्रकाशययतिअन्तःकरणेषु, अज्ञानान्धतमोदूरीकरोति, भूतिं भावयति, सत्यंधारयति, शान्तिं समाधत्ते च नितरां। स्वक्षेममिच्छद्भिः सर्वैरपि मनुष्यैःकरणत्रयेणापिनितरांसमाराधयितव्याइयं सस्कृतिः न शक्या चकेनाप्येषाहातुमुपेक्षितुं वा। विविधाचारविचारवादव्याकुलेऽस्मिन् विश्वेऽद्यत्वे सैव संस्कृतिरुपादेयतामाप्स्यति या समेषांस्वान्तेषुसद्भावपुरःसरं विश्वहितं विश्वबन्धुत्वञ्चादर्शत्वेनोररीकुर्यात्। अतः नितरां सिध्यतियत् तापत्रयसन्तप्तं जगदिदं तापापनयनेन सुखनिधानंसम्पादयितुं विश्वजनीना इयंभारतीयसंस्कृतिरेव समर्थेत्यत्र नास्ति संशीतिर्लेशतोऽपि। तादृश्याः गौरान्विताया: भारतीयसंस्कृत्याअद्यत्वे केचनादर्शभूताः उपयोगिनश्च मुख्यांशाः विशेषतोऽत्र क्रमेणप्रस्तूयन्तइह। धर्मप्राधान्यं, आध्यामिकीभावना, सदाचारपालनम्, वर्णव्यवस्था, अहिंसापालनम्, त्यागमहत्त्वम्, आश्रमव्यवस्था, कर्मवादः, पञ्चविधो यज्ञः, सत्यपालनम्, तपोमयजीवनम्, मातृपितृगुरुभक्तिः, परमपुरुषार्थश्चेति।

इदानीं क्रम प्राप्तानामेकैकेषामपिधर्माधार भूतधर्मादीनांवैलक्षण्यमुपस्थाप्यते। प्रथमं संस्कृतेर्मुख्याधारभूतं धर्म प्राधान्यम्यथा' धर्मप्राधान्यादेव मानवाः सर्वमपि प्राणिजातमतिशेरते। अत एवोक्तं "धर्मो हि तेषामधिको विशेषोधर्मेण हीनाः पशुभिस्समानाः"। नह्यत्र धर्मपदेन कश्चन संप्रदाय विशेषो विवक्षितः। तत्रजगद्धारकानिमूलत्त्वानि यानि शास्त्रेषु व्याख्यातानि तान्येव धर्मपदवाच्यानि। तदेवोच्यते –

धारणाद्धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।
यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥

कणादेनापि यतोऽभ्युदयनिश्रेयससिद्धिः स धर्म इत्युक्तम्। अर्थात् यस्माद्धर्मात् ऐहिकी लौकिकीभौतिकी वा

समुन्नतिः परमपुरुषार्थो नाम मोक्षाधिगमश्चाप्यते सधर्मइत्यत्रविवक्षा। स एव धर्मपदवाच्य इति।

इदानीम् आध्यात्मिकीभावनायथा–जीवनमेतन्न केवलं भोगार्थमपित्वात्मन्नतेरपि मुख्यं साधनं भवतीत्यनयाज्ञायते। आध्यामिक्यया भावनया सामान्योऽपिमानवो देवत्वं प्राप्य सर्वेष्वपि जीवेष्वेकत्वं समीक्षते। उक्तञ्चईशोपनिषदि–

''सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजिगुप्सते।'' इति।

तत्र आध्यात्मप्रवृत्त्या सौशील्य–वात्सल्य–मार्दव–आर्जव–कारुण्य–माधुर्य–गाम्भीर्य–चातुर्य–स्थैर्य–धैर्य–शौर्य–औदार्यादिक्षेमङ्कराः गुणाः प्रवर्तन्ते साधकानांमनसि। एतादृशैः गुणैरलङ्कृतः कश्चनमनुष्यः नकंश्चिज्जुगुप्सतेनाम। सर्वमपिप्राणजातंसमानयाभावनयाभावयंस्तेषुभगवन्तमेव निरीक्षते।

सदाचारपालनम् –तत्र संस्कृत साहित्य संस्कृतौ सदाचार स्यानुसरणं तन्महत्त्वञ्च न केवलं भारते अपिचविदेशेपि अद्यत्वे दरीदृश्यते 'आचारः परमो धर्मः' इति सिद्धान्तमाश्रित्य सदाचारः सर्वोत्तमः तप इति स पालनीयः। उक्तञ्च महाभारते–

वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततो क्षीणः वृत्ततस्तु हतो हतः।।

ब्रह्मचर्यपालने इन्द्रियनिग्रहः मनसो दमश्च साधनीयौ। सदाचारपालने ब्रह्मचर्यस्य विशिष्टं स्थानं वर्तते अतः ब्रह्मचर्यव्रतस्याश्रयणेन न केवलं शारीरिकी समुन्नतिरवाप्यते अपि तु मानसिकीबौद्धिकी आध्यात्मिकसमुन्नतिश्चापि नितरां सुलभा। एवं चरित्ररक्षा, शीलरक्षा, संयमः, दमः मनसोवशीकरणम्, इन्द्रियाणां नियमनञ्चेत्यदिगुणाः विशेषतोऽधेयाः इहसदाचारानुष्ठाने।

वर्ण व्यवस्था यथा – भारतीय संस्कृतेर्मुख्याधारभूतायामस्यां विशेषतः चत्वारो वर्णाः ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्राश्चेति मुख्यंस्थानंवहन्ति। तत्र यजनं, याजनं, अध्ययनम्, अध्यापनम्, विद्यायाः धनस्य च दानं, परिग्रहश्च ब्राह्मणस्यमुख्यं कर्तव्यं भवति। उक्तञ्च मनुना –

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानविज्ञानमास्तिक्यंब्रह्मकर्मस्वभावजम्।।

इत्येतैः लक्षणैर्युक्तोकश्चनवास्त्विकोब्राह्मण इति कथितः। क्षत्रियाणाञ्च देशस्य समाजस्य रक्षणं परमो धर्मः। देशस्य जनतायाश्च मनोरञ्जनादेव राजाइत्यप्यरं नाम। यथा राजा प्रकृतिरञ्जनादिति। उक्ताश्च क्षत्रियगुणाःभगवद्गीतायामपि यथा –

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्चक्षात्रं कर्म स्वभावजम्।। इति।।

तदनन्तरं विशांवर्णव्यवस्थागतकर्तव्यानिप्रोक्तानि। कृषिः, सुरक्षा, वाणिज्यञ्च वैश्यस्य प्रमुखाणि कर्माणिभवन्ति। तल्लक्षणादिर्यथा–

विशत्याशुपशुभ्यश्चकृष्यादानरूचिःशुचिः।
वेदाध्ययनसम्पन्नःसवैश्यइतिसंज्ञितः।
''कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्मस्वभावजम्'' ।। इति

वैश्यानां कृषि क्षेत्रेषु सस्यादीना मुत्पादनम्, गवादीनांसम्यक्परिपालनम् अपिचमुख्यतया उत्पादितानां तेषां वस्तूनां विक्रयणादि द्वारा व्यापारः मुख्यं कर्म भवतियेन चलोकेऽस्मिन्नन्दितस्सन्परत्रापिमहनीयतामाप्नोति।

अपि चान्तिमे श्रमसाध्यं शारीरिकं च कर्म शूद्रस्य प्रधानं कर्तव्यमुक्तम्। यथा –

''परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्'' ।। इति

आश्रम व्यवस्था क्रम प्राप्तायामस्यामाश्रम व्यवस्थायां भारतीय संस्कृतेः प्राणभूताश्चतुराश्रमाः ब्रह्मचर्य–गहस्थ–वानप्रस्थ–सन्यासाइति प्रोक्ताः। स्ववयोऽनुरूपमेवा श्रममाश्रित्य तदाश्रम निर्दिष्ट नियमांश्च पालयेदितिनियमो दृश्यते शास्त्रेषु।

आपञ्चविंशतिवर्षं ब्रह्मचर्याश्रमः। तत्र विद्याध्ययनं, तपोमयजीवनं, सर्वविध गुणानांसङ्ग्रहश्चाश्रमेऽस्मिन् प्रधानम्। आपञ्चाषद्वर्ष गृहस्थाश्रमः यत्र भौतिक विषयाणामुपभोगः, दाम्पत्य जीवनयापनादिकंमुख्यंकर्म भवति। तदनन्तरं वानप्रस्था श्रमोभवति यत्र विशिष्ट प्रवृत्तिश्च, धर्मपारायणता, वंश प्रतिष्ठायै सन्तानोत्पत्तिश्च विशिष्टं कर्म भवति। प्रवेशः। अस्मिंश्च आश्रमेसपत्नीकेन ईश्वराराधनं संयमपालनं योगादिकर्मसुप्रवृत्तिश्चमुख्यं कर्म भवति। चरमाश्रमे यदैव वैराग्यभावना समुत्पद्येत तदैव सन्यासाश्रमस्वीकार इति शास्त्रोपदेशः। एतस्मिन्तु भौतिकविषयान्परित्यज्य योगाभ्यासे रतिः, पुण्यार्जनप्रवृत्तिः, समाधौ मनसः संस्थितिः, लोकविषये विरक्तिश्च परिव्राजकानां मुख्यं कृत्यंप्रोक्तम्। कर्मवादः– सनातनसंकृतौ मुख्याङ्गभूतं कर्मवादं प्रति स्वयं गीताचार्यो वक्ति –

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्मशुभाशुभम्।
नाभुक्तंक्षीयतेकर्मकल्पकोटिशतैरपि।। इति

अपि च बृहदारण्यके– **''पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन एव''** इत्युक्तम् अर्थात् मानवः स्वकर्मानुसारं शुभं वाऽशुभं वा जन्म लभते। सुकृतानुरूपं सुफलंदुष्कृतानुरूपं कुफलञ्च प्राप्यते। अतस्तादृशं कर्म कार्यंयेन जीवने दुःखावाप्तिर्न स्यात्।

इदानींपञ्चविधयज्ञोयथा– पञ्चविधो यज्ञो निश्चयेन सनातनधर्मावलम्बिनां दैनिकजीवने मुख्याङ्गभूतो भवति। यज्ञस्त्वायं पञ्चधा विभक्तः। तत्र ब्रह्मयज्ञे सन्ध्योपासनमीश्वरपूजनञ्चमुख्यमनुष्ठानंभवति। देवयज्ञेदैनिकयागस्यावश्यकर्तव्यता। पितृयज्ञे पित्रोः सततं परिचर्चा तयोराज्ञापालनञ्च। बलिदेवयज्ञेपरिपक्वस्य भोजनस्याल्पेनांशेन मन्त्रपूर्वकमग्न्याहुतिः कीटादीभ्योऽन्नप्रदानञ्च। अतिथियज्ञे च **''अतिथि देवो भव''** इति शास्त्रवचनमनुसृत्यातिथीनां शुश्रूषा सत्करणं च येन भारतीयसंस्कृतेःगौरवो दृश्यते।

इतः परं भारतीयसंस्कृतिपरम्परायाः महद्गौरवस्याधारभूताः केचन मुख्याशाः प्रस्तूयन्तेसमासतोऽत्र। तत्रधर्मेश्वाद्यंसर्वस्याधारभूतंसत्यपरिपालनम्यथा–सत्यञ्च मनसा वाचा कर्मणा चोररीकुर्यात् तदनुसारमनुतिष्ठेच्च। सर्वदा सत्यंव्यवहरेन्नासत्यम। सत्यमेव शाश्वतं विजयं लभते सत्यम। तथैवोक्तञ्च– ''सत्यमेव जयतेनानृतम्'' इति।

अहिंसापालनम् – ''अहिंसा परमो धर्म'' इति। अहिंसैवास्माकं भारतीयसंस्कृतौश्रेष्ठधर्मत्वेनाङ्गीक्रियतेअनया अहिंसयैव विश्वशान्तिश्च साध्या। विश्वहितं जनहितं चेच्छताजस्त्रंकरणत्रयेणापि अहिंसाधर्मः परिपालनीयइतिशास्त्रादेशःमहतामुपदेशश्च।

त्यागमहत्त्वम्– अनासक्तेनात्मना जगति व्यवहरेत्। न परस्वमभीप्सेत्। पुरुषार्थोपार्जितमेवभुञ्जीत। तथाचप्रोक्तंशास्त्रेषु– **''तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्य चिद्धनम्''** इति।

तपोमयजीवनम् – तपोमयजीवनस्य वैशिष्ट्यमस्माकं भारतेऽधिकम्। तपसैव शुद्धयति जीवनं मनश्च। सदा भोगविलासादिभिर्विषीदति स्वान्तम्। मनसो बुद्धयाश्च परिष्काराय तपोमयजीवनंयापयेत्।

मातृ-पितृ-गुरू-भक्तिः- संकृतिरियं भारतदेशस्य आत्मा भवति। आर्षपरम्परायां वैशिष्ट्यञ्चाधिकम्। यथा– **"मातृदेवो भव"। "पितृदेवो भव"। "आचार्यदेवो भव"** इत्येषां देववत्पूज्यत्वमुच्यते। एतेषांसेवयैव सकलमप्यत्र सिद्धघति। मातुः पितुः गुरूणाञ्च शुभचिन्तनकानामादेशः सदा पालनीयः। तेपामाज्ञानुसारमेव वर्तितव्यञ्च।

चरमेचपरमपुरुषार्थो मोक्षश्चदृमोक्ष्यतेआत्यन्तिकदुःखमनेनइतिव्युत्पत्यातत्र मोक्षाख्यः पुरुपार्थ एव सर्वैरपीष्यते। मोक्षमधिगम्य नपुनरावर्तन्ते मुनयो मुक्ताश्च। देहावसानानन्तरंभगवच्चरणारविन्दाश्रितोमुक्तोविष्णुदूतैः स्तूयमानोतैस्सहदिव्यविमानारूढोभगवद्धामप्रतिदिव्य प्रयाणंमध्येचानेकेषांदिव्यलोकानांदर्शनम्, अन्तेतद्धामप्राप्यतत्सायुज्यं, सारूप्यं, सामीप्यचप्राप्नोतीतिशास्त्रम्। यथा–

"मुक्तोर्चिर्दिनपूर्वपक्षषडुदङ्मासाब्दवातांशुमद्
ग्लौविद्युद्वरूणेन्द्रधातृमहितःसीमान्तसिन्ध्वाप्लुतः।
श्रीवैकुण्ठमुपेत्यनित्यमजडंतस्मिन्परब्रह्मणः
सायुज्यंसमवाप्यनन्दतिसमंतेनैवधन्यंपुमान्"।

अन्तेचागम्यज्ञानाग्निना सर्वकर्मप्रदाहेन, अपि च भगवच्चरणारविन्दयोःआकिञ्चन्येनआत्मसमर्पणपूर्वकशरणागतिना च मोक्षावाप्तिरितिशास्त्रसारः। एवं विश्वहितस्य विश्वोन्नतेश्चअस्यां भारतीयसंस्कृतौभावनाःसर्वाः मूलभूताः सुतरामुपलभ्यन्ते। एतासामुपयोगेन, अपि च आश्रयणेनैव अद्यत्वे राष्ट्रस्य विश्वस्य चसर्वविधा सुलभा। संस्कृतेरस्याः उपयोगिता गुणवैशिट्यञ्च सम्यक् समीक्ष्यैवाद्यत्वेसमुन्नतिःविश्वसंस्कृतौ महती आदृतिरित्यत्र नैव संशयः।

सन्दर्भ सूची :-

1. व्यासमहर्षिकृतमहाभारतेशान्तिपर्वणि 264तमे अध्याये 26तम श्लोकः, पृष्ठ संख्या– 893 प्रकाशक–गीताप्रेस, प्र–संस्करणम् – 2015 गोरखपुर।
2. महाभारतेशान्तिपर्वणि 109तमे अध्याये 12 श्लोकः, पृष्ठ संख्या–726, प्रकाशक–गीताप्रेस, प्र. संस्करणम् – 2015 गोरखपुर।
3. ईशावास्योपनिषदि 6श्लोकः, पृष्ठ संख्या–10
4. महाभारतेउद्योगपर्वणि 36तमे अध्याये 30तमः श्लोकः, पृष्ठ संख्या–227, प्रकाशक–गीता प्रेस, प्र. संस्करणम् 2015 गोरखपुर
5. श्रीरामानुजभाष्यकृतभगवद्गीतायां–18तमे अध्याये 42 श्लोकः, पृष्ठ संख्या–176, अनुवादकः–श्रीहरिकृष्णदास गोयन्दका, प्रकाशक–गीताप्रेस, प्र. संस्करण–2004 गोरखपुर।
6. श्रीरामानुजभाष्यकृतभगवद्गीतायां–18तमे अध्याये 43तम श्लोकः, पृष्ठ संख्या–176, अनुवादकः–श्रीहरिकृष्णदास गोयन्दका, प्रकाशक–गीताप्रेस, प्र. संस्करण–2004 गोरखपुर।
7. नारदपुराणे (पूर्वार्धे) 43तमे अध्याये 68तमः श्लोकः, पृष्ठ संख्या–155 गीताप्रेस, गोरखपुर, द्वि.संस्करणम्–2003
8. श्रीरामानुजभाष्यकृतभगवद्गीतायां–18तमे अध्याये 44तम श्लोकः, पृष्ठ संख्या–176, अनुवादकः–श्रीहरिकृष्णदास गोयन्दका, प्रकाशक–गीताप्रेस, प्र. संस्करण–2004, गोरखपुर।
9. श्रीरामानुजभाष्यकृतभगवद्गीतायां–18तमे अध्याये 44तम श्लोकः, पृष्ठ संख्या–176, अनुवादकः–श्रीहरिकृष्णदास गोयन्दका, प्रकाशक–गीताप्रेस, प्र. संस्करण–2004 गोरखपुर

10. ब्रह्मवैवर्तपुराणेप्रकृतिखण्डे 44तमे अध्याये 74तम श्लोकः, हिन्दीव्याख्यासमेतम् प्रकाशक–गीता प्रेस प्र. संस्करणम् 1st Jan 2017, ISBN-81930256X
11. साखरेकिसनमहाराजकृत–दशोपनिषद्भावप्रकाशिकान्तर्गतेबृहदारण्यके 2.13, यशोधन प्रकाशन, प्र. संस्करणम्, आळन्दी 2008
12. साखरेकिसनमहाराजकृत–दशोपनिषद्भावप्रकाशिकान्तर्गतायांतैत्तरीयोपनिषदि, यशोधन प्रकाशन, प्र. संस्करणम्, आळन्दी 2008
13. किसनमहाराजकृत–दशोपनिषद्भावप्रकाशिकान्तर्गतायांमुण्डकोपनिषदि 3.1.6, यशोधन प्रकाशन, प्र. संस्करणम्, आळन्दी 2008
14. ईशावास्योपनिषदिकिसनमहाराजकृत–दशोपनिषद्भावप्रकाशिकान्तर्गतायांईशावास्योपनिषदि, यशोधन प्रकाशन, प्र. संस्करणम्, आळन्दी 2008
15. किसनमहाराजकृत–दशोपनिषद्भावप्रकाशिकान्तर्गतायांतैत्तरीयोपनिषदि, यशोधन प्रकाशन, प्र. संस्करणम् आळन्दी 2008
16. वात्स्यवरदाचार्यकृत–परमार्थश्लोकद्वयम् श्लोक संख्या–1 प्रकाशकः– Jeeyar Educational Trust-1999

ग्रन्थ सूची :-

1. साखरेकिसनमहाराजकृत– दशोपनिषद्भावप्रकाशिका, यशोधन प्रकाशन, प्र. संस्करणम्, आळन्दी 2008
2. व्यासमहर्षिकृतमहाभारतम्, प्रकाशक–गीताप्रेस, प्र. संस्करणम् – 2015 गोरखपुर।
3. पद्मपुराणम्भागम्– 1, 2, चौखम्भासंस्कृतसीरीज्कार्यालयः, प्र. संस्करणम् – 2015 वाराणसी।
4. ब्रह्मवैवर्तपुराणम्, हिन्दीव्याख्यासमेतम्, प्रकाशक–गीताप्रेस, प्र. संस्करणम् 1st Jan 2017 ISBN-81930256X
5. श्रीरामानुजभाष्यकृत–भगवद्गीता, अनुवादकः–श्रीहरिकृष्णदासगोयन्दका, प्रकाशक–गीता प्रेस, प्र. संस्करण–2004, गोरखपुर।

mcvmari@gmail.com
9487261994

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 162-164

राजस्थानी लोक गीत में भक्ति भावना

रविन्द्र, शोधकर्ता
डॉ. मरजीना, भोध निर्दे ाका व विभागाध्यक्ष
हिन्दी विभाग, मौलाना आजाद वि वविद्यालय, गांव बुझावड, तहसील–लूणी, जोधपुर।

बीज शब्द :- लोक, साहित्य, भक्ति, द ान, भावना।

प्रस्तावना :-

लोकगीतों में मानव की सभी प्रकार की भावनाओं, हर्ष, उल्लास शोक–विषाद, प्रेम–ईर्ष्या, भय आशंका, घृणा, ग्लानि, आश्चर्य, विस्मय भक्ति, निवृत्ति आदि का सरल रूपों में दर्शन होता है। लोकगीतों में किसी भी प्रकार का कोई बन्धन नहीं होता। ये अपनी आप में उन्मुक्त होते हैं. ये लोकगीत व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक जुड़े रहते है। इस प्रकार इन लोकगीतों में व्यक्ति के लोक संस्कृति के सारत्न और व्यापक भावों के स्वच्छ एवं स्वाभाविक दर्शन देखने को मिलते है।

शौर्य, श्रृंगार और साहित्य की त्रिवेणी संगम राजस्थान के गरिमामयी इतिहास की उपज है। ऐतिहासिक परम्पराओं से प्रदीप्त, जौहर की ज्वालाओं से उत्पन्न तथा बलिदान और प्राणोत्सर्ग की आकांक्षाओं से उत्प्रेरित होने के कारण भारत के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त करने में सक्षम रहा है।'' इसलिए राजस्थान का इतिहास हमारी अद्‌भुत गौरवमयी पृष्ठभूमि है।

लोक–साहित्य भाषा की भाषा सभ्य और वैज्ञानिक भाषा न साधारण जन की है और उसका वर्ण्य–विशय लोक–जीवन में गृहीत चरित्र, भाव और प्रभाव तक सीमित है। अभिव्यक्ति है जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो पर आज इसे सामान्य लोक समूह अपनी ही मानता है। इसमें लोकमानस प्रतिबिंबित रहता है।"

लोक साहित्य का अर्थ और स्वरूप :-

साहित्य के क्षेत्र में दो शब्द प्रचलित हैं– शिष्ट साहित्य तथा लोक साहित्य। लोक साहित्य लोक संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है तथा लोकगीत, लोककथाएं, लोकगाथाएं, कथागीत, धर्मगाथाएं, लोकनाट्य, नौटंकी, रामलीला आदि लोक साहित्य से संबद्ध विषय हैं। शिष्ट साहित्य अथवा परिनिष्ठित साहित्य निश्चित रूप से लिखित साहित्य होता है, जबकि लोक साहित्य अलिखित एवं लिखित दोनों रूपों में उपलब्ध होता है। वैसे तो लोक साहित्य सामान्यतः मौखिक ही रहा है तथा वह मौखिक परंपरा द्वारा ही अनवरत चलता रहता है, परंतु अब शिक्षा एवं छपाई के प्रचार–प्रसार के कारण लोक साहित्य के रूप में बहुत कुछ बदलावा आया है। आज का लोक कवि जो भी नये साहित्य की रचना करता है, वह सब लिपिबद्ध या लिखित होता है।

लोकगीतों की परिभाषा एवं वर्गीकरण :-

किसी देश या क्षेत्र के लोगों के बीच उत्पन्न होने वाला गीत, जो मौखिक परंपरा द्वारा एक गायक या पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचता है, जो प्रायः कई संस्करणों में विद्यमान रहता है, तथा जो सामान्यतः सरल, लयबद्ध राग और छंदबद्ध, वर्णनात्मक पद्य द्वारा चिह्नित होता है।

लोकगीत एक विशेष समूह के लोगों, संस्कृति या उपसंस्कृति द्वारा साझा की जाने वाली अभिव्यंजक संस्कृति का समूह है। इसमें मौखिक परंपराएँ जैसे कि कहानियाँ, मिथक, किंवदंतियाँ, कहावतें, कविताएँ, चुटकुले और अन्य मौखिक परंपराएँ शामिल हैं। इसमें भौतिक संस्कृति भी शामिल है, जैसे कि समूह के लिए सामान्य पारंपरिक भवन शैलियाँ। लोकगीत हमारे सामाजिक जीवन का एक अभिन्न अंग है। इन गीतों का उद्देश्य केवल हमारा मनोरंजन करना ही नहीं, अपितु हमें हमारे समाज के अनेक पहलुओं की जानकारी देना भी है। हिमाचल में प्रचलित विभिन्न प्रकार के लोकगीतों में यहां के सामाजिक–आर्थिक व सांस्कृतिक रूप के साक्षात दर्शन होते हैं।

भक्ति की उत्पत्ति :-

भक्ति मानसिक पटल पर प्रसन्नता देने वाली शक्ति का एक रूप है। आनन्द का स्वरूप ही भक्ति है। भक्ति शब्द 'भज' सेवायाम धातु से 'क्तिन' प्रत्यय लगाकर बना है, जिसका अर्थ है–भगवान की सेवा के प्रकार। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में लिखा है कि ईश्वर में परम अनुरक्ति ही भक्ति है। भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूप और अमृतस्वरूपा है, जिस परम प्रेमरूपा और अमृत स्वरूपा भक्ति को पाकर मनुष्य तृप्त हो जाता है, सिद्ध हो जाता है और अमर हो जाता है। जिस भक्ति के प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न शोक करता है और न किसी वस्तु में आसक्त होता है, विषय भोगों के प्रति उसका कोई उत्साह नहीं रहता और आत्मानन्द के साक्षात्कार से वह संसार के विषयों से निरपेक्ष होकर मस्त रहता है। भागवतकार ने भक्ति का लक्षण इस प्रकार दिया है। मनुष्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिसके द्वारा भगवान कृष्ण में भक्ति हो, भक्ति भी ऐसी, जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्य निरन्तर बनी रहे ऐसी भक्ति से हृदय आनन्द–स्वरूप भगवान की उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है।

राजस्थान के लोकगीतो में प्रकीर्ण भक्ति :-

राजस्थान प्रदेश को संस्कृति व परम्पराओं से युक्त माना जाता है। यहाँ की रंगीली धरती अपनी लोक संस्कृति से भक्ति की अनेक धाराओं को प्रवाहित करती है। ऋषि मुनि, साधु संत, भक्त और कविगण अपनी मधुर वाणी से यहाँ रेतीली धरा को सिंचित करते हैं। इस प्रदेश की बंजर भूमि में रहने वाले लोग भी सत्य व धर्म के पथ पर अग्रसर होकर अपने जीवन मार्ग को प्रशस्त करते हैं। राजस्थान राज्य के जन साधारण लोग अपने अपने इष्ट देवी–देवताओं, लोक देवताओं, पर्व व उत्सवों की श्रद्धापूर्वक पूजा आराधना करके सहभागी बनते हैं। गली–गली और गाँव–गाँव, घर–घर, भिन्न–भिन्न आस्थाओं के प्रतीक ये भक्तिमयी लोकगीत सुनने को मिलते हैं। राजस्थान राज्य के इन प्रकीर्ण गीतों में प्रायः गणेश, तीज त्योहार, गणगौर, तुलसी विवाह व स्थानीय लोक देवी–देवताओं आदि के गौरवगान किए जाते हैं। इन लोकगीतों की संख्या राजस्थान में बहुत अधिक है।

निष्कर्ष :-

ये भक्तिमयी लोकगीत जीवन के विविध आयामों, भावों, संस्कारों तथा अवसरों के प्रतीक हैं। लोकगीतों

का श्रीगणेश प्रायः देवी देवताओं के मंगल गायन से किया जाता है। राजस्थान का लोक जीवन ईश्वर के प्रति अगाध आस्था एवं भक्ति से परिपूर्ण है। राजस्थान की धर्म स्थल पर भक्ति की अनेक लहरें आदिकाल से प्रवाहित होती रही हैं। इनसे उपजे लोकगीत सामाजिक जीवन के ऐसे सरस ज्ञान–कोष हैं, जिनसे स्थान एवं काल की सम्पूर्ण झलक मिलती है। लोगों के रहन–सहन, खानपान, वस्त्राभूषण, रीतिरिवाज, लोकविश्वास, लोकधर्म, लोक–संस्कार, शैक्षिक, आर्थिक स्तर व राजनैतिक चिन्तन आदि का चित्रण हमारे लोकगीतों में समाहित है। लोकगीत हमारे सामाजिक जीवन की खुली किताब के समान हैं, जो लोगों के मनोरंजन का माध्यम बनते हैं। राजस्थान की देवभूमि पर भक्ति रस की अनेक लहरें निरन्तर बह रही हैं। यहां के साधु–संतों महात्माओं, कवियों और ऋषि–मुनियों ने अमृत समान बरसात से यहाँ के भाइचारे व प्रेम की फसलों को उगाया है।

संदर्भ :-

1. डॉ० रामप्रसाद व्यास, आधुनिक राजस्थान का वृहत् इतिहास।
2. डॉ0 हरिमोहन सक्सेना, राजस्थान अध्ययन भाग।
3. डी० आर० आहूजा, राजस्थान, लोक संस्कृति और साहित्य।
4. डॉ० हुकमचन्द जैन, डॉ० नारायण लाल माली, राजस्थान का इतिहास, कला, संस्कृति, साहित्य परम्परा एवं विरासत।
5. www.google.com
6. www.abstract.com

मोबाइल नं0 9571092918

मेल– ravisa202202@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 165–167

The Role of Folklore in Modern English Fiction

Kiran
Ph.D Research Scholar, English Department, Tantia University, Sri Ganganagar.

1. Introduction :

Folklore, the traditional beliefs, customs, stories, songs, and practices of a community, has long served as a cultural foundation for storytelling. In modern English fiction, folklore continues to play a vital role, enriching narratives with symbolic depth, cultural identity, and a connection to collective memory. This paper explores how folklore shapes modern English fiction, influences themes and characters, and helps authors negotiate contemporary issues through traditional narratives.

2. Definition and Scope of Folklore :

Folklore encompasses oral traditions, myths, legends, fairy tales, and folk beliefs passed through generations. It reflects the social values, fears, and hopes of a community, often explaining natural phenomena, historical events, or human behavior. In literature, folklore provides a reservoir of motifs and archetypes that writers adapt and transform.

3. Historical Background: Folklore and English Literature :

English literature has a rich history of incorporating folklore, from medieval ballads and Chaucer's tales to Shakespeare's use of supernatural elements drawn from folk beliefs. The 19th-century Romantic movement revived interest in folklore as a means to explore national identity and the imagination. Folklore's influence in literature persisted into the modern era, where it evolved to address new social realities.

4. Folklore in Modern English Fiction: Themes and Functions :-

4.1 Preserving Cultural Identity :

Modern English fiction often uses folklore to preserve and reflect cultural heritage amid rapid social change. Writers incorporate folk motifs to evoke a sense of place and history, grounding contemporary stories in tradition. For example, authors from regions with distinct folk cultures embed local myths and legends into their narratives, fostering cultural continuity.

4.2 Exploring Universal Human Experiences :

Folklore's archetypal characters and themes—such as the hero's journey, tricksters, or moral lessons—resonate universally. Modern fiction adapts these to explore identity, morality, and conflict. The use of folklore archetypes enables writers to address complex human experiences through familiar symbolic frameworks.

4.3 Social Critique and Subversion :

Some modern writers use folklore ironically or subversively to critique social norms and power structures. By reinterpreting folk tales, they expose injustices, question traditions, or highlight marginalized voices. This dynamic use of folklore challenges static or idealized views of the past.

4.4 Enhancing Narrative Depth and Imagination :

Folklore enriches modern fiction's imaginative scope, adding layers of meaning and mystery. Elements such as magic, spirits, or fate introduce fantastical dimensions that expand narrative possibilities and engage readers emotionally.

5. Case Studies : Folklore in Works of Modern English Authors :-

- **Neil Gaiman :**

Neil Gaiman's works, such as American Gods and The Ocean at the End of the Lane, integrate folklore and mythology deeply. Gaiman reimagines old gods and folk creatures in contemporary settings, exploring themes of belief, memory, and change.

- **Angela Carter :**

Angela Carter's The Bloody Chamber revisits fairy tales and folklore with a feminist lens, subverting traditional narratives to critique gender roles and power dynamics. Her stories blend gothic elements with folk motifs to challenge and reinterpret cultural myths.

- **J.K. Rowling :**

The Harry Potter series incorporates folklore and magical traditions, such as mythical creatures and spells rooted in European folklore. Rowling's use of folklore contributes to world-building and symbolizes the battle between good and evil.

6. Folklore and Postcolonial Perspectives :

Postcolonial English fiction often draws on indigenous and folk traditions to reclaim cultural identity and resist colonial narratives. Writers blend folklore with contemporary themes to articulate hybrid identities and challenge dominant histories.

7. Challenges and Criticisms :

While folklore enriches fiction, its use raises questions about authenticity, appropriation, and representation. Writers must navigate the fine line between homage and exploitation, especially when

dealing with cultures other than their own. Ethical storytelling demands respect for the source communities and contexts.

8. Conclusion :

Folklore remains a dynamic and influential element in modern English fiction. By preserving cultural memory, exploring universal themes, enabling social critique, and expanding imaginative possibilities, folklore enriches contemporary narratives. As society continues to evolve, folklore in literature will adapt, serving as a bridge between the past and present, tradition and innovation.

References :

1. Brunvand, Jan Harold. The Study of American Folklore: An Introduction. W.W. Norton & Company, 1998.
2. Dundes, Alan. Folklore as a Mirror of Culture. Utah State University Press, 1980.
3. Gaiman, Neil. American Gods. William Morrow, 2001.
4. Carter, Angela. The Bloody Chamber. Penguin Books, 1979.
5. Zipes, Jack. The Great Fairy Tale Tradition : From Straparola and Basile to the Brothers Grimm. W.W. Norton & Company, 2001.
6. Ashcroft, Bill, Gareth Griffiths, and Helen Tiffin. The Empire Writes Back: Theory and Practice in Post-Colonial Literatures. Routledge, 2002.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 168–173

Possibilities of Rapid Data Analysis in Data Science Using Vedic Mathematical Formulas: An Innovative Study from an Indian Perspective

Kavita Arya Ramani
Assist.Prof., Poonamchand Gupta Vocational College, Khandwa (M.P.)

Abstract :

Vedic Mathematics, the ancient Indian system of swift and efficient mathematical computation, has garnered renewed attention in the modern era due to its simplicity and speed. Rooted in ancient Indian scriptures known as the Vedas, this mathematical system comprises sixteen main sutras (aphorisms) and thirteen sub-sutras that offer general and specific solutions to a wide range of mathematical problems. With growing interest in computational efficiency and reduced processing time, especially in data-driven fields, Vedic Mathematics presents a compelling alternative for enhancing algorithmic performance.

This research paper aims to explore the application of Vedic mathematical formulas in the realm of data science—an emerging discipline that involves extracting meaningful insights from vast and complex datasets through statistical analysis, algorithms, and machine learning. In particular, the study investigates how selected Vedic sutras such as Urdhva-Tiryagbhyam (vertical and crosswise method), Nikhilam (base method), and Paravartya Yojayet (transpose and adjust) can be integrated into key stages of data analysis and preprocessing. These techniques, known for their mental calculation efficiency, offer promising avenues for improving the speed and accuracy of arithmetic operations, matrix calculations, and algorithmic implementations in machine learning models.

The fusion of Vedic techniques with modern computational tools not only holds potential for technical enhancement but also serves to highlight the relevance of India's intellectual and cultural heritage in present-day scientific innovation. This paper also presents a historical overview of Vedic Mathematics and its foundational principles, emphasizing its continued relevance in addressing the computational challenges of today.

Ultimately, this research is an interdisciplinary attempt to bridge ancient wisdom and modern technology, proposing a new path for culturally rooted innovation in data science. It promotes the idea that traditional knowledge systems, far from being obsolete, can actively contribute to contemporary scientific paradigms when re-examined through a modern lens.

Keywords : Vedic Mathematics, Data Science, Quick Data Analysis, Computational Efficiency, Artificial Intelligence, Mathematical Algorithms, Indian Knowledge Systems, Data Processing, Machine Learning, Vedic Formulas.

1. Introduction :

Data Science has rapidly evolved into a critical discipline in the modern era, revolutionizing the way information is processed, analyzed, and utilized across various domains. With the exponential growth of data in sectors such as healthcare, finance, education, and technology, the demand for faster, more efficient, and accurate computational techniques has become increasingly urgent. Traditional computational methods, though effective, often require significant resources and time, particularly when dealing with large-scale data sets.

In this context, ancient Indian knowledge systems offer innovative alternatives, one of the most notable being Vedic Mathematics. Originating from the Vedas, Vedic Mathematics consists of 16 sutras (formulas) and 13 sub-sutras, which provide simplified and speedy methods for complex arithmetic operations. These techniques, known for their logical structure and mental calculation potential, can significantly enhance computational speed.

This research paper aims to explore how Vedic mathematical principles can be applied in the field of Data Science to accelerate data analysis, optimize algorithmic performance, and reduce computational costs. By integrating traditional wisdom with modern technology, the study offers a novel, Indian perspective on advancing data-driven computation in a more resource-effective and culturally rooted manner.

2. Historical Context of Vedic Mathematics :

Vedic Mathematics is an ancient Indian system of mathematical knowledge, primarily found in the Vedas, especially the Atharvaveda. This system is based on 16 main sutras (principles) and 13 sub-sutras, which provide quick and logical methods for solving mathematical problems. These sutras cover areas such as arithmetic, algebra, and geometry, offering efficient techniques for operations like multiplication, division, and square roots.

One of the core features of Vedic Mathematics is its simplicity, mental calculation ability, and efficiency with minimal resources. These characteristics make it particularly relevant to today's computational demands, including those in data science. Vedic Mathematics is not just an ancient

system; it holds the potential to contribute significantly to modern scientific and technological advancements by offering innovative and fast approaches to problem-solving.

3. Principles of Vedic Mathematics :

Vedic Mathematics is founded upon a set of core principles known as sutras, which simplify complex mathematical operations into easy and logical steps. These sutras enhance mental calculation ability and reduce dependency on lengthy computational processes. Key among them are :

- **Urdhva Tiryak Sutra (Vertically and Crosswise) :** Used for rapid multiplication of large numbers.
- **Nikhilam Sutra (All from 9 and the last from 10) :** Useful for division and finding square roots.
- **Anurupyena Sutra (Proportionately) :** Helps in solving algebraic equations efficiently.
- **Sankalana-Byavakalanabhyam Sutra (By Addition and Subtraction) :** Applied for quick mental arithmetic and simplification.

These sutras, when integrated into data science, can aid in processing large datasets, optimizing matrix operations, and enhancing the performance of algorithms involved in machine learning and predictive modeling. By leveraging these principles, data analysis becomes faster, resource-efficient, and more innovative.

4. Applications in Data Science :

Data science requires the processing of vast amounts of data and the execution of complex algorithms. Traditionally, this is done using conventional algorithms that can be computationally expensive and time-consuming. However, by applying Vedic mathematics, it is possible to improve both the speed and resource efficiency of these processes.

4.1 Data Preprocessing :

In data science, data preprocessing involves cleaning, transforming, and organizing data before it is analyzed. Vedic formulas, particularly those related to multiplication and division, can be applied to speed up these preprocessing tasks, especially when dealing with large datasets.

For example, the Urdhva Tiryak Sutra can be used for efficient multiplication of large numbers, while the Nikhilam Sutra can be used for quick division and finding square roots. These formulas enable faster data transformation, thus reducing the overall time required for preprocessing.

4.2 Machine Learning :

Machine learning models, particularly those that rely on large datasets, can benefit significantly from the efficiency gains provided by Vedic mathematical formulas. The Anurupyena Sutra can be applied to optimize the training of machine learning algorithms, speeding up processes like gradient

descent and enhancing the overall performance of the model.

Additionally, Vedic formulas can be used for quick matrix multiplications, a common operation in machine learning and neural networks. This can significantly reduce the computational resources needed for training large models.

4.3 Big Data Analysis :

Big data analysis often involves complex operations on large datasets, which can be time-consuming and computationally expensive. By using Vedic mathematical techniques, the speed of big data processing can be greatly enhanced. For instance, the Sankalana-Byavakalanabhyam Sutra can help perform arithmetic operations efficiently, reducing the time taken to analyze large datasets.

5. Benefits of Vedic Mathematics in Data Science :

The integration of Vedic Mathematics into data science offers several significant advantages that enhance computational performance and efficiency:

- **Speed and Efficiency :** Vedic mathematical formulas are known for their ability to simplify and accelerate calculations. In data science, where real-time analysis is crucial, these fast computation methods can significantly reduce processing time.
- **Low Computational Resource Requirement :** Vedic techniques often require minimal computational resources. This makes them ideal for devices with limited processing power, such as embedded systems, IoT devices, and mobile platforms.
- **Algorithmic Simplicity :** The principles of Vedic Mathematics are based on straightforward logic and mental calculation strategies. This simplicity helps in designing lightweight and less complex algorithms, which are easier to implement and debug.
- **Scalability for Large Datasets :** Many Vedic methods can be adapted to handle large-scale data operations, such as matrix multiplication and pattern recognition. Their scalability allows integration into big data frameworks and cloud-based analytics platforms.
- **Cost-Effectiveness :** Since these methods reduce the need for high-end hardware and long processing times, they contribute to significant cost savings in terms of infrastructure and energy consumption.
- **Enhanced Accuracy :** The structured and logical approach of Vedic formulas reduces the chances of computational errors, thereby improving the accuracy and reliability of results in data-driven decision-making.

6. Challenges and Limitations :

While the application of Vedic mathematics in data science shows great potential, there are also some challenges and limitations that must be considered:

- **Limited Scope for Certain Algorithms :** Vedic formulas are highly effective for basic operations like multiplication, division, and finding square roots, but they may not be directly applicable to more complex operations like matrix inversion or deep learning model training.
- **Integration with Modern Tools :** Integrating Vedic mathematics into modern data science tools and frameworks may require significant adaptation and customization.
- **Learning Curve :** While the principles of Vedic mathematics are relatively simple, they may require time and effort to learn and apply effectively.

7. Comparative Analysis: Traditional vs. Vedic Algorithms :

When comparing traditional mathematical algorithms with Vedic algorithms, several key differences emerge. Traditional algorithms, such as those used in machine learning and big data analysis, are designed to handle large-scale computations and complex mathematical models. While these algorithms are powerful, they often require significant computational resources and time.

On the other hand, Vedic mathematical algorithms are designed to optimize speed and resource efficiency. These algorithms can significantly reduce the computational burden, particularly for smaller datasets or simpler operations. The Urdhva Tiryak Sutra, for example, provides a fast method for multiplying large numbers, which can be applied to data science tasks like matrix multiplication.

8. Conclusion and Future Directions :

In conclusion, Vedic mathematics offers significant potential for improving the speed and efficiency of data science algorithms. By applying Vedic formulas to data preprocessing, machine learning, and big data analysis, it is possible to reduce computational costs and time, making data science tasks more efficient.

The future directions for this research include further exploration of the integration of Vedic mathematics with modern machine learning algorithms, as well as the development of new techniques for applying Vedic formulas in big data environments. By combining the ancient wisdom of Vedic mathematics with modern computational tools, it is possible to create more efficient and effective data science models.

9. References :

1. Agarwal, R. (2016). Vedic Mathematics: A New Perspective. New Delhi: Satyam Publishers.
2. Tiwari, M. (2014). Applications of Vedic Mathematics in Modern Day Calculations. Mumbai: Vedic Academy Press.
3. Patel, D. (2018). Introduction to Vedic Mathematics and Its Applications in Computing. Ahmedabad: Sage Publications.
4. Rao, N. & Prasad, M. (2020). Artificial Intelligence and Vedic Mathematics: A Symbiotic

Relationship. Bengaluru: Oxford University Press.
5. Singh, V. (2019). Vedic Algorithms for Modern Science. New York: Springer Nature.
6. Jain, S. (2015). Mathematical Modeling in Data Science and Vedic Mathematics. Chennai: Wiley.
7. Mishra, A. (2017). Advances in Data Science and Vedic Mathematics. London: CRC Press.
8. Gupta, A. & Kapoor, R. (2021). The Role of Vedic Mathematics in Data Analysis. New Delhi: Academic Foundation.
9. Sharma, R. (2013). A Comprehensive Guide to Vedic Mathematics and Its Modern Relevance. Delhi: Pearson Education.
10. Choudhury, S. & Singh, S. (2022). Integration of Vedic Mathematics in Artificial Intelligence Systems. Kolkata: Springer India.

Asst.Prof. Kavita Arya Ramani
Poonamchand Vocational College, Khandwa (M.P.)
7049611523
9575006023
arya.kavita21@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 174–177

ENHANCING LIFE SKILLS IN ADOLESCENTS

Dr. Harpreet Kaur
56, Central Town, Ludhiana

Adolescence, a vital stage of growth and development, masks the period of transition from childhood to adulthood. Adolescent is derived from Latin verb, "Adolescence"; the literal meaning of adolescence is apparent, "to growth to maturity." It is characterized by rapid physiological changes and psychosocial maturation. It is also the stage when young people extend their relationship beyond parents and family and are intensely influenced by their peers and outside world in general. They are capable of abstract thinking, better articulation and of developing an independent ideology. These are also the years of experimentation and risk-taking, of giving in to negative, peer pressure, of taking uniformed decisions on crucial issues, especially relating to their bodies and sexuality. Actually, adolescence is thus a turning point in one's life. Now a days the life of adolescents are becoming miserable due to many reasons including inappropriate home and school environment. Through, inculcating like skills education will help our adolescents to overcome such difficulties in life.

Life Skills :

Life skills are psychological competencies and abilities for adaptive and positive behaviour that enable individuals to deal effectively with the demands and challenges of everyday life. Life skills are vital to psychosocial recovery after a crisis event and are closely linked to the concepts of behaviourable change, psychosocial well-being and resilience.

According to Powell (1995), life skills as the life coping skills consonant with the development task of the basic human developmental processes namely those skills necessary to perform tasks for a given age and gender in the following areas of human development psychological, physical, sexual, vocational, cognitive, moral, social and emotional.

Life skills are abilities for adoptive and positive behaviour that enable individuals to deal effectively with the demands, challenges and stress of everyday life adolescent is the developmental

periods during which one acquires those skills through various methods and people. If life skills are taught explicitly and in a structured meaner in schools, they would empower in addressing the quality of the tomorrow's adults decision making, critical thinking, effective communication, self-awareness. Empathy, coping with emotions, coping with stress etc. these are important life-skills in human life which are easily inculcate through education.

Life Skills Education :

Life skills education is about equipping individuals with abilities for positive and adaptive behaviour, enabling them to negative everyday life effectively. It focuses on developing psychosocial competencies and interpersonal skills that help people make informed decisions, solve problems, communicate effectively, build healthy relationship, and cope with challenges. This education aims to enhance well-being, psychosocial competence and empower individuals to take rational decisions and form healthy social relationships life skills. Education empowers the yours to choose appropriate values and behaviour which are ingredients of positive health.

Method to Enhance Life Skills :

To enhance life skills through education, various pedagogical approaches can be used including classroom discussion group tasks, educational games, role plays, and debates. These methods encourage active learning, experimental learning, and cooperative learning, forte essential skills like problems solving, communication, empathy and critical thinking.

- **Active learning strategies**
- **Brainstorming :** Encourage creative thinking and problem-solving by generating multiple ideas in a group setting.
- **Role-playing :** Provides opportunities to practice communication, empathy, and decision-making in realistic scenarios.
- **Group discussion :** Facilitate sharing of ideas, active listening, and collaboration on complex issues.
- **Debates :** Develop critical thinking, argumentation, and communication skills through structured discussion.
- **Games :** Games can be used to engage students in interactive learning, fostering collaboration and problem-solving.
- **Lectures :** While traditional, lectures can be supplemented with interactive elements like questions and discussion to enhance engagement.
- **Experiential Learning**
- **Project-based learning :** Allows students to apply their knowledge and skills in real-world

contexts, promoting, problem-solving and teamwork.

- **Field trips :** Provide opportunities for students to learn outside the classroom and connect with their community.
- **Volunteer work :** Development empathy, social skills, and a sense of responsibility by engaging in community service.
- **Internships :** Offer hands on experience in various fields, preparing students for future careers and promoting self-discovery.
- **Fostering Empathy and Social Skills**
- **Classroom discussion :** Provide platform for students to share their thought, perspective, and experiences in a supportive environment.
- **Tolerance and resilience :** Encourage students to engage with diverse cultures and perspective to develop tolerance and resilience.
- **Developing Critical Thinking and Decision-making**
- **Critical thinking :** Promote analytical skills by encouraging students to evaluate information, identify biases and make informed decisions.
- **Decision-making :** Provide opportunities for students to make choices weigh alternatives and understand the consequences of their actions
- **Problem-solving :** Encourage students to identify problems, analyze them, and develop solutions.
- **Enhancing Communication and Interpersonal Skills**
- **Effective communication :** Teach students to express their thoughts clearly, listen actively and communicate respectfully.
- **Interpersonal relationships :** Encourage students to build healthy relationships with peers, teachers and other adults.
- **Conflict resolution:** Helps students to learn to resolve conflicts peacefully and constructively.

By incorporating these methods, schools and educators can effectively enhance like skills among adolescents, preparing them for future success in education, employment and personal life. Imparting life skill training through inculcating life skill education will help our adolescents to overcome such difficulties in life. Life skill education can save as a remedy for the problem as it helps the adolescents to lead a better life.

References :

1. Powel, M.F. (1995). A programme for life skill training through interdisciplinary group processes. Journal of Group Psychotherapy, Psychodrama and Sociometry, 38, 23-34.

2. Sharma, S. (2003). Measuring life skills of adolescents in a secondary school of Kathmandu: An experience, in Kathmandu University Medical Journal, Vol. 1, No. 3, Issue 3, 170-176.
3. Bharath, S., Kumar K.U. (2008). Health Promotion using life skills education approach for adolescents in school. Development of a Model. J. Ind. Assoc. Child & Adolescent Mental Health, 4(1): 5-aa.
4. Barath Srikala and Kumar, K.V., Kishore (2010). Empowering adolescent with life skill education in school. School Mental Health Program: Does it work? Indian J. Psychiatry, 52(4): 344-349.
5. Aparna, N.I. and Raakhee, A.S. (2001). "Life skill. Education for Adolescents: Its relevance and importance." GEST: Education Science and Psychology, No. 2(19), ISSN 1512-1801.

M: 98725-05975
harpreetkr05@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 178-181

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विज्ञान शिक्षा की प्रासंगिकता

दुर्गेश कुमारी, शोधकत्री,
डॉ. जयप्रकाश सिंह, सहायक आचार्य,
शिक्षा विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूँ।

सारांश :-

वर्तमान वैज्ञानिक एवं तकनीकी युग में विज्ञान–शिक्षा की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह न केवल शिक्षा का माध्यम है, अपितु राष्ट्र निर्माण का सशक्त उपकरण भी है। प्रस्तुत शोध पत्र में विज्ञान शिक्षा की गुणवत्ता, उसके वर्तमान स्वरूप और भविष्य की संभावनाओं पर विचार किया गया है। इस सन्दर्भ से यह स्पष्ट होता है, कि प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक विज्ञान ने विद्यार्थियों की सोच और व्यावहारिक प्रवृत्तियों को प्रभावित किया है। यह शिक्षा–प्रणाली समस्याओं के समाधान, नवाचार एवं तर्क प्रणाली को बढ़ावा देती है। साथ ही, यह भी प्रतिपादित किया गया है, कि विज्ञान–शिक्षा देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। भावी विज्ञान–शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता, व्यावसायिक योग्यता, कुशल प्रशिक्षण एवं नवीनतम डिजिटल संसाधनों का समावेश अत्यन्त आवश्यक है।

प्रस्तावना :-

वर्तमान समय तकनीकी और वैज्ञानिक युग का कालखण्ड है। इस युग में विज्ञान मानव जीवन का सबसे महत्वपूर्ण एवं अभिन्न अंग बन चुका है। आज का जीवन विज्ञान के बिना अधूरा, असुविधाजनक और अप्रत्याशित हो सकता है। हम जिस युग में जी रहे हैं, उसे ''विज्ञान का युग'' भी कहा जाता है। हमारे जीवन के प्रत्येक भाग में विज्ञान की उपयोगिता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है – चाहे वह घरेलू जीवन हो, शिक्षा, चिकित्सा, उद्योग, संचार, मनोरन्जन, कृषि आदि इन सभी क्षेत्रों में विज्ञान का अधिक महत्व है। विज्ञान के अन्वेषणों में न केवल मनुष्य जीवन को सुख–सुविधाजनक बनाया है, अपितु सोचने, व्यवहार व दृष्टिकोण को भी प्रभावित किया है। इसने हमारी तार्किक व विश्लेषणात्मक क्षमता को सशक्त किया है। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं है, कि विज्ञान का हर पहलू हमारे दैनिक जीवन को प्रभावित करता है और इसे उत्कृष्ट व उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिए आवश्यक है।

विज्ञान-शिक्षा की आवश्यकता :-

विज्ञान–शिक्षा मानव जीवन के विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है, जब कभी किसी राष्ट्र या समाज में दूरगामी परिवर्तन व जनचेतना की आवश्यकता अनुभूत हुई है, तब शिक्षा को ही उसका आधार स्तम्भ स्वीकार

किया गया है। विज्ञान–शिक्षा आधुनिक समाज की आधारशिला है।

शिक्षा व अनुसंधान, सामाजिक विज्ञान, नैतिक शिक्षा एवं सांस्कृतिक विकास विज्ञान शिक्षा के अभिन्न अंग हैं। इन विषयों में समन्वय स्थापित किया गया है, जिससे हम विश्व में तीव्र गति से हो रहे परिवर्तन को समझ सकें, उनका सही आकलन कर सकें और प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकें।

वर्तमान परिदृश्य में विज्ञान शिक्षा का महत्व पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है। जटिल समस्याओं का समाधान, नवीन तकनीकों का विकास और व्यवहारिक ज्ञान की उपलब्धि आज की सबसे बडी आवश्यकता बन गयी है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में विज्ञान की स्थिति :-

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में विज्ञान–शिक्षा को विभिन्न स्तरों पर देखा जा सकता है। प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक विज्ञान एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में स्थापित है। प्रारम्भिक स्तर पर विज्ञान–शिक्षण का मुख्य उद्देश्य छात्रों में जिज्ञासा उत्पन्न करना, प्रयोगात्मक क्षमता का विकास करना एवं दैनिक जीवन से सम्बन्धित वैज्ञानिक अवधारणों की नींव रखना है।

माध्यमिक स्तर पर वैज्ञानिक अवधारणा में विस्तृत होती हैं। इनमें वैज्ञानिक सिद्धान्तों, नियमों तथा तथ्यों से परिचित कराया जाता है। उच्च शिक्षा में विज्ञान विशिष्ट शाखाओं (जैसेः भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, इन्जीनियरिंग, चिकित्सा आदि) में विभक्त हो जाता है, जहाँ विद्यार्थी गहन अध्ययन और शोध कार्य करते हैं। यद्यपि, वर्तमान शिक्षाप्रणाली में विज्ञान–शिक्षण के समक्ष कई चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं। कहीं प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी है, तो कहीं प्रयोगशालाओं और आवश्यक संसाधनों का अभाव। सैद्धान्तिक ज्ञान पर अधिक जोर किन्तु व्यवहारिक अनुप्रयोगों पर कम ध्यान भी एक विकट समस्या है। इसके अतिरिक्त रटने की प्रवृत्ति को बढावा देने वाली शिक्षण–विधियाँ और मूल्यांकन–प्रक्रियाएँ भी विज्ञान–शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करती हैं। आज के प्रतिस्पर्धी युग में विज्ञान में उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए शिक्षा प्रणाली में सुधार की आवश्यकता है, ताकि छात्रों को आलोचनात्मक सोच, समस्या समाधान और नवाचार के लिए प्रेरित किया जा सके।

विज्ञान-शिक्षा और राष्ट्रीय विकास :-

विज्ञान–शिक्षा और राष्ट्रीय विकास के बीच गहरा सम्बन्ध होता है। विज्ञान ही राष्ट्रीय विकास का सबसे महत्वपूर्ण स्तम्भ है। किसी भी देश के विकास में योगदान करने की क्षमता विज्ञान–शिक्षा में निहित है। यह तार्किक चिन्तन, समस्या समाधान, सोच–विचार की क्षमता और कौशल का विकास करती है। देश में व्याप्त सामाजिक और आर्थिक विषमताओं को दूर करने में विज्ञान द्वारा प्रदत्त ज्ञान एवं तकनीकों का उपयोग किया जा सकता है। कृषि के क्षेत्र में उत्पादकता वृद्धि, चिकित्सा के क्षेत्र में उन्नत उपचार और स्वास्थ्य–सेवाओं का विस्तार, औद्योगिक और आधारभूत संरचना के विकास में विज्ञान–शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके अतिरिक्त विज्ञान–शिक्षा नागरिकों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान करती है, जिससे वे अन्धविश्चासों और रूढिवादी विचारों से मुक्त हो पाते हैं। एक वैज्ञानिक समाज ही प्रगतिशील एवं विकसित राष्ट्र का निर्माण कर सकता है, अतः राष्ट्रीय विकास की गति को तीव्र करने तथा आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए विज्ञान–शिक्षा का

सुदृढ़ीकरण अत्यन्त आवश्यक है।

भविष्य में विज्ञान-शिक्षा :-

भविष्य में विज्ञान–शिक्षा को अधिक सक्रिय, तकनीकी सहगामी एवं नवाचार केन्द्रित होना आवश्यक है। जिस तीव्रता से विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास हो रहा है, उसे देखते हुए शिक्षा के स्वरूप में पूर्णतया बदलाव लाना होगा। पारम्परिक शिक्षा की जगह आधुनिक शिक्षण–विधियों, डिजिटल संसाधनों और व्यवहारिक प्रशिक्षण को अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए। विज्ञान–शिक्षा के साथ–साथ ताद्विषयक अन्त दृष्टिकोण तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण के समन्वय पर भी ध्यान देना होगा, जिससे छात्रों को रोजगार के आर्थिक अवसर प्राप्त हो सकें। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) मशीन लर्निंग, वर्चुअल रियलिटी (VR) और इन्टरनेट ऑफ थिंग्स (IOT) आदि जैसे नवीनतम तकनीकों का उपयोग शिक्षा को अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी एवं रोचक बना सकता है। अब पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित न रहकर प्रयोगशाला में प्रयोगों, मॉडलों और वास्तविक जीवन की समस्याओं को हल करने की क्षमता विकसित करना विज्ञान शिक्षा का भावी उद्देश्य होना चाहिये। छात्रों में रचनात्मक और नवाचार की भावना को प्रोत्साहित करने के लिये विशेष प्रयास किये जाने चाहिए।

विज्ञान शिक्षा की चुनौतियाँ :-

वर्तमान परिदृश्य में विज्ञान शिक्षा के समक्ष अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं, जिनमें कतिपय निम्नलिखित हैं :–

1. प्रशिक्षित एवं योग्य शिक्षकों की कमी।
2. प्रयोगशालाओं एवं संसाधनों का अभाव।
3. अनुसंधान एवं नवाचार को प्रोत्साहन न मिलना।
4. सैद्धान्तिक ज्ञान पर अधिक बल और व्यावहारिक अनुप्रयोगों पर कम ध्यान।
5. रटने की प्रवृत्ति को बढावा देने वाली शिक्षण–विधियाँ।

इन चुनौतियों का समाधान करके ही विज्ञान–शिक्षा को अधिक प्रभावी तथा प्रासंगिक बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष :-

वर्तमान वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के युग में विज्ञान–शिक्षा का महत्त्व पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है। यह न केवल व्यक्तिगत विकास के लिये आवश्यक है, अपितु सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति के लिये अपरिहार्य है। हमें अपनी शिक्षा–प्रणाली में आवश्यक सुधार करने, चुनौतियों का सामना करने और नवीनतम तकनीकों को अपनाने की आवश्यकता है, जिससे हम उन्नत, आत्मनिर्भर एवं प्रगतिशील भविष्य का निर्माण कर सकें। विज्ञान–शिक्षा को रोचक, व्यावहारिक एवं सुलभ बना कर हम युवा पीढ़ी को वैज्ञानिक सोच, संवर्धन एवं नवाचार के लिये प्रेरित कर सकते हैं। इससे राष्ट्र के विकास की आधारशिला सुदृढ़ होगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. गुप्ता, एस. के. विज्ञान शिक्षण विधियाँ, विनायक पब्लिकेशन हाउस, 2017

2. कौशल वी. के. विज्ञान शिक्षण सिद्धान्त एवं व्यवहार, विनीत पब्लिकेशन, 2016
3. शर्मा, आर. सी. आधुनिक विज्ञान शिक्षण, धनपत राय एण्ड सन्स, 2014
4. राव, सी. एन. आर, ''भारत में विज्ञान शिक्षा – स्थिति और चुनौतियाँ'' करन्ट साइन्स खण्ड 96, अंक 5 2009 पृष्ठ संख्या 581–586
5. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005, एन सी ई आर टी, नई दिल्ली।

वेबसाइट :

1. https://ncert.nic.in
2. https://diksha.gov.in
3. https://vigyanprasar.gov.in
4. https://nsdl.niscair.res.in

DURGESH KUMARI
RESEARCH SCHOLAR
ranjeetpalsingh@rediffmail.com
9461349589
ADDRESS : DR. JAY PRAKSH SINGH
ASSOCIATE PROFESSOR
JAIN VISHAV BHARATI LADNUN DISTT NAGAUR - RAJASTHAN
PIN CODE 341306

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 182–185
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

शहरीकरण से सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन और गाँधी

डॉ. बिन्दी कुमारी
समाज ाास्त्र विभाग, मगध वि वविद्यालय, बोधगया।

शोध सार :–

प्रत्येक समाज की अपनी एक वि ाष्ट संरचना होती हे जो उसकी विभिन्न परम्पराओं में निहित होती है। परम्पराएँ विचार करने, अनुभूति करने और व्यवहार करने के वे प्रतिमान हैं, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होते हुए समाज की विरासत को प्रकट करते हैं। इसलिए किसी भी समाज का अध्ययन उसकी संरचनात्मक वि ोशताओं और प्रमुख परम्पराओं के आधार पर ही किया जा सकता है। परम्पराओं का अध्ययन समाज की संस्कृति से जुड़ा होता है। संस्कृति किसी भी दे ा और समाज की आत्मा होती है। इसके माध्यम से हम उस समाज के जीवन की सामूहिक एवं अच्छी क्रियाओं को जान पाते हैं और यही क्रियाएँ सामाजिक जीवन की नींव बनती हैं जिस पर किसी समाज की संरचना निर्मित होती है। कोई भी संस्कृति मानव जीवन के उन गुणों की सूचक होती है जिनके आधार पर वह समूह एक वि ाष्ट समूह बन जाता है और अन्य मानव समूहों से अलग देखा तथा समझा जा सकता है। परिस्थितियाँ मानव की जीवन–यापन की पद्धतियों और स्वभाव में अन्तर उत्पन्न करती हैं और इसी के आधार पर एक संरचना दूसरी से अलग हो जाती है। भारतीय समाज भी वि व के अन्य दे ाों की संरचनाओं व संस्कृतियों से, मौलिक रूप से आध्यात्मिक उद्दे यों के कारण, अलग है।

विशिष्ट शब्द :– संरचना, संस्कृतिक, स्वभाव, मूल्य, परंपरा, विकास, अध्यात्मिक इत्यादि।

भारतीय समाज के प्रमुख आधारों को जब हम देखते हैं जिन पर यह वि ााल समाज और संस्कृति टिकी है, तो हमारा ध्यान प्रमुख रूप से दो बातों पर जाता है – प्रथम, व्यक्ति और समाज का सन्तुलित समन्वय (जिसमें व्यक्ति और समाज दोनों के कर्त्तव्या निहित हैं), एवं दूसरा, वि व–बन्धुत्व की भावना और उसका प्रसार जिसके कारण सांस्कृतिक समन्वय हो पाया है।

भारतीय समाज का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने इसकी प्रमुख संरचनात्मक वि ोशताएँ खोजने का प्रयास किया है। एम0 एन0 श्रीनिवास ने भारतीय सामाजिक संरचना की प्रमुख वि ोशता इसकी सामाजिक–सांस्कृतिक विविधता को बताया है। ड्यूमो ने श्रेणीबद्धता को भारतीय समाज का प्रमुख लक्षय माना है। उनके अनुसार इस समाज को वर्ण और जाति के ऊँचे–नीचे श्रेणीबद्ध–क्रम सोपान के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है।[1]

गाँधी गांवों के विकास में ही दे ा का विकास देखते थे। उन्होंने ग्रामीणों के समााजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिए सदा प्रत्यत्न ाील रहते थे। गाँधी जी का मानना था कि जब तक गाँव की आजादी प्राप्त नहीं होगी तब तक दे ा की आजादी का कोई अर्थ नहीं है। गाँधी जी ने देखा कि

भारत के गाँवों की स्थिति बहुत जर्जर है। ग्रामीण उद्योग–धंधे नश्ट हो रहे हैं। गाँव के लोग सरकारी सहायता पर निर्भर हैं। गाँवों की आत्मनिर्भरता समाप्त हो गई है। उसने कहा कि कमजोर गाँव का दे ा कमजोर ही रहेगा। इसलिए गाँधी जी ने सुझाव दिया कि मजबूत गाँव के माध्यम से ही स्वराज्य की स्थापित की जा सकती है। उन्होंने ग्राम स्वराज्य के लिए पंचायती राज को आव यक बताया। गाँधी जी के सुझाव का अमल करते हुए भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने 1959 में राजस्थान के नागौर गाँव में प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण की भ्रुरूआत की।[2]

नेहरू जी का मानना था कि गाँव के विकास के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण आव यक है। सत्ता गाँव वालों को दी जानी चाहिए ताकि वे अपनी समस्याओं को समझ सके तथा उसका समाधान कर सके। भारत में त्रीस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था लागू की गई है, जिसे ग्राम पंचायत, पंचायत समिति तथा जिला परिशद के नाम से जाना जाता था। इस प्रकार पंचायती राज को ग्रामीण विकास का आधार बनाया गया है।[3]

गाँधी जी गाँव के सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को अच्छी तरह से समझते थे। वह समझते थे कि पि चमी दे ाों के अर्थ ाास्त्र को ग्रहण कर हम भारत के गाँवों का विकास कदापि नहीं कर सकते। अतः उन्होंने अर्थ ाास्त्रियों से अनुरोध किया था कि वे गाँव जाकर वहाँ की परिस्थितियों को समझे और उसका ध्यान रखते हुए एक ऐसे अर्थ ाास्त्र की रचना करे जो गाँवों के उत्थान एवं विकास में सहायक हो।

गाँधी जी ने गाँव की आर्थिक समृद्धि बहाल करने के लिए सुझाव दिया कि गाँव की सम्पूर्ण साधन और जन ाक्ति का उपयोग करना आव यक है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उसने खेती, खादी तथा कुटीर उद्योग के विकास पर बल दिया। गाँधीजी ने खेती के आधुनिकीकरण की बात की तथा कहा कि जब खेतो के लिए सिंचाई की स्थायी व्यवस्था हो जायेगा तो भारत के गाँवों में आर्थिक खु ाहाली आ जायेगी और हम ग्राम स्वराज्य को प्राप्त कर लेंगे।[4]

गाँधी जी कृशि के साथ–साथ खादी के विकास पर बल दिया। उसने कहा कि यदि हम खादी का विकास कर लेते हैं तो अन्य बहुत सारे उद्योगों के विकास का मार्ग प्र ास्त हो जायेगा। गाँधी जी कहा करते थे कि खादी और ग्रामोद्योग एक दूसरे से अंतःसम्बन्धित हैं। उनके अनुसार चरखे के माध्यम से करोड़ों लोगों को रोजगार देकर बेकारी की समस्या का समाधान किया जा सकता है।

गाँधी जी गाँवों के आर्थिक विकास के लिए ग्रामोद्योगों को भी आव यक समझते थे। वे मानते थे कि उसके बिना भारत के गाँवों का आर्थिक विकास संभव नहीं है। क्योंकि केवल कृशि के बल ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था को मजबूत नहीं बनाया जा सकता। इसी बात का समर्थन करते हुए भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने भी कहा था कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए लघु, कुटीर एवं ग्रामोद्योग की स्थापना की जानी चाहिए। उसने यह सुझाव भी दिया था कि गाँवों के विकास के लिए हर संभव उपाय किये जाने चाहिए।[5]

गाँवों में आज बेकारी की गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई है। इसका कारण यह है कि कृशि तथा बड़े उद्योग ग्रामीणों को रोजगार देने में सक्षम नहीं हो पा रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में गाँवों में काम के अवसरों में वृद्धि करना नितान्त आव यक है। इसके लिए ग्रामीणों को गाँव में ही रोजगार के स्थायी उपाय करने होंगे। गाँधी जी स्वीकार करते थे कि ग्रामीणों को अपनी प्रतिदिन की आव यकताओं की पूर्ति गाँव में उत्पन्न की जाने वाली चीजें से ही

करनी चाहिए। गाँधी जी ने ग्रामोद्योग के अन्तर्गत हथकरघा उद्योग, मधुमक्खी पालन, चमड़े का ग्रामोद्योग, दिया–सिलाई का कुटीर उद्योग, छोटे पैमाने के उद्योग, रे ाम उद्योग, मिट्टी की वस्तुएँ बनाना आदि को सम्मिलित किया। ऐसे लोगों को गाँव के साधनों एवं जन ाक्ति के द्वारा संचालित किया जा सकता है तथा इसके द्वारा ग्रामीणा के आर्थिक स्तर में सुधार लाया जा सकता है। आधुनिक युग में म ाीनीकरण का प्रयोग बढ़ता जा रहा है, जिसके फलस्वरूप बड़े उद्योगों की स्थापना हुई है, उत्पादन बढ़ा है, लोगों का जीवन स्तर में सुधार हुआ है। लेकिन गाँवों की स्थिति में कोई वि ोश सुधार नहीं हो सका। गाँवों में अभी भी निर्धनता एवं बेकारी की गुंज सुनाई देती है।[6] गाँव के लोग रोटी के लिए भाहरों में जा रहे हैं। अतः ग्रामीण जनता का पालयन न हो इसके लिए पाँच बातों पर अमल करना जरूरी है। ये पाँच बातें हैं – बाजार, भाादी–व्याह, साहूकार, सरकार और व्यसन। इन पाँच बातों पर यदि रोक लगायी जाय तो गाँव में समृद्धि लायी जा सकती है।

आचार्य विनोबा भावे ने भी यही सुझाव दिया है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने और आद ार्ा ग्राम स्थापित करने के लिए ग्रामीण उद्योग–धंधों को प्रोत्साहनन दिया जाना अनिवार्य है। गाँधी जी का मानना था कि पैसे का अर्थ ाास्त्र मानव दृश्टिकोण को संकीर्ण बनाता है। उसने कहा कि स्वरोजगार के मध्यम से ही स्वालम्बन और स्वदे ाी वस्तुओं का उपयोग किया जा सकता है। वे मानते थे कि जब अर्थ ाास्त्र और जीवन में ग्रामीण दृश्टि का प्रवे ा होगा जब गाँव की बनी चीजों का उपयोग करने के प्रति जनता का दृश्टिकोण आकर्शित होगा। आज गाँव का धन भाहरों से होकर विदे ा में जा रहे हैं, जिसे रोकने की जरूरत है और यह कार्य ग्रामोद्योग के माध्यम से ही किया जा सकता है।[7]

गाँधी जी गाँव के समग्र विकास के लिए सामाजिक विकास को भी आव यक मानते थे। उसने गाँव के सामाजिक विकास के लिए रोजगार, स्वास्थ्य, ि ाक्षा, व्यवसाय विभाजन, परस्पर सद्भावना, सरकारी कृशि, छुआछुत का अंत, व्यक्ति और परिवार की स्वतंत्रता तथा सभी लोगों के लिए सेवाओं का अवसर, सामाजिक सुरक्षा आदि जरूरी है। गाँधी जी ने कहा के हमारे गाँव बिना किसी योजना के बने हैं जो विकास के दृश्टिकोण से उपयुक्त नहीं है।[8] अतः उसने नियोजित ढंग से भवन निर्माण की बात कही। उसने कहा कि सामाजिक विकास तभी संभव है जब हम सर्वादय को प्रमुखता देंगे।[9]

वर्तमान ग्रामीण भारत की स्थिति निरा ाजनक है। इसका कारण यह है कि ग्रामीण संस्कृति का लगातार ह्रास हो रहा है। ग्रामीण सामाजिक संगठन ध्वस्त हो रहा है। कार्य के आधुनिक तरीकों के प्रति लोगों का पर्याप्त झुकाव नहीं हो पाया है। ग्रामीण साज में भाोशण, अत्याचार, जातीय भेदभाव, तिरस्कार आदि जैसे दुर्गुण उत्पन्न हो गये हैं। ग्रामीणों में एकमत का आभाव दिखाई देता है। ग्रामीण जनसंख्या बढ़ती ही जा रही है। जनसंख्या वृद्धि के कारण कृशि योग्य जमीन का आकार घट रहा है। अतः गाँवों की ऐसी दयनीय द ाा में विकास संभव नहीं है। इसके लिए गाँवों में उद्योग–धंधे स्थापित करने की जरूरत है[10] ताकि ग्रामीणों को रोजगार मिल सके और उन्हें रोजगार के लिए भाहरों में ना जाना पड़े। ऐसा करके ही हम गाँवों का आर्थिक विकास कर सकते हैं।

निष्कर्ष :-

गाँधी जी ने ग्रामीण विकास का जो सैद्धान्तिक परिदृ य प्रस्तुत किया है। उसके माध्यम से गाँवों के सर्वांगीण विकास के लिए अनेक कदम उठाए गए लेकिन इस क्षेत्र में हमारी सबसे बड़ी भूल यह रही कि हम ग्रामोद्योग के विकास के प्रति गंभीर नहीं हो सके। यही कारण है कि गाँवों की द ाा में उतना सुधार नहीं हो पाया

है, जितना अपेक्षा की जाती है। आज गाँधी के रामराज्य का सपना भाहरीकरण के कारण धरी की धरी रह गई। कुटीर उद्योगों के स्थान पर बड़े–बड़े म ाीनों का उपयोग किया जा रहा है। म ाीनों के उपयोग से बेरोजगारी की स्थिति और विकराल धारण करती जा रही है। गाँधी का सपनो का भारत के लिए पुनः गाँव एवं ग्राम को समृद्ध बनाना होगा तभी भारत अपने सांस्कृतिक मूल्यों के साथ अपनी पहचान को पुनः प्राप्त कर पायेगा।

संदर्भ सूची :-

1. राम आहुजा, सामाजिक समस्याएं, रावत पब्लिके ान्स, नई दिल्ली–2008
2. डॉ0 रविन्द्र नाथ मुखर्जी – भारत में सामाजिक परिवर्तन विवेक प्रका ान, दिल्ली –2009
3. राव राम मेहर सिंह, विकास का समाज ाास्त्र – अर्जुन पब्लि ंग हाउस, दिल्ली –2009
4. राव, सी0 एच0 हनुमंथा (2004) एग्रीकल्चर, पॉलिसी एण्ड परफॉरमेंस, इन विमल जालान, द इंडियन इकॉनोमी प्रोब्लम्स एण्ड प्रोपेक्टस, पेंगुइन, दिल्ली।
5. डॉ0 गोपाल कृश्ण अग्रवाल, भारतीय समाज तथा संस्कृति – एस0 बी0 पी0 डी0 पब्लिके ान्स –2010
6. डॉ0 जी0 के0 अग्रवाल, डॉ0 एस0एस0 पाण्डेय – ग्रामीण समाज ाास्त्र, एस0 बी0 पी0 डी0 पब्लिके ान्स –2010
7. डी. के. श्रीवास्तव, भारत में धार्मिक स्वतंत्रता : एक ऐतिहासिक और संवैधानिक अध्ययन (डीप एंड डीप, नई दिल्ली, भारत 1982)
8. जी.जे. जेफरी, द व्हील ऑफ लॉ : तुलनात्मक संवैधानिक संदर्भ में भारत की धर्मनिरपेक्षता (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2003)।
9. टी.पी. त्रिपाठी, सिविल प्रक्रिया संहिता, लॉ एजेंसी पब्लिके ान इलाहाबाद।
10. नि ाु कुमार समान नागरिक संहिता संभावनाएं एवं चुनौतियाँ, नालंदा प्रका ान 2024।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 186–190

मध्य गंगा के मैदान में पुरातात्विक लौह संग्रह का एक ऐतिहासिक महत्व

राम निवास नायक
भोधार्थी (प्रा॰ भा॰ एवं ए॰ अ॰ विभाग), मगध विश्वविधालय, बोधगया।

सार :–

प्रस्तुत अध्ययन का विशय ''मध्य गंगा के मैदान में पुरातात्विक लौह संग्रह का एक ऐतिहासिक महत्व'' का एक अध्ययन है। शोध का उद्देश्य लौह धातु के उपयोग और उसके कारण हुए ऐतिहासिक परिवर्तनों का विश्लेषण करना रहा। लौह धातु के उत्पादन और उपयोग का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संरचनाओं पर प्रभाव समझना और यह देखना कि लोहे के उपयोग से कृषि, शिल्प, युद्ध और शासन प्रणाली में क्या परिवर्तन आया है। लौह युग के आगमन और उससे जुड़ी सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया का अध्ययन करना और यह समझना कि कैसे लौह धातु का प्रयोग एक नई सभ्यता के निर्माण में सहायक बना। वहीं पुरातात्विक स्थलों जैसे चिरांद, राजघाट, वैशाली आदि से प्राप्त साक्ष्यों के माध्यम से क्षेत्रीय विशेषताओं जिससे स्थानीय स्तर पर लौह धातु के प्रसंस्करण और उपयोग के भौगोलिक एवं सांस्कृतिक अंतर को देखा गया। अध्ययन कि परिकल्पना मध्य गंगा के मैदान में लौह धातु के उपयोग की शुरुआत ने क्षेत्र की कृषि उत्पादन प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया।

विशिष्ट शब्द – गंगा के मैदान, पुरातात्विक असतित्व, लौह संग्रह,एवं एतिहासिक महत्व।

परिचय :–

भारतवर्ष की ऐतिहासिक धरोहरों में मध्य गंगा का मैदान (मुख्यतः पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार) एक अत्यंत समृद्ध भू–भाग रहा है। यह क्षेत्र प्राचीन सभ्यताओं और सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र रहा है, जहाँ वैदिक काल, महाजनपद युग, मौर्य, शुंग, गुप्त जैसे अनेक साम्राज्यों का उत्थान हुआ। इस क्षेत्र में लौह धातु के उपयोग और संग्रहण की परंपरा न केवल तकनीकी दृष्टि से महत्वपूर्ण रही, बल्कि इसने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों को भी उत्प्रेरित किया।[1] यह शोध पत्र इस बात का विश्लेषण करता है कि किस प्रकार लौह संग्रहण ने इस क्षेत्र के ऐतिहासिक विकास को दिशा प्रदान की। मध्य गंगा का मैदान (पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार) भारतीय उपमहाद्वीप का एक ऐतिहासिक रूप से समृद्ध क्षेत्र है। यह क्षेत्र प्राचीन सभ्यताओं, जैसे कि मौर्य, शुंग, गुप्त आदि का केंद्र रहा है।[2] लौह संग्रहण ने इस क्षेत्र के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भौगोलिक पृष्ठभूमि :-

मध्य गंगा के मैदान को गंगा–यमुना दोआब और गंगा नदी की उपजाऊ घाटी के रूप में जाना जाता है। यहाँ की जलवायु, उपजाऊ मिट्टी और खनिज संसाधनों ने लौह धातु के उत्पादन और उपयोग के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कीं। विशेषतः चिरांद (बिहार), राजघाट (वाराणसी), और कोल्हुआ (वैशाली) जैसे स्थलों पर प्राप्त लौह उपकरणों और स्लैग (धातु अपशिष्ट) के प्रमाण इस बात की पुष्टि करते हैं कि यह क्षेत्र लौह युग के विकास में अग्रणी रहा है। गंगा के मैदान की उपजाऊ भूमि और संसाधन प्राचीन सभ्यता के विकास के लिए अनुकूल थे।[3] यहाँ की मिट्टी में लौह तत्व की उपलब्धता और इसके खनन के प्रमाण।

पुरातात्विक साक्ष्य :-

गंगा के मैदान में लौह संग्रह का पुरातात्विक संरक्षण हमारी सभ्यता की पहचान को सुरक्षित रखने का अभिन्न हिस्सा है। यह संरक्षण हमें इतिहास से जोड़ता है और आने वाली पीढ़ियों को उनकी सांस्कृतिक विरासत से परिचित कराता है। वैज्ञानिक, प्रशासनिक, और सामाजिक स्तर पर समन्वित प्रयासों से ही इस अमूल्य धरोहर को बचाया जा सकता है। इसलिए गंगा के मैदान में लौह संग्रह का संरक्षण न केवल एक पुरातात्विक कार्य है, बल्कि यह एक सांस्कृतिक जिम्मेदारी भी है।

गंगा के मैदान भारतीय उपमहाद्वीप का एक समृद्ध ऐतिहासिक और पुरातात्विक क्षेत्र है, जो प्राचीन काल से मानव सभ्यता का केंद्र रहा है। इस क्षेत्र में पाए गए लौह संग्रह, अर्थात् लोहे से बने उपकरण, अस्त्र–शस्त्र और औजार, प्राचीन भारतीय जीवनशैली, तकनीकी विकास और सामाजिक व्यवस्था की महत्वपूर्ण झलक प्रस्तुत करते हैं। इसलिए, गंगा के मैदान में लौह संग्रह का संरक्षण न केवल इतिहास के अध्ययन के लिए आवश्यक है, बल्कि यह हमारी सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखने का भी माध्यम है।

गंगा के मैदान में लौह के औजार और अस्त्र–शस्त्र का इतिहास प्राचीन काल से जुड़ा हुआ है। यहाँ के पुरातात्विक स्थल जैसे कालीबंगा, चाँदनी चौक, बक्सर आदि में लौह युग के अनेक प्रमाण मिले हैं। लौह संग्रह से यह ज्ञात होता है कि यहाँ के प्राचीन समाज ने लोहे की खेती के औजार, हथियार, गहने और घरेलू सामान बनाना शुरू कर दिया था, जिससे उनके जीवन स्तर और उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई। लौह की खोज ने कृषि, शिल्प और युद्ध कौशल में क्रांति ला दी थी, जिससे सामाजिक और आर्थिक विकास को बल मिला।

पुरातात्विक संरक्षण की आवश्यकता :-

ऐसे ऐतिहासिक और तकनीकी महत्व के संग्रह का संरक्षण अत्यंत आवश्यक है क्योंकि ये वस्तुएं नष्ट होने या क्षतिग्रस्त होने से मानव सभ्यता के अतीत के महत्वपूर्ण दस्तावेज खो सकते हैं। गंगा के मैदान की मिट्टी, जलवायु और मानव हस्तक्षेप के कारण ये संग्रह शीघ्र क्षतिग्रस्त हो सकते हैं। अतः उचित संरक्षण से इन वस्तुओं की संरचना को सुरक्षित रखना, उनकी आयु बढ़ाना और भविष्य के शोधार्थियों के लिए उपलब्ध कराना आवश्यक है।

संरक्षण के प्रमुख उपाय :- गंगा के मैदान में लौह संग्रह के संरक्षण हेतु कई कदम उठाए जा सकते हैं :-

क. संग्रहालयों का विकास– पुरातात्विक संग्रहालयों की स्थापना जहां इन वस्तुओं को नियंत्रित वातावरण में रखा जाए। जैसे राष्ट्रीय संग्रहालय, राज्य संग्रहालय और स्थानीय पुरातत्व विभागों द्वारा संरक्षण।

ख. स्थल संरक्षण – जहां से लौह संग्रह मिले हैं, उन पुरातात्विक स्थलों को संरक्षित करना, जिससे अवैध

उत्खनन और नुकसान से बचाव हो।

ग. **तकनीकी संरक्षण** – आधुनिक विज्ञान की मदद से नमी नियंत्रण, तापमान का सही प्रबंधन, और रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा धातु संरक्षण जैसे उपाय अपनाए जाएं।

घ. **शैक्षिक जागरूकता** – स्थानीय जनता और छात्रों को पुरातात्विक संरक्षण के महत्व के प्रति जागरूक करना। इससे स्थानीय लोग भी संरक्षण में सहयोग देंगे और अवैध उत्खनन पर अंकुश लगेगा।

ड. **कानूनी संरक्षण** – पुरातत्व संबंधी कानूनों का कड़ाई से पालन करना, ताकि धरोहर की रक्षा हो सके। अवैध खनन और संग्रह चोरी को रोकने के लिए सख्त दंड और निगरानी आवश्यक है।

गंगा के मैदान में पुरातात्विक संरक्षण के सामने अनेक चुनौतियाँ भी हैं। तेजी से बढ़ती जनसंख्या, औद्योगिकीकरण, अवैध उत्खनन, जलवायु परिवर्तन, और पर्यावरणीय प्रदूषण संग्रह की सुरक्षा में बाधक हैं। इन चुनौतियों से निपटने के लिए समन्वित प्रयासों की आवश्यकता है। अश्म युग के अंत और लौह युग की शुरुआत का निर्धारण (1000 ईसा पूर्व से प्रारंभ) में चिरांद, राजघाट, सौराष्ट्र, कोल्हुआ, और कुम्हरार जैसे स्थलों पर लौह उपकरणों की खोज की गई है। वहीं वैदिक साहित्य (ऋग्वेद, अथर्ववेद) में 'अयस' (धातु) का उल्लेख मिलता है, साथ ही बौद्ध और जैन ग्रंथों में भी धातु उद्योग का वर्णन। जबकि आर्थिक महत्व भी देखा जा सकता है जिसमें लौह उत्पादन ने कृषि उपकरणों में सुधार किया, कृषि उत्पादन में वृद्धि। लोहे से बने औजारों ने वनों की सफाई और नए क्षेत्रों के विकास में योगदान दिया। व्यापारिक मार्गों और शहरीकरण में सहायक होता है।[4]

सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव :–

महाजनपद काल में लोहे के शस्त्रों ने शक्तिशाली राज्यों के उदय को संभव बनाया। मौर्य और मगध साम्राज्य की शक्ति को लोहे के शस्त्रों और उपकरणों से समर्थन मिला। सामाजिक वर्गीकरण में परिवर्तन–धातु कर्मियों (लोहारों) की भूमिका में उन्नति।[5]

इस विषय पर साहित्यिक समीक्षा करते समय हमें विभिन्न ऐतिहासिक, पुरातात्विक, और समाजशास्त्रीय स्रोतों पर ध्यान देना आवश्यक है। मध्य गंगा के मैदान में लौह संग्रह और उसके ऐतिहासिक महत्व को लेकर विभिन्न इतिहासकारों और पुरातत्वविदों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से अध्ययन प्रस्तुत किया है।

राम शरण शर्मा उनकी पुस्तक ''प्राचीन भारत में भौतिक संस्कृति और सामाजिक संरचना'' में लौह धातु के प्रसार को सामाजिक संरचना में बदलाव के रूप में देखा गया है। वे बताते हैं कि लौह उपकरणों ने कृषि में क्रांति ला दी और इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती मिली।[6]

डी.एन. झा ने ''प्राचीन भारतः एक परिचयात्मक रूपरेखा'' में उन्होंने लौह युग की शुरुआत को सामाजिक परिवर्तन से जोड़ा है। झा का मानना है कि लौह उत्पादन से वनों की कटाई आसान हुई, जिससे नए कृषि क्षेत्रों का विस्तार हुआ।[7]

एच.सी. रे चौधरी नें ''प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास'' में मौर्य साम्राज्य के सैन्य बल की मजबूती में लोहे की भूमिका को रेखांकित किया गया है।[8]

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा विभिन्न स्थलों पर खुदाई से प्राप्त रिपोर्ट्स जैसे कि चिरांद, राजघाट, वैशाली इत्यादि में लोहे के उपकरणों की विस्तृत जानकारी मिलती है। यह पुरातात्विक साक्ष्य लौह संग्रह की तकनीकी और सांस्कृतिक स्थिति को स्पष्ट करते हैं।[9]

इस प्रकार त्रिपाठी, आर–एस नें वैदिक और उत्तरवैदिक साहित्यों में ऋग्वेद, अथर्ववेद, और शतपथ ब्राह्मण जैसे ग्रंथों में 'अयस' (धातु) का उल्लेख लौह युग की उपस्थिति का प्रारंभिक साहित्यिक संकेत है। वहीं बौद्ध साहित्यें में भी लोहे के औजारों और शस्त्रों का विवरण मिलता है, जो सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों को उजागर करता है।[10]

शोध का उद्देश्य :-

1. लौह धातु के उपयोग और उसके कारण हुए ऐतिहासिक परिवर्तनों का विश्लेषण करना।
2. लौह धातु के उत्पादन और उपयोग का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संरचनाओं पर प्रभाव समझना और यह देखना कि लोहे के उपयोग से कृषि, शिल्प, युद्ध और शासन प्रणाली में क्या परिवर्तन आए।
3. प्राचीन सभ्यताओं के विकास में लौह तकनीक की भूमिका को स्पष्ट करना। विशेष रूप से मौर्य, मगध और गुप्त साम्राज्य जैसे राज्यों में लोहे की भूमिका को रेखांकित करना।
4. लौह युग के आगमन और उससे जुड़ी सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया का अध्ययन करना और यह समझना कि कैसे लौह धातु का प्रयोग एक नई सभ्यता के निर्माण में सहायक बना।
5. पुरातात्विक स्थलों जैसे चिरांद, राजघाट, वैशाली आदि से प्राप्त साक्ष्यों के माध्यम से क्षेत्रीय विशेषताओं का आकलन करना। जिससे स्थानीय स्तर पर लौह धातु के प्रसंस्करण और उपयोग के भौगोलिक एवं सांस्कृतिक अंतर को जानना।
6. धातुकर्म से जुड़े समुदायों (जैसे लोहार जातियाँ) की सामाजिक स्थिति और उनके योगदान का विश्लेषण करना और समाज में उनके आर्थिक और सांस्कृतिक योगदान को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझना।

परिकल्पनाएँ :-

1. मध्य गंगा के मैदान में लौह धातु के उपयोग की शुरुआत ने क्षेत्र की कृषि उत्पादन प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया। यह परिकल्पना मानती है कि लोहे के औजारों के कारण वनों की कटाई, भूमि की जुताई और खाद्यान्न उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।
2. लौह धातु के संग्रह और प्रसंस्करण ने क्षेत्रीय आर्थिक संरचना को मजबूत किया और कुटीर उद्योगों को विकसित किया। इसमें यह अनुमान है कि लोहे से संबंधित उद्योगों (औजार निर्माण, शस्त्र निर्माण) का विकास हुआ, जिससे व्यापार और शहरीकरण को बल मिला।
3. मध्य गंगा के मैदान में लौह शस्त्रों की उपलब्धता ने साम्राज्यवादी शक्तियों (जैसे मौर्य और मगध) को सैन्य दृष्टि से सशक्त बनाया। यह परिकल्पना दर्शाती है कि सैन्य उपकरणों के रूप में लोहे का उपयोग, राजनीतिक शक्ति के केंद्रीकरण में सहायक रहा।
4. लौह धातु के प्रसार ने सामाजिक ढांचे में लोहार वर्ग की स्थिति को सुदृढ़ किया और उन्हें तकनीकी विशेषज्ञता प्रदान की इससे यह स्पष्ट होता है कि धातुकर्म से जुड़े समुदायों की सामाजिक भूमिका में वृद्धि हुई।
5. प्राचीन साहित्यिक और पुरातात्विक स्रोतों में लौह धातु का समानांतर और पूरक उल्लेख, उस युग में इसकी महत्वपूर्ण उपस्थिति को प्रमाणित करता है।

परिणाम :-

जब हम इसकी आर्थिक महत्वों कि चर्चा करते हैं तो पाते हैं कि लौह युग में कृषि विकास का लोहे के हल, फावड़े, हंसिया आदि कृषि उपकरणों ने कृषि उत्पादन में क्रांति ला दी। इससे खाद्य अधिशेष उत्पन्न हुआ जो नगरों के विकास में सहायक बना।

वहीं कुटीर उद्योग और व्यापारों में भी लौह युग एक क्रांती माना जाता है। लोहे के औजारों और शस्त्रों की मांग से संबंधित उद्योगों का विकास हुआ। इन वस्तुओं का व्यापार दूर–दराज के क्षेत्रों तक फैला। लौह युग का मुद्राओं और विनिमय में योगदान भी रही है। कुछ क्षेत्रों में लोहे की वस्तुएँ मुद्रा के रूप में भी प्रयोग की गईं। यह तत्कालीन अर्थव्यवस्था के बहुआयामी स्वरूप को दर्शाता है।

क. **सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव** – सामाजिक संरचना में परिवर्तन का धातुकर्मियों (विशेष रूप से लोहार जातियाँ) को समाज में नई भूमिका और स्थान मिला। कुछ समुदायों ने विशेष धातु विशेषज्ञता विकसित की।

ख. **सैन्य बल में वृद्धि** – लोहे के हथियारों ने राज्यों को मजबूत सैन्य क्षमता प्रदान की। विशेषतः मौर्य और मगध साम्राज्य में लोहे की तलवारें, भाले, कवच आदि का व्यापक प्रयोग हुआ।

ग. **राज्य निर्माण और विस्तार** – लोहे की मदद से नए क्षेत्रों में अरण्यनिवेशन संभव हुआ। इससे जनसंख्या वृद्धि और राजनीतिक एकीकरण को बल मिला।

निष्कर्ष :-

मध्य गंगा का मैदान लौह युगीन भारत का एक अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है। लौह संग्रहण और उसका प्रयोग केवल तकनीकी प्रगति का प्रतीक नहीं था, बल्कि इसने समग्र सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचना को प्रभावित किया। यह क्षेत्र लौह धातु के माध्यम से सभ्यता के एक नए चरण में प्रवेश करता है जो हमें प्राचीन भारत की महान धरोहर की ओर इंगित करता है। भविष्य में इस क्षेत्र में और अधिक पुरातात्विक अनुसंधान से और भी नए तथ्य सामने आ सकते हैं।

क. मध्य गंगा का मैदान लौह युगीन भारत का एक महत्वपूर्ण केंद्र रहा है।

ख. लौह संग्रहण और धातुकर्म ने इस क्षेत्र के ऐतिहासिक विकास में निर्णायक भूमिका निभाई।

ग. आधुनिक भारत के लिए यह विरासत तकनीकी और सांस्कृतिक रूप से प्रेरणा का स्रोत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. एच.सी. रे चौधरी 2. डी.एन. झा 1. राम शरण शर्मा
2. दया राम साहनी – 'आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया' 1954 पृ.–61।
3. शर्मा, राम शरण. प्राचीन भारत का इतिहास 2013 पृ.–15–19।
4. झा, डी.एन. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास 1985 पृ.–45–49।
5. अल्तेकर, ए.एस. ए स्टेट इन एंशिएंट इंडिया 1973 पृ.–12–15।
6. एच.सी. रे चौधरी, संबंधित पुरातात्विक रिपोर्ट्स और रिसर्च जर्नल्स खण्ड.।।, 5/3 1997 पृ.–125–129।
7. डी.एन. झा – 'प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास' 1985 पृ.–78–82।
8. राम शरण शर्मा – 'आयरन एंड द एग्रेरियन इकोनॉमी ऑफ एंशिएंट इंडिया', 2007 पृ.–88–93।
9. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की वार्षिक रिपोर्ट्स 2007।
10. त्रिपाठी, आर–एस– प्राचीन भारत का इतिहास, 1997 पृ.–56।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 191-196

भारत छोड़ो आन्दोलन में संयुक्त बिहार के महिलाओं का योगदान

डॉ. पूजा प्रेरणा
सहायक प्राध्यापक, सरला बिरला विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड।

सम्पूर्ण महान कार्य के प्रारंभ में किसी न किसी स्त्री का हाथ रहा है। लार्मिटन का यह कथन स्वाधीनता के संग्राम में बिहार की स्त्रियों के संदर्भ में बड़ा ही सटीक लगता है। सदियों की गुलामी से मुक्ति के लिए जो आंदोलन चला उसमें न केवल पुरूषों का ही योगदान था बल्कि स्त्रियों ने भी खुलकर साथ दिया। सारा देश इन कोमालांगिनी ललनाओं का कायल है, जिसके अमर बलिदानों को वह इतिहास, जो कभी मरता नहीं, अपने अमर पन्नों में समेटे हुए है। उन महान् स्त्रियों की भूमिका को कभी नहीं भुलाया जा सकता, जिन्होंने इस भव्य भारत मंदिर के निर्माण में नींव के पत्थर का कार्य किया है।

यह सर्वविदित है कि प्रागैतिहासिक काल में ही पुरूषों के साथ सहयोग करती आ रही है। विशेषकर भारत में जब सामाजिक पुनर्जागरण से प्रगतिशील विचारधारा जोड़ पकड़ने लगी तब स्त्रियों ने अपने महत्ता को पहचानना शुरू किया। सुभद्रा कुमारी चौहान ने खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी'' लिखकर स्त्री जाति को यह एहसास दिलाया कि वह साहस और शौर्य में पुरूषों से कम नहीं है। खासकर स्त्रियों में 1885 ई0 के राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्म के बाद काफी जागृति आयी और उन्होंने भी धीरे–धीरे राजनीतिक रंगमंच पर आना शुरू कर दिया।[1]

महात्मा गांधी के ''करो या मरो'' के बात के साथ 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन का श्री गणेश हुआ। सरकार ने रातों–रात देश के तमाम शीर्ष नेताओं को जेल की सलाखों में डाल दिया। पूरे देश में क्रांति की लहर दौड़ चली। जिसमें स्त्रियों ने भी बढ़ चढ़कर भाग लिया। अंग्रेजी हुकुमत का क्रूर चक्र शुरू हुआ फिर भी स्त्रियाँ तनिक भी विचलित नहीं हुई। बिहार ने अपने गौरव के अनुकूल आजादी की लड़ाई में भाग लिया और यहाँ की स्त्रियों ने यह जोड़े पीछे के पृष्ठों से सिद्ध कर दिया कि वे देश की अन्य किसी राज्य की स्त्रियों से कम नहीं है।

यह बात दूसरी है कि अभी हमें बिहार की प्रमुख महिलाओं के योगदान की जानकारी नहीं है। परन्तु यह तो अक्षरतः सत्य है कि बिहार की ललनाओं ने भी स्वतंत्रता संग्राम मे अपनी आहुति दी है।

1942 ई0 की महाक्रांति में भी बिहार की महिलाओं में महत्वपूर्ण योगदान किया। क्रांति 9 अगस्त को विद्यार्थियों की हड़तालों के साथ शुरू हई। पटना मेडिकल कॉलेज के विद्यार्थियों के साथ मेडिकल कॉलेज की

परिचारिकाओं ने भी हड़ताल की।[2]

अगस्त क्रांति के दौरान 9 अगस्त 1942 को राजेन्द्र प्रसाद गिरफ्तार कर लिए गये। गिरफ्तारी से बिहार में आन्दोलन का रूप काफी उग्र हो गया तथा सो सूबे में भारत छोड़ो, राजेन्द्र प्रसाद हमारे नेता हैं, कांग्रेस जिन्दाबाद, के गगनभेदी नारे सुनाई देने लगे। पटना में व्यापक रूप में प्रदर्शन, धरना एवं जुलूस के आयोजन किये गये। राजेन्द्र प्रसाद की गिरफ्तारी की खबर जब बी0एन0 कॉलेज पहुँची तब विद्यार्थियों ने एक विशाल जुलूस निकाल कर राजभवन तथा बांकीपुर जेल के सामने प्रदर्शन किया तथा पटना विश्वविद्यालय के अहाते में सभा कर विद्यार्थियों से अगस्त आन्दोलन में शामिल होने की अपील की।[3]

10 अगस्त 1942 के तीसरे पहर कदमकुआँ महिला चरखा कल्ब से महिलाओं का एक जुलूस निकाला गया। नगर के विभिन्न सड़कों से गुजरता हुआ जुलूस दीवानी अदालत की ओर से होकर कांग्रेस मैदान लौटा। वहाँ सभा हुई, जिसमें राजेन्द्र बाबू की बहन श्रीमती भगवती देवी ने सभा की अध्यक्षता की। सभा में उपस्थित प्रमुख महिलाओं में लालबहादुर शास्त्री की बहन एवं शम्भू शरण वर्मा की पत्नी श्रीमती सुन्दरी देवी और जगत नारायण लाल की पत्नी श्रीमती राम प्यारी देवी प्रमुख थी। इन्होंने अपने भाषण में सरकारी नौकरी पेशे वाले लोगों से इस्तीफा देने का कहा तथा वकीलों से वकालत छोड़ने तथा जनता से दृढ़ संकल्प के साथ हर तरह के खतरों और कठिनाईयों का सामना करने हेतु तैयार रहने को कहा। स्वतंत्रता संघर्ष में हजारीबाग जिले के सरस्वती देवी को भी नहीं भुलाया जा सकता। सरस्वती देवी के नेतृत्व में 11 अगस्त 1942 को जुलूस निकाला गया। परिणाम स्वरूप उसे गिरफ्तार कर लिया गया। उसे जब हजारीबाग से भागलपुर सेन्ट्रल जेल ले जाया जा रहा था तो नाथनगर में एक भीड़ ने पुलिस के हाथों से उसे छुड़ा लिया और एक जुलूस के साथ भागलपुर ले जाया गया। सरस्वती देवी ने भागलपुर के लाजपत पार्क में उत्तेजनापूर्ण भाषण दिया और पुनः उसे गिरफ्तार कर लिया गया।[4]

12 अगस्त का पटने में पूर्ण हड़ताल रही। विद्यार्थी, वकील, दुकानदार चाहें वे हिन्दू हो या मुस्लिम, स्त्री हो या पुरूष, सभी ने इसमें अपूर्व उत्साह के साथ भाग लिया। इसी दिन बिहार प्रदेश कांग्रेस कमिटि सिन्हा जब अखिल भारतीय कमिटि के अधिवेशन के बाद लौटे तब पटना स्टेशन पर ही गिरफ्तार कर लिये गये। दोपहर को धर्मशीला लाल के नेतृत्व में महिलाओं का एक जुलूस निकला। जब श्रीमती लाल गिरफ्तार कर ली गई तब जुलूस का नेतृत्व गोपाल प्रसाद करने लगें जिन्होंने एक दिन पूर्व ही युद्ध समिति की सदस्यता से त्याग पत्र दे दिया था।[5] शाम को कांग्रेस मैदान में जगत नारायण लाल की अध्यक्षता में एक विराट सभा हुई जिसमें यह प्रस्ताव पारित किया गया कि रेलवे, तार टेलीफोन की लाईन काट कर संचार के साधनों का बन्द कर दिया जाए, थानों, कचहरियों, कारागरों तथा अन्य सरकारी संस्थाओं पर अधिकार किया जाए तथा सरकारी अभिलेखों को जला दिया जाए।[6]

फलतः पूरे बिहार में रेल की पटरियां उखाड़ी गई, तार और टेलीफोन की लाईने काटी गई, डाकघरों, रेलवे स्टेशनों, थानों तथा अन्य सरकारी इमारतों को जलाया गया तथा पुलिस आक्रमण प्रारंभ किये गये। ऐसा करने का एकमात्र उद्देश्य युद्धकाल में सरकार को इस तरह परेशान करना था जिससे युद्ध–सामग्री भारत के बाहर पहुंच सके। इस आंदोलन को दबाने के लिए सरकार ने तेजी से अपना दमन चक्र चलाया जिसमें गोली चालन, युवकों पर कोड़े तथा बेंतें बरसाना, सामूहिक जुर्माना तथा स्त्रियों को अपमानित करना सम्मिलित था।[7]

14 अगस्त 1942 को कदमकुआं क्षेत्र में गिरफ्तार होने वाले लोकनायक जयप्रकाश नारायण की पत्नी श्रीमती प्रभावती देवी थी। 15 अगस्त को पटना सिटी स्टेशन, कदमकुआं तथा नयाटोला डाकघर तथा पटना कॉलेज के अभिलेखों को लोगों ने जला दिया।[8] अगस्त को उधर छपरा के टाउन हॉल में शांति देवी ने नागरिकों से अपील की कि वे जान पर खेलकर भी अगस्त क्रांति की चिनगारी को प्रज्जवलित करते रहें।[9]

अगस्त क्रांति की नेता शहीद फूलेना प्रसाद की पत्नी तारा रानी श्रीवास्तव को कौन नहीं जानता। 16 अगस्त को गोरी पलटन सिवान जिले से दक्षिण पूर्व लगभग 10 मील की दूरी पर बसे महाराजगंज पहुँची। फूलेना बाबू को स्वयं सेवकों ने इसकी खबर दीं। वे उसी समय चल पड़े। भीड़ बढ़ती गई, उनके पीछे–पीछे उनकी धर्म पत्नी श्रीमती तारा रानी श्रीवास्तव थी। भीड़ स्टेशन पर पहुँची, तोड़–फोड़ हुआ और आग भी लगा दी गई। रेल कर्मचारी भाग खड़े हुए। डाकघर के तार काट दिये गये। डाकघर पर तिरंगा झंडा फहरा दिया गया। उसके बाद भी भीड़ रजिस्ट्री ऑफिस पहुँची। कोठरियों में ताले जड़ दिये गये। वहां से भीड़ थाना पहुँची। थान से ब्रिटिश हुकूमत के झंडे यूनियन जैक को उतार दिया गया। उसकी जगह तिरंगा फहराने के लिए फूलेना प्रसाद ज्योंही आगे बढ़े कि गोलियां चलनी शुरू हो गई। धराधर आठ गोली खाते ही फूलेना प्रसाद वहीं ढेर हो गये।[10]

इस संबंध में मन्मथनाथ गुप्ता ने लिखा है– ''चश्मदीद गवाहों का कथन है कि आठ गोली तक फूलेना प्रसाद नहीं गिरे, नवीं गोली में उनके सिर के टुकड़े–टुकड़े हो गये। जिस समय फूलेना प्रसाद जी को गोली लगी और वह गिरे उस समय उनकी पत्नी उनके साथ थी। पति के गिरने पर इस वीरांगना ने थोड़ी देर तक रूक कर अपनी साड़ी को फाड़कर पति का सिर बांध दिया फिर वह उसी अधूरे कार्य को पूरा करने के लिए बढ़ी जिसके कारण उसके पति की यह दशा हुई थी। जब झंडा लग चुकी और वह लौटी, तो फूलेना प्रसाद शहीद हो चुके थे।[11] वहीं तारा रानी की मां और दादा भी शहीद हो गये। तारा रानी के शब्दों में– मैं वहीं खड़ी थी। मैंने देखा मेरे देवता चले गये। कहीं बहुत दूर चले गये, जहां मैं नहीं पहुंच पाती।[12] फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। सरकार ने घायलवस्था में ही उन्हें जेल भेज दिया। पुलिस ने जगलाल चौधरी के दो वर्ष की बच्ची को जानबुझकर मार डाला तथा राम विनोद सिंह के मकान को डायनामाइट से उड़ा दिया।

दरभंगा में कुलानन्द वैदिक तथा कर्पूरी के नेतृत्व में सिंघ्वारा में संचार के साधन काट दिये गये तथा कई दिनों तक तोड़–फोड़ की घटनाएं जारी रही।[13]

17 अगस्त को पुलिस ने जुलूस पर गोली चलाई जिससे एक आदमी की मृत्यु हुई तथा अनेकों घायल हुए। जानकी देवी के नेतृत्व में लोगों ने 19 अगस्त को बहेरा थाने के सभी कागजातों को आग लगा दी परन्तु जब सरकार का दमन चक्र प्रारंभ हुआ तो गांव के गांव लूटे तथा जलाए गए तथा स्त्रियों पर भी बलात्कार की घटनाएं घटी।[14]

पुपरी थाने के एक बड़े सेठ के घर पर हमला करके 1942 में पुलिस ने उनका घर लूट लिया। एक लड़का मार दिया गया। घर की बहु की इज्जत पर हाथ डाला गया किन्तु बहु ने छुरा तानकर इज्जत बचाई।[15] 11 अगस्त को हजारीबाग में श्रीमती सरस्वती देवी के नेतृत्व में जुलूस निकला। परिणामस्वरूप उसे गिरफ्तार कर लिया गया। उसे जब हजारीबाग से भागलपुर सेन्ट्रल जेल ले जाया गया था तो नाथनगर में विद्यार्थियों की एक भीड़ ने पुलिस के हाथों से उसे छुड़ा लिया और एक जुलूस के साथ भागलपुर ले जाया गया।[16] उसी दिन लाजपत पार्क में सरस्वती देवी के भाषण हुए परन्तु 14 अगस्त को वह पुनः गिरफ्तार कर ली गई। विद्यार्थियों

ने बीहपुर की एक महिला मायादेवी को भी पुलिस की हिरासत से छुड़ाना चाहा जिसके फलस्वरूप पुलिस ने गोली चलाई जिससे अनेकों मारे गये।[17]

हजारीबाग जेल से ही दीवाली की रात जयप्रकाश नारायण फरार हुए थे। वे भूमिगत रहकर आंदोलन का संचालन कर रहे थे। उनके नेतृत्व में काफी संख्या में महिलाएं भी कार्यरत थीं।

छपरा की बहुरिया राम स्वरूप देवी ने 18 अगस्त 1942 को मढ़ोरा पर ध्वज फहराया और भाषण देने शुरू किया कि गोरे सैनिकों ने सभा पर गोलियां चलायी। लोग इधर–उधर भाग किन्तु बहुरिया डटी रह। गोरे सैनिकों की गोली से एक डाली टूटकर नीचे गिरी। लोगों ने समझा की बहुरिया जी को गोली लग गयी। क्रूर भीड़ गोली की परवाह किये बगैर गोरे सिपाहियों पर टूट पड़ी। सात सिपाहियों को मारकर उनलोगों के लाशों को नदी में डूबों दिया गया। अंग्रेजी अधिकारियों को सबूत नहीं मिलने पर भी बहुरिया जी के घर में आग लगा दी। बहुरिया जी को खोजने में असफल रहें किन्तु स्वयं गिरफ्तारी दी।[18]

दिघवाड़ा प्रखंड में मलखाचक गांव के दर्जनों लड़के–लड़कियों ने आन्दोलन में भाग लिया। 20 अगस्त 1942 को मलखाचक गांव के नेता राम विनोद सिंह के घर को अंग्रेजों ने डायनामाइट से उड़ा दिया। उनकी दो पुत्रियों शारदा और सरस्वती के नेतृत्व में सभी लड़के–लड़कियां आजादी को जान हथेली पर रखकर निकल पड़ी। इन अल्प व्यस्क लड़कियों को थाना पर झण्डा फहराने के आरोप में शारदा को 14 वर्ष और सरस्वती को 11 वर्ष की सजा सुनायी गई थी।[19]

स्वतंत्रता आन्दोलन में बिहार के मुंगेर का भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वैद्यनाथ हाई स्कूल की छात्राओं ने घर–घर जाकर लोगों को अगस्त क्रांति का संदेश दिया।[20] 1952 के आंदोलन में शहीद होने वाली महिलाओं में से सबसे अधिक बिहार की थी। जिले के 20 थानों में 10 पर लोगों ने कब्जा कर लिया तथा सिमरिया घाट, रूपनगर और बछवारा रेलवे स्टेशन जला दिये गये। मन्मथनाथ गुप्त ने लिखा है, तारापुर की एक विशेष घटना यह है कि जनता पर गोली चलाने के लिए उपेक्षित फौज बुलाई गई, पर उसने गोली चलाने से इन्कार कर दिया। तब दूसरी फौज बुलाई गई।[21] अगस्त के दूसरे सप्ताह में इस जिले में दो भयानक वायुयान दुर्घटना में बचे व्यक्तियों को लोगों ने पीटते–पीटते मार डाला तथा उसके रिवाल्वर एवं कारतूस लूट लिए। इस घटना के फलस्वरूप पुलिस ने कितने गांवों को बरबाद कर दिया और हवाई जहाज से गोली बरसायी गयी जिसमें चालीस–पचास स्त्री एवं पुरूष मरे। मुंगेर के ही रोहियारा गांव के श्री भूटे गोप की पुत्री कुमारी धुतरी एवं थेथारी तेली कुमारी ठुकेरी भी वहां की स्त्रियों में अग्रणी थी। हुकेरी तेलिन कली तीन साल की एक लड़की और सात का एक लड़का, सुरनी देवी तथा उसका एक बच्चा, डोमन ठाकुर, संपतिया तथा तूरी की मृत्यु रोहियारा गांव में सरकारी विमान के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने के समय सिपाही की लगी गोली से 2 सितम्बर 1942 को हो गयी।[22] भूटो की पत्नी सोमरिया देवी का देहान्त भी पुलिस की गोली से इसी दिन हो गयी।

संथालपरगना ने भी क्रांतिकारी आन्दोलन को प्रथम पंक्ति में अपना स्थान बनाया। 26 अगस्त को देवघर में गोली चली। जिसमें अशर्फी लाल मारे गये तथा अनेकों घायल हुए। सभी बड़े–बड़े नेता गिरफ्तार कर लिये गये जिनमें पं0 विनोदानन्द झा तथा शारदा देवी प्रमुख थे।[23] जोम्बवती देवी तथा प्रेमा देवी को गिरफ्तार करने के बाद छोड़ दिया गया। यही विहंगा नामक गांव में श्री हरिहर मिर्घा की पत्नी विराजी मथियाइन भी सेना गश्त के साथ 28 अगस्त 1942 को गोली से उड़ा दी गई।

गया जिले के मुहम्मदपुर नामक गांव की प्यारी देवी को आन्दोलन में भाग के कारण गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। वहीं कैम्प जेल में 1942 में उनकी मृत्यु हो गई।[24] मानभूमि जिले में क्रांति की लपट कुछ से शुरू हुई, यद्यपि वहां संथाल और महतो लोग तीर धनुष लेकर पहले से ही तैयार थे। परन्तु अब क्रांति शुरू हुई तब उसका भंयकर हो गया। बड़ा बाजार तथा बांधवान थाने में आग लगा दी गई तथा लालपुर और लघु रमा के सैनिक कैम्पों में आग लगाने की कोशिश की गई जिसके फलस्वरूप जरगांव, कबराजगढ़ तथा मानवमार में गोलियां चली।[25] पुलिस ने पुरूलिया के शिल्प आश्रम को जब्त कर लिया और उसमें रहनेवाली लावण्य प्रभा घोष और उनकी सुपुत्री कमला घोष को गिरफ्तार कर लिया।[26]

पलामू जिले के विद्यार्थियों ने इस आन्दोलन में काफी उत्साह दिखलायां डाल्टेनगंज जेल पर प्रदर्शनकारियों ने आक्रमण कर नेताओं को छुड़ा लिया। सुश्री आर0 एम0 दास ने देहातों में घूम–घूमकर किसानों को संगठित किया। उन्होंने जपला सिमेंट फैक्टरी के मजदूरों को भी संगठित करने का प्रयास किया जिसके फलस्वरूप सरकार ने उनके विरूद्ध भारत–कानून के अन्तर्गत कार्रवाई की।[27]

शाहाबाद के शिवगोपाल दुसाध की पत्नी अकली देवी 15 सितम्बर 1942 को अपने गांव में अंग्रेजी सिपाहियों की गोली का शिकार हुई।[28] वहीं के एक गांव की फूलो कुमारी देवी की मृत्यु 1942 में जेल में ही हो गई। सहसराम में श्री रामबहादूर बार–ऐट–लॉ की पत्नी ने कुछ अन्य महिलाओं के साथ स्थानीय थाना के सामने एक छटांक बनाया और गिरफ्तारी दी।[29]

पटना जिले के ही बेलछी गांव के सुखदेव शर्मा की पुत्री सुधा शर्मा भी आन्दोलन में भाग लेकर अपनी मांगो के साथ जेल गयी थी। जहां उनकी मृत्यु हो गयी।[30] इस दौरान 27 अप्रैल 1943 को दानापुर में जुलूस निकालने के लिए राम प्यारी देवी, मनोरमा देवी, शैल कुमारी, विन्दा देवी, चन्द्रमणी देवी, आदि को तीन–तीन महीने कारावास की सजा दी गयी। और अपने मकसद में कामयाब रही। देश के स्वधीनता आन्दोलन में ऐसी अनेक क्रांतिकारी संघर्षशील ने नाम अतीत के वातायन में धूल–धूसरित है, जिन्हें आज ढूंढ़ निकालने की आवश्यकता है, ताकि आजादी की लड़ाई में हम उनके द्वारा किये गये योगदान से परिचित हो सके।

संदर्भ-सूची :-

1. कुमार अमरेन्द्र : स्वाधीनता संग्राम में बिहार की महिलाएं, हिन्दुस्तान (पटना), 15.08.1997।
2. शिवपूजन सहाय (सम्पा0) : बिहार की महिलाएं, पटना, 1962, पृ0– 320।
3. सर्चलाईट : 10 अगस्त, 1942।
4. कुमार, अमरेन्द्र : पूर्वाद्धत पटना, 1998, पृ0– 52।
5. सर्चलाईट, (पटना) 13 अगस्त, 1942।
6. नागेन्द्र मोहहन प्रसाद श्रीवास्तव, बिहार में राष्ट्रीयता का विकास, पृ0– 139।
7. वही, पृ0– 140।
8. सर्चलाईट, 15 अगस्त, 1942।
9. नागेन्द्र मोहन प्रसाद श्रीवास्तव, बिहार में राष्ट्रीयता का विकास, पृ0– 140।
10. कुमार, अमरेन्द्र : पूर्वाद्धत, पृ0– 54।

11. मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास, दिल्ली, 1966, पृ0– 62।
12. नारायण, दिनेश कुमार, बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रेरक प्रसंग, प्रकाशक विभाग, पृ0–62।
13. के0 के0 दत्त, फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार, तीसरा खण्ड, पृ0–108–109।
14. मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ0– 435।
15. एस0 एन0 पी0 सिन्हा, 'स्वतंत्रता संग्राम में बिहार की महिलाएं, आज, 15 अगस्त, 1997।
16. कुमार अमरेन्द्र पूवोद्धत, पृ0–55।
17. शिवपूजन सहाय, बिहार की महिलाएं, पृ0– 320।
18. एस0 एन0 पी0 सिन्हा, पूर्वोद्धत।
19. वही।
20. शिवपूजन सहाय, पूर्वोद्धत, पृ0– 321।
21. मन्थमनाथ गुप्त, पूर्वोद्धत, पृ0– 439।
22. के0के0 दत्ता, पूर्वोद्धत, तीसरा खण्ड, पृ0– 147–150।
23. वही, पृ0–190–91।
24. कुमार अमरेन्द्र पूवोद्धत पृ0–147–150।
25. मन्थमनाथ गुप्त, पूर्वोद्धत, पृ0– 436।
26. शिवपूजन सहाय, पूर्वोद्धत, पृ0– 320।
27. वही, पृ0–321।
28. भारत मिश्र, स्वतंत्रता–संग्राम में बिहार की महिलाओं का योगदान, आर्यावर्त 26 जनवरी 1997, पृ0– 321।
29. एस0 एन0 पी0 सिन्हा, पूर्वोद्धत।
30. कुमार अमरेन्द्र, स्वाधीनता संग्राम में बिहार की महिलाएं, हिन्दुस्तान, 15 अगस्त 1997।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 197-204

संवेदनाओं के शिल्पी विद्यावत्स जी

अञ्जनी कुमार चतुर्वेदी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, जे. एस. विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद, फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश।

साहित्य का विचार से गहरा सम्बन्ध रहा है। दरअसल साहित्य अन्तस के उद्वेलन से नई गति पकड़ता है। विचारों एवं भावों का यही उद्वेलन शब्द रूप ग्रहण कर कलम के द्वारा कागज पर रचना के रूप में उतरता है। रचना कागज पर उतर जाने के बाद समाज की धरोहर हो जाती है और उसे चर्चा में लाना लेखक का दायित्व होता है और इस दायित्व में समाज की भी महती भूमिका होती है क्योंकि कलम तभी तक जिन्दा रहती है जब तक वह सत्य सापेक्ष होकर जीने का संकल्प जीती है। जिस समाज में कलम के शूरवीर होते हैं उसे ही आने वाली पीढियाँ अपना आदर्श मानती हैं। रचनाकार अपने वैचारिक समाज को अनुप्राणित करता है और साथ में समकालीन परिस्थितियों से नई प्रेरणा लेकर अपने अन्दर और समाज के अन्दर भी सतत् परिवर्तन लाता रहता है।

एक संवेदनशील रचनाकार अपने हृदय से युग–धर्म का वाहक एवं कुशल दृष्टा भी होता है। ऐसी ही साहित्यिक अनुभूति को काव्य संवेदना के रूप में अभिव्यञ्जित करने वाले लब्धप्रतिष्ठ रचनाकार एवं हिन्दी गीतिकाव्य परम्परा की अनुपम उपलब्धि हैं विद्वत्वरेण्य श्री अनिरुद्ध त्रिपाठी 'विद्यावत्स' जी। विद्यावत्स जी गीत–काव्य परम्परा के युग–वाहक कवि होने के साथ–साथ एक सरल हृदय एवं सौम्य व्यक्तित्व की आभा से पूर्ण हैं। प्रस्तुत लेख में उनके गीतों में निहित सजग चेतना एवं संवेदनशीलता को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है। शब्दशिल्पी विद्यावत्स जी इस कसौटी पर कितने खरे उतरते है यही उद्घाटित करना इस शोध–पत्र का लक्ष्य है।

विद्यावत्स जी की सारस्वत साधना का फलक व्यापक एवं वैविध्यपूर्ण है। इनकी रचनाओं में मानवीय भावनाओं, संवेदनाओं एवं सरस अभिव्यक्तियों का सामंजस्य पूर्ण चित्रांकन हुआ है और यही शब्द संकल्पित गीत वल्लरी साहित्य के आँगन में पल्लवित, पुष्पित होकर समाज में फैले विषैले वातावरण की दुर्गन्ध को दूरकर अपनी अक्षुण्ण सुगन्ध बिखेरती है।

जनपद औरैया की साहित्यिक माटी में जन्मे विद्यावत्स जी साहित्य–साधना एवं स्वर–साधना दोनों विधाओं में पारंगत है। कसौटियों पर कसे हुए शब्द मधुर वाणी का संसर्ग पाकर जब सहृदय पाठक/श्रोता के अन्तस में उतरते हैं तब यही शब्द और स्वर का संसर्ग सहृदय के उदास मन को प्रफुल्लित कर देता है।

वर्तमान जीवन शैली में जब बाहरी चकाचौंध और भौतिक सुख ही जीवन स्तर का मापदण्ड बन गया है तब आपके शब्द–स्वर संसर्ग अपने भीतर झाँकने और उन आंतरिक अनुभवों को महसूस करने और दरकते

हुए रिश्तो को सहेजने का प्रयास करते हुए दिखाई देते हैं जो हमारी अंतरात्मा को एक अलग ही स्तर पर ले जाकर संतुष्ट करते हैं :–

प्रश्न आया गया हो स्नेह का,
दायरा बह रहा रोज सन्देह का।
और बीमारियाँ बढ़ न जाएँ कहीं,
स्वाद लें और दें प्रेम अवलेह का।। **(डायरी पृ0 सं0 –17)**

प्रेम की भावना व्यक्तित्व को आकार प्रदान करती है। जीवन की कटु विसंगतियों में भी प्रेम अपनी जीवतंता को बनाए रखता है –

तेरे स्वप्निल स्नेहिल संसर्गों से,
सौंधी-सौंधी गन्धों का संसार मिला।
वृहत् शून्य में निराकार की भटकन को,
तेरे अनुरागों से लघु आकार मिला।।

(मञ्जुल मृणालिका पृ0 सं0 24)

विद्यावत्स जी प्रेम को माँसलता के आवरण में देखने के सामाजिक चलन के प्रखर विरोधी है वे प्रेम को हृदय की पवित्र भावना के रूप में देखते हैं–

श्रद्धा की सारी समिधा अर्पित करके,
तेरे आवाहन में हाथ जलाएँगे।
बीते समव्योंहारों की जीवन गाथा,
गीतों में ढ़ालेंगें अश्रु छिपाएंगे।। **(पंचनद नाद पृ0 सं0 35)**

सच्चे प्रेम में ही पूर्णता है, समर्पण है और इसी नजर से वे वाह्य प्रेम की अपेक्षा अन्तस के अनुराग को ही सर्वोपरि मानते है–

वाह्य रूप की बात नहीं करता हूँ मैं,
वाह्य रूप दर्शन की क्षणिक महत्ता है।
मैं अन्तस की सुन्दरता का पूजक हूँ।
रूप आन्तरिक सौन्दर्य की सत्ता है।। **(पंचनद नाद पृ0 सं0 35)**

प्रेम की सौंधी महक उनके गीतों के रूप में उतरकर जीवन के तनाव कम कर देती है–

सामंजस्य बनाने होंगें
सब कर्तव्य निभाने होंगें।
अमर प्रेम का चिर प्रयोग है,
विप्रलम्भ का सुसंयोग है। **(डायरी पृ0 सं0 40)**

जीवन में कोई भी स्थिति स्थायी नही रहती, जीवन की परिस्थितियाँ भी समय के अनुसार बदलती रहती हैं और हमें हर नए रूप को चाहे–अनचाहे अपनाना पड़ता है फिर वह चाहे रिश्ते हो या भावनाएँ या कुछ और भी.....। विद्यावत्स जी जीवन के इन नाजुक क्षणों पर बेहद संवेदनशील दिखाई देते हैं–

खत को पैरों से अपने कुचल कर कोई,
कह गया दोस्ती ये खत्म हो गई।
चाहकर भी बहुत भूल से भी कभी,
उनको न देखने की कसम हो गई।। **(पंचनद नाद, पृ0 सं0 38)**

वियोग की जिन परिस्थितियों ने उन्हें जीवन के विषम पथ पर जब–जब भी छुआ और झकझोरा तब–तब उन्ही सुनहले भावों की संवेदनाओं की पलाशी गन्ध ने उनके सौम्य व्यक्तित्व से मुखरित होकर विषाक्त वातावरण को सुरभित किया है –

तुम न रूप की धूप समेंटों आँगन से,
सम्बन्धों के पाटल मुरझा जाएँगे।
जितना भी चाहो उतना आहत कर दो,
विच्छेदन के दर्द तुम्हें भी आएँगे।। (मञ्जुल मृणलिका, पृ0 सं0 24)

वेदना की विकलता को विद्यावत्स जी बहुत भावुक होकर बड़े ही शालीन तरीके से अपने कवि–हृदय मे संचरित प्रेम की आशा रूपी किरण की एक लकीर की भाँति खीचते हुए कहते हैं–

तुम तो अमृत का घट पी गए चैन से,
हमने सपने संजोये गरल के लिए।
याद रखना न रखना तुम्हारी खुशी,
हम न भूले तुम्हें एक पल के लिए।।

(औरैया जनपद की काव्य यात्रा, पृ0 सं0 45)

सच्चे प्रेम में न तो शिकायत रहती है और न ही अलग होने पर एक दूसरे के प्रति कोई ग्लानि या पश्चाताप की भावना रह जाती है। रह जाती हैं तो बस केवल चमकीली..... मद्धिम यादें।

चिर पीड़ाओं को सहकर भी,
अच्युत उनको समझ लिया था।
हो जाए सर्वस्व न्योछावर,
फिर भी ये मुख मौन रहेगा।। **(डायरी पृ0 सं0 48)**

विद्यावत्स जी की सरस सलिला की निर्झर झर में प्रवाहित गीतों की नौकाएँ कवि–गुण–धर्म की एक जीवन्त प्रतिमान की प्रतीत होती है–

तुम घनीभूत होकर हुए संकुचित,
हम सघनता में रोए विरल के लिए।
देख लेते जो सूरज को ढ़लते हुए,
भय सताता न दर्पण से मिलते हुए।
तुम सरित धार में मुग्ध हो देखकर,
विम्ब के प्रतिविम्ब हिलते हुए।
तुम सलिल विम्ब बनकर विखण्डित हुए,

हम तो अंशो मे खोए सकल के लिए।।

(औरैया नगर का एतिहासिक परिदृश्य, पृ0 सं0 101)

विद्याावत्स जी के सरस प्रवाहमान शब्दों का उद्वेग उनकी रचनाओं में चित्ताकर्षक रूप से प्लवित हुआ है। उनकी शब्द संयोजना एवं कौशल क्षमता भी प्रकृति के अनुरूप ही ढ़लती हुई अपनी सारगर्भित बात को कहती है–

सर्द मौसम बहकती हुई ये हवा,
एक ठिठुरे कुहासे का प्रारूप है।
तेरे आगोश के खास माहौल में,
कुछ उजाला लिए गुनगुनी धूप है।
गुनगुनी धूप को व्यर्थ जाने न दें,
अल्पकालीन है उम्र की दोपहर।। **(पंचनद नाद, पृ0 सं0 37)**

गीत–काव्य परम्परा के समर्थ कवि होने के साथ–साथ एक कवि सहृदय का उत्कर्ष भी विद्यावत्स जी की रचनाओं में मुखर होता है–

कोयल स्वर मौन हुए कागा की काँव में,
कैसी बदहाली है अपने ही गाँव में।
रातों में हलचल है दिन में खामोशी है,
बेरी का आदर है कदली दल दोषी है।
आँको ने पहुप धरे आमों पे बौर नहीं,
कैक्टस के आँगन में तुलसी को ठौर नहीं।।

(औरैया नगर का एतिहासिक परिदृश्य, पृ0 सं0 100)

विद्यावत्स जी का संवेदनशील हृदय कवि मर्म का अद्भुत चितेरा है और यही कवि की प्रातिभ क्षमता का परिचायक भी है–

भूखे शैशव का कोलाहल दूर कहीं जब फुटपाथों से,
लोरी सुनता थपकी खाकर पत्थर तोड़े कृश हाथों से,
रोने, सोने, जगने का क्रम जीवन दर्शन बन जाता है।
जिसने दिया उसी को अर्पण एक समर्पण बन जाता है।।
गीत कदाचित बन जाता है।। **(पंचनद नाद पृ0 सं0 34)**

अन्य पक्तियाँ भी दृष्टव्य है –

एक तरफ जिंदगी ही जिंदगी को मार रही,
एक तरफ मौत जिंदगी को ही निहार रही। **(डायरी पृ0 सं0 19)**

विद्यावत्स जी जीवन के तथ्यों की पड़ताल करते समय किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित नहीं होते हैं और वे साथ में ही 'अहो' मुखम् अहो सुखम्' के परिपालक भी नहीं है। वे एक निस्पृह साधक की भाँति व्यक्ति और समाज की अन्तश्चेतना को कागज पर आपने सरल शब्दों में उकेरते है–

बीते कल के दसियों साथी।
कल का साथी कौन बनेगा?
बना बाराती कभी जो मेरा,
क्या अर्थी को काँधा देगा ? **(पंचनद नाद, पृ0 सं0 41)**

विद्यावत्स जी की रचनाओं में सामाजिक चेतना और राष्ट्रीयता का स्वर भी पूरे तेवर और कलेवर के साथ मुखरित हुआ है जिसके माध्यम से कवि समाज और राष्ट्र की चेतना से सीधा संवाद स्थापित कर लेने में सफल हो जाता है–

गीतों को गीत बना रहने दो,
दिलों को मीत बना रहने दो।
रोको टकराव ये वजूदों का,
एक को एक बना रहने दो।। **(डायरी, पृ0 सं0 52)**

भ्रष्ट राजनेताओं, नौकरशाही एवं समाज में फाँस की तरह व्याप्त अपराधियों को सम्बोधित करते हुए वे स्पस्टता से से कहते हैं–

देश की शासन व्यवस्था पर कुहासा बढ़ रहा है,
मनुजता के सहज पथ पर मनुज उल्टा चल रहा है।

(डायरी, पृ0 सं0 27)

वे वर्तमान समाज की अनेक ज्वलंत समस्याओं का निरुपण भी निर्भीकता से करते है जब विशेषतया कलम को दबाने का प्रयास यथाशक्ति से किया जाता हो –

पूर्व नियोजित सामूहिक जन हानि कराने वाले,
कूप तड़ागों जलाशयों में गरल मिलाने वाले।
राजमार्ग मे बारूदी प्रस्फोट कराने वाले,
अनुकृति मुद्रा का प्रसार कर क्षति पहुँचाने वाले।
राजद्रोह कर विधि विरूद्ध संगठन बनाने वाले,
भोली-भाली शान्त प्रजा में भय फैलाने वाले।
नारी शिक्षा को अक्षम्य अपराध बताने वाले,
शिक्षालय परिसर में शिशु संहार कराने वाले।
किसी भाँति फहर गयी यदि इनकी राज पताका
ये आंतकी नहीं करेंगे भला कभी जनता का।

(खण्डकाव्य प्रतिरोध, पृ0 सं0 38)

राष्ट्र के स्वाभिमान में किसी भी प्रकार का समझौता न करने के विद्यावत्स जी प्रबल पक्षधर है। राष्ट्र के शत्रुओं को कड़ा एवं समुचित जबाब प्रतिकार में दिया जाए इसके वे हिमायती हैं–

स्वाभिमान पर हुआ आक्रमण संसद एक प्रतीक है,
कदम बढ़ाओ इन्द्रा जी की बनी बनाई लीक है।

सीमा के आंतकवाद का उत्तर यही सटीक है,
शिखर-वार्ता के नाटक का पटाक्षेप ही ठीक है।"

(पंचनद नाद, पृ0 सं0 40)

राष्ट्र एवं समाज की समरसता में शामिल अराजक तत्वों की विद्यावत्स जी कड़ी भर्त्सना करते हैं–

लालच में जो पड़ असत्य का पक्ष लिया करते है,
मेरे मत में वह स्वधर्म की दाह-क्रिया करते हैं।

(खण्डकाव्य प्रतिरोध, पृ0 सं0 38)

विद्यावत्स जी आरक्षण को संविधान का सकारात्मक कदम ही मानते है लेकिन वर्तमान अवसरवादी राजनीति एवं तुष्टीकरण के द्वारा योग्य प्रतिभाओं के मार्ग को अवरुद्ध करना उन्हें बहुत ही व्यथित करता है–

ये जो मन में आ गयी रिक्तता सी,
आज प्रतिभा लग रही गहरी व्यथा सी। **(डायरी, पृ0 सं0 31)**

आजकल के दौर की सोशल मीडिया की निरंकुशता और रुपहली दुनिया की अश्लीलता एवं वर्तमान भड़काऊ बयार को लेकर वे युवा–वर्ग को खासतौर पर सम्बोधित करते हुए अपनी चिन्ता जाहिर करते है–

आवरण पारदर्शी हुए आजकल
आबरू की नुमाइश है प्रत्येक पल। **(डायरी, पृ0 सं0 37)**

समाज की समरसता, प्रेम, और भाईचारे को लेकर वे बेहद चिंतनशील भी हैं और एक जिम्मेदार नागरिक की तरह जागरुक भी। समाज जागृत रहे और गतिशील भी रहे तथा इन्कलाब का घोष विस्मृत भी न हो इन्हीं भावों को अपनी लेखनी से समेटते हुए विद्यावत्स जी समाज को संबोधित करते हुए कहते है–

कैसी बही बयार हाय! इस राम कृष्ण के देश में।
ऐसा जतन करें सामूहिक श्रम शान्ति उपजाएँ,
सुख समृद्धि की औषधि को हम द्रुत गति से ले आएँ।
पथ रोका है काल नेमि ने सन्यासी के देश में।।

(पंचनद नाद, पृ0 सं0 43)

कविता साहित्य की सबसे धारदार विधा होती है और विद्यावत्स जी अपनी बुलंद आवाज से समाज और सत्ता के बीच सुसुप्त पड़ी स्वतन्त्र संवाद शैली को पुनर्जीवित कर सक्रिय संवाहक की भूमिका में आ जाते है–

चिर निद्रा के मधुर स्वप्न से,
कड़वे सच को जगने दो। **(डायरी, पृ0 सं0 27)**

अथवा

अखिल विश्व की राजव्यवस्थाएँ चलती नियमों से,
शासन का मूल्यांकन होता राजा के कर्मो से।

(खण्डकाव्य प्रतिरोध, पृ0 सं0 36)

रसातल में गिरती हुई समसामयिक राजनीति और उसके कर्णधार राजनेताओं को वे स्पष्ट रूप से

चुनौती देते है और जन चेतना जब सजग होकर शासन के भ्रष्टाचार, अन्याय, अत्याचार का विरोध करती है तब यही जन प्रतिरोध विद्यावत्स जी की वाणी से ध्वनित होता है–

जनप्रिय हो! कुछ करो आकलन कितना नीचे ग्राफ है,
जनता की पंचायत में स्पष्ट सूपड़ा साफ है।

(डायरी, पृ0 सं0 29)

साथ में समाज को ऐसे भ्रष्ट आचरण वाले राजनेताओं–नौकरशाही के गठजोड़ के आगे नतमस्तक होने से रोकते हुए समाज में वे एक सजग प्रहरी की भाँति डटे हुए खड़े है और साथ में इस तीक्ष्ण धार को वे कुंद भी नहीं पड़ने देते हैं–

अपमानित कुंठित हम सबको तब संघर्ष सटीक लगा,
तेरे आगे रोने से तो तुमुल घोष ही ठीक लगा।

(डायरी, पृ0 सं0 57)

समसामयिक अव्यवस्था से खिन्न विद्यावत्स जी अपने अन्तस की व्याकुलता, पीडा एवं छटपटाहट की कसक को अपने कवित्व शक्ति की उर्वर भूमि में अपने शब्दों के बीजारोपण द्वारा दूर करते हैं –

चौराहे के माहौलों में रहना जिनकी फितरत है,
उनको मेरी तनहाई भी शौहरसानी लगती है।
रूबाई की मानिन्द कोई आ जाता जब जीवन में,
भूली हुई गजल भी मुझको हिफ्ज जुवानी लगती है।
कशिश के अश्कों की तल्खी जब ढल जाती है लफ्जों में,
खैर माँगती बाजारों में कबिरा वाणी लगती हैं।।

(औरैया नगर का एतिहासिक परिदृश्य, पृ0 सं0 101)

प्रज्ञा को चिन्तन का आधार बनाकर अपने अन्तस के भावों को सहेज कर उनमें किसी कुशल चित्रकार भी भाँति रंग भरते हुए विद्यावत्स जी नजर आते है।

मन विचरने लगा जब सुख लोक में,
सत्यता तब निज व्यथा कहने लगी।
चेतना मुड़कर हुई प्रतिगामिनी,
मत्स्य सी दुःख सरित में बहने लगी।
आधियाँ वैराग्य की एसी चली,
वासना की होलिका दहने लगी।।

(खण्डकाव्य प्रतिरोध, पृ0 सं0 42)

अन्य पक्तियाँ भी चित्ताकर्षक है–

जब भी कुछ पहचान बनी है,
तब तू और अधिक खोया है।
हर एक बार नया सम्बोधन,

अपना सिर धुन-धुन रोया है।। **(पंचनद नाद, पृ0 सं0 39)**

विद्यावत्स जी अपने बैचेन मन की अकुलाहट को भी अपनी स्वप्रेरणा से साक्षी होकर शब्दों को आकार होते है –

उनके मन की उनके मन में,
मेरे मन में मेरे मन की।
उथल-पुथल जब भी आती है,
बेला होती नए सृजन की।। **(डायरी, पृ0 सं0 29)**

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि विद्यावत्स जी की रचनाधर्मिता ही उनकी सारस्वत साधना का नवनीत है। गीतकार ने अपनी लेखनी से साहित्यिक वातावरण में अपने काव्य शिल्प एवं संवेदना की हदयस्पर्शी छाप छोड़ी है। श्रेष्ठ साहित्यकार एवं समीक्षक मनीषीप्रवर पं0 ओम नारायण चतुर्वेदी 'मञजुल' जी विद्यावत्स जी की रचनाधर्मिता के विषय में कहते हैं –

"संवेदना के बिना कोई भी कवि कर्म अधूरा ही माना जाता है
और लब्ध प्रतिष्ठ गीतकार विद्यावत्स जी का कवि कर्म
इस मानण्ड पर खरा उतरता है।"

विद्यावत्स जी अपने गीतों की तासीर से वैविध्यपूर्ण भावों एवं संवेदनाओं को स्पर्श कर मूक पड़ी हुई अनुभूतियों को स्वर देते हुए दिखाई पड़ते है। उनके गीतों में एक नव्य सार्थक उद्देश्य ध्वनित होता है तथा साथ में ही वे अपनी सरस वाणी से समाज की सुप्त चेतना जागृत करने से भी तत्पर दिखाई पड़ते हैं।

उनके गीतों की सौंधी महक टुटे हुए अन्तस के छालों पर एक शीतल मरहम का कार्य करती है। एक क्राँतदृष्टा गीतकार के रूप में विद्यावत्स जी वर्तमान समाज की विसंगतियों को दूर करने का प्रयास करते हुए एवं चेतना के स्तर पर विचारों एवं संभावनाओं के नये गवाक्ष खोलते हुए नजर आते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. औरैया नगर का एतिहासिक परिदृश्य (प्रथम खंड) –लेखक, संपादक पं0 ओम नारायण चतुर्वेदी 'मंजुल' प्रकाशक, औरैया हिन्दी प्रोत्साहन निधि प्रकाशन वर्ष 2000
2. औरैया जनपद की काव्य यात्रा – डॉ0 प्रभा चतुर्वेदी, प्रकाशन औरैया हिन्दी प्रोत्साहन निधि, प्रकाशन वर्ष 2014
3. पंचनद नाद– सं0 अनिरुद्ध त्रिपाठी 'विद्यावत्स', प्रकाशक साहित्य भारती, प्रकाशन वर्ष 2005
4. प्रतिरोध – अनिरुद्ध त्रिपाठी 'विद्यावत्स', प्रकाशक निखिल प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2024
5. मंजुल मृणालिका– सं0 ओमनारायण चतुर्वेदी 'मंजुल,' प्रकाशक ओम नारायण चतुर्वेदी 'मंजुल' प्रकाशन वर्ष 1998
6. अनिरुद्ध त्रिपाठी 'विद्यावत्स' डायरी संकलन।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 205–210

वेदों में योग का महत्व

डॉ. राम कृपाल
सहायक प्रोफेसर, भारतीय भाषा विभाग (संस्कृत), म. गां. अं. हिं. वि. वि. वर्धा, महाराष्ट्र।

सारांश :-

वैदिक वाङ्मय के सर्वोत्तम ग्रन्थ वेद ही माने गये हैं। भारतीय संस्कृति में इनका स्थान सर्वोपरि है। 'वेद' शब्दविद धातु में घञ प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है जिसका शाब्दिक अर्थ 'ज्ञान के ग्रन्थ' हैं। इतना ही नहीं है इसी धातु से विदित (जाना हुआ), विद्या (ज्ञान), विद्वान (ज्ञानी) जैसे उपमा सूचक शब्द प्रयुक्त किए गये हैं। वैदिक वाङ्मय में इन्हें 'वेद त्रयी' के नाम से जाना जाता है। वर्तमान समय में संसार के समस्त जनमानस ने माना है कि योग एक जीवन पद्धति है। जिसे दिनचर्या का एक महत्वपूर्ण बनाया जाना चाहिए। वेदों को संसार की समस्त रचनाओं में प्राचीन एवं सर्वोत्तम बताया गया है। सृष्टि रचना के उपरांत (चार ऋषि अग्नि, वायु, आदित्य, एवं अंगिरा) जिन्हें स्वयं परमात्मा ने वेदों का ज्ञान दिया। परमात्मा ने वेदों ज्ञान के साथ–साथ योग विद्या का भी ज्ञान दिया। योग साधना के बाद वैदिक मंत्रों के दर्शन किए होंगे। वेदों में योग एवं आयुर्वेद विषयक वर्णन कई स्थानों पर प्राप्त होते हैं। भारतीय साहित्य में वेदों को समस्त ग्रन्थों का प्राण माना गया है। वेद एक ऐसा ग्रन्थ है जो सूर्य के समान स्वयं तो प्रकाशित है ही परन्तु अपने साथ–साथ संसार के समस्त चराचर पदार्थों एवं प्राणियों को भी प्रकाशित करता है। वेदों का मूल विषय अध्यात्म के शिखर पर पहुंचना इन समस्त क्रियाओं में योग को महत्वपूर्ण माना गया है। वेदों के विभाजित ग्रन्थ ब्राह्मण एवं आरण्यक में ज्ञान योग की समस्त अवस्थाओं का वर्णन प्राप्त होता है जिसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियां एवं कर्मेन्द्रियों, पंच वायु महा भूत तथा मन द्वारा निर्मित स्थूल शरीर का वर्णन प्राप्त होता है। योग साधना के माध्यम से वेदों में दिये गये समस्त कार्यों को यज्ञादि से पूर्व में करने वाला अभ्यास बताया गया है। वेदों में नाड़ी व प्राणि विज्ञान के वर्णन की बहुलता भी दृष्टब्य होती है। इसमें यम–नियम, सुपाच्य आहार, शरीर क्रिया विधि, मंत्र योग एवं लय योग का वर्णन बड़े ही सरल एवं सहज ढंग से प्राप्त होता है। इन समस्त क्रियाओं के साथ–साथ वेदों में आयुर्वेद एवं शरीर विज्ञान का भी वर्णन दृष्टिगोचर होता है और आयुर्वेद को अमृत की संज्ञा दी गयी है अगर आयुर्वेद नहीं होगा तो जीवन जीना दुष्कर हो जाएगा।

योग का मूल उद्देश्य आत्मा से परमात्मा का मिलन। जब आत्मा से परमात्मा का मिलन होगा तब मानव वनोषधियों की तरफ आकर्षित होगा और निरोगी जीवन की परिकल्पना साकार कर सकेगा। वेदों में उपवास को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। उपवास द्वारा मानव पानी पीकर शरीर को स्वस्थ रख सकता है। योग शास्त्र कोई नया विषय नहीं है यह प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। वेद एवं पुराण शास्त्र कारों ने योग शास्त्र को

जीवन की अमूल्य धरोहर की संज्ञा दी गयी है जो प्राचीन काल से अनवरत गुरु शिष्य परम्परा के रूप में चली आ रही है। यह एक ऐसा शास्त्र है जिसमें वाद–विवाद के लिए कोई स्थान नहीं है। भारतीय एवं व्यवहारिक जीवन में योग एक ऐसी कला है जिसे लोगों ने अपने दैनिक जीवन में उतार कर सिद्धियों को प्राप्त करने का कार्य किया। वेदों में योग का अर्थ इन्द्रियों से अलग करना नहीं बल्कि आवृत्त करना था। जब वैदिक वाङ्मय की लिखित रचना 500–600 ईंसापूर्व तक योग का अर्थ इन्द्रियों पर नियंत्रण करना परिभाषित किया जाता था। ऋग्वेद विश्व साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ है जिसमें आयुर्वेद तथा योग का उल्लेख प्राप्त होता है। योग का उद्भव वेदों से ही माना जाता है। कुछ पाश्चात्य एवं आधुनिक विचारकों के अनुसार योग में सिंधु कालीन सभ्यता का योगदान माना जाना चाहिए है परन्तु आयुर्वेद एवं योग आधुनिक बिचारक प्रोफेसर हरी लाल वर्मा जी कहते हैं कि सिंधु कालीन सभ्यता वैदिक वाङ्मय का ही अंग है क्योंकि योग का उद्भव वैदिक काल में ही हुआ।

प्रस्तावना –

योग साधना के द्वारा ऋषियों–मुनियों ने अनेकानेक सिद्धियों को प्राप्त किए और वनस्पति अर्थात आयुर्वेद का सेवन करते हुए हजारों वर्षों की आयु को प्राप्त करते थे। योग एवं आयुर्वेद दोनों धरा के अमूल्य धरोहर कहे गये हैं। एक के अभाव में दूसरे की परिकल्पना नहीं की जा सकती है।[1] योग एवं आयुर्वेद गुरु शिष्य परम्परा के रूप में अनवरत चले आ रहे हैं। आयुर्वेद एक ऐसा शास्त्र एवं योग एक ऐसी कला है जिसे अपनाकर मानव अपने कृतार्थ महसूस कर रहा है। 600–800 ईसापूर्व तक वेदों में योग के अर्थ को अलग ढंग से परिभाषित किया जा रहा था किन्तु ऋग्वेद में जो योग विषयक वर्णन प्राप्त होते हैं उनमें योग के द्वारा इन्द्रियों को नियंत्रित करना बताया गया है।[2] योग का उद्भव भी वेदों से माना जाता है। योग साधना के द्वारा जो मनुष्य अनेकानेक सिद्धियों को प्राप्त करने की चाह रखते हैं उन्हें देह में बहने वाली नाडियों को मूल बंध एवं जालंधर की सहायता से कुम्भक लगाकर प्राणों को नियंत्रित करते हैं तो सम्पूर्ण शरीर में एक विशेष ऊर्जा का संचार होने लगता है।[3] सामवेद में 'रथेभिः' शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है जिसका तात्पर्य 'योग साधना' ईश्वर प्राप्ति हेतु शरीर में जीवात्मा का निवास होना चाहिए किंतु केवल देह से साधना एवं परमात्मा की प्राप्ति भी सम्भव नही है।[4]

वेदों में योग एवं आयुर्वेद के माध्यम से सुषुम्ना नाड़ी एवं प्राणायाम की व्यापक व्याख्या की गयी है। प्राणायाम के माध्यम से समस्त राग द्वेष वृत्तियां समाप्त हो जाती हैं।[5] आयुर्वेद में तो योगाभ्यास के माध्यम से शरीर के अवयव जैसे–वाणी, नेत्र, श्रोत, नाभि एवं उपास्थ वायु की शुद्धि का उल्लेख प्राप्त होता है।[6] वेदज्ञान प्राप्त करने के वे साधन है जिनके माध्यम से समस्त योग शास्त्र की सत्य विद्यायें प्राप्त की जा सकती हैं। आचार्य सायण के अनुसार वेद इष्ट की प्राप्ति एवं अनिष्ट का परिहार एवं लौकिक उपाय को बतलाने वाले साधन कहे गए गये हैं । वेद ज्ञान के वे अक्षय को कोश है जिसमें सभी विषयों का समावेश दिखायी पड़ता है। मनुस्मृति में कहा गया है,– **"वेद अखिलो धर्ममूलम"।**

वेद समस्त धर्मों का मूल है, वेद परमात्मा के निःश्वास स्वरूप हैं। वेद योग एवं आयुर्वेद मानव जीवन के समन्वयक सेतु कहे जा सकते हैं जिन्हें अपना कर व्यक्ति जीवन को सुख पूर्वक व्यतीत कर सकता है।

बीज शब्द –

वेद अखिलो धर्ममूलम, इष्ट–अनिष्ट, लौकिक ग्रन्थों वेदयतित सा वेदः निश्वासित वेदः, सार्वभौमिकता, ईश्वर प्राप्ति, प्रणायाम् वैदिक परम्परा, आयुर्वेद आरोग्यः, यम–नियम।

शोध प्रविधि –

प्रस्तुत शोध आलेख में विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक शोध पद्धति का उपयोग कर निष्कर्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

आयुर्वेद एवं योग भारत वर्ष की अमूल्य निधि है। वैदिक परम्परा के सर्वप्रथम ग्रन्थ वेद ही माने जाते हैं। वेदों का भारतीय संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। योग का मुख्य आधार वेद ग्रन्थों में ही सार्वभौमिकता दी जाती है जिसमें रंचमात्र भी संदेह नहीं किया जा सकता है। यद्यपि वेदों में नियम पूर्वक योग का वर्णन तो प्राप्त नहीं होता है किंतु बीज रूप में यत्र तत्र सर्वत्र योग रूप अनुकरण अवश्य दृष्टिगोचर होता है। वेदों में अनेक ऐसे मंत्र पाये जाते है जो योग का सविस्तार वर्णन करते है। भगवान शिव के बाद वैदिक ऋषि–मुनियों ही योग का शुभारम्भ माना जाता है। तत्पश्चात् महावीर स्वामी, महात्मा बुद्ध, स्वामी विवेकानन्द आदि महापुरुषों में यथासभंव योग को विस्तरित रूप प्रदान किया। महर्षि पंतजलि ने इसे सुव्यवस्थित करने का कार्य किया है। योग का शाब्दिक अर्थ जोड़ना अर्थात् वृद्धि करना या संगठित करना। योग के अभाव में किसी कार्य की सिद्धि संभव नहीं है।

'यस्मद्भते न सिद्ध यति प्रज्ञा विपरश्चितश्चन सा धीना योगमिन्वतिः।[7]

योग कर्म के विना विद्वत्ता जनों द्वारा कोई भी यज्ञ कर्म सिद्ध नहीं होता है। योग क्या है? यह चित्तवृत्तियों का निरोध रूप है। वह कर्तव्य स्वयं के कर्म मात्र में व्याप्त हैं। इससे हमें कर्म द्वारा ज्ञात होता है कि योग वाह्य वृत्तियां न होकर आंतरिक वृत्तियों का नाम योग है अर्थात मन की एकाग्रता ही योग है। योग एवं आयुर्वेद में बताया है कि मन संसार की सर्वोत्तम ज्योति है। मन की जागृति अवस्था में ही नहीं अपितु स्वप्नावस्था में चलायमान रहता है। अतः मन को शांत करने के लिए योग रूपी साधना में लीन होना ही सर्वोत्कृष्ट है। श्रुतियों के अनुसार मुख्यतः चार अंतःकरण स्वीकार किए गये हैं।

''मनश्चमनतव्यं च वुद्धिश्च बौद्धत्यं चाहकार
श्चाहङ्.कर्तव्यं च चित्त्त च चेतपितत्य च।''[8]

मनन करने वाला मन, निश्चय करने वाली बुद्धि, अभिमान करने वाला अहंकार, चिंतन करने वाला चित्त। ये चार प्रकार के अंतःकरण स्वीकार किए गये हैं। इन चारों अंतःकरणों को योग रुपी साधना के माध्यम से ही इन पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

यज्जाग्रतो इरमुदैतिछ दैवं तद् सुप्तस्य तथैषेति
इरगम ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्येमनः शिवशंकल्पमस्तुत।[9]

मन के प्रायः दो गुण होते है – जागृतावस्था एवं सुप्तावस्था दोनों अवस्थाओं में मन दूरगामी होता है। मन को ज्योतियों का ज्योति कहा जाता है। मन की कोई सीमा नहीं होती है। मन पलभर में ही सम्पूर्ण विश्व की परिक्रमा कर सकता है। जागृतावस्था में भी मन एवं तन दोनों परिभ्रमण किया करते है। ज्ञात–अज्ञात दृश्य –अदृश्य अननभूत – अनभूत, सभी प्रकार के पदार्थ स्वप्न में भी दृष्टिगोचर होते है। इन अवस्थाओं के द्वारा सुख और दुख का अनुभव प्राप्त होता है। इसलिए ऋग्वेद में मनीषियों ने कहा है –

योगे योगे तवस्तरं वाजे-वाजे हवा महे
स्खयजनाः इन्द्र भूतये ।।[10]

योग की क्रियाओं से प्रत्येक पुरुष के व्यकित्व विकास, बौद्धिक विकास, मानसिक विकास, परिवारिक विकास, सामाजिक, आध्यात्मिक एवं स्वास्थ्य संरक्षण आयुर्वेद के माध्यम से रोगोंपचार होता है, योग साधना क्रिया में प्रत्येक अभ्यांतर योग यज्ञ में प्रभु इन्द्रदेव आपको ही आमंत्रित करते हैं। क्योंकि आप ही शक्तिशाली एवं सबके रक्षक हैं। वेद मंत्रों का अर्थ प्रमुख रूप से तीन प्रकार से स्पष्ट किया जाता है–

1. अध्यात्मिक 2. अधियज्ञ 3. अधिदैविक

आध्यात्मिकता का अर्थ सृष्टि एवं अति सृष्टि का वर्णन करना है जो कि योग ज्ञान से युक्त होता है। ऋषि पंतजलि ने अपने योगसूत्र में इसका उल्लेख किया है।[11] मनुष्य योग साधना एवं कठोर तप से समाधि के निकट होते है। आध्यात्मिक प्रगति इस बात पर निर्भर नहीं करती है कि हम कितना समय अभ्यास पर दे रहे हैं परंतु इस बात पर निर्भर अवश्य करता है कि हम कितने समर्पण भाव से ऊर्जा अपनी योग साधना में डाल रहे है 'समाधि ईश्वर को समर्पण से प्राप्त होती है'। योग का वर्णन अत्यंत एवं व्यापक रूप में वेदों में ही प्राप्त होता है जिसका आयुर्वेद ही मूलतत्व है जो शरीर को वलिष्ठ बनाने का कार्य करता है। उच्च चैतन्य की प्राप्ति करना, रीतियों का विकास, श्रमनिक परम्पराओं का विकास उपनिषदों की परम्पराओं द्वारा भी विकसित हुआ है।

समेशुचौ शर्करा वहिन वालुका,
विवर्जिते शब्द जलाश्रयदिभिः।
मनोअनुकूल ना तु चक्षुपीडने
गुहा निवाता श्रमण प्रयोजयेतयेत।।[12]

लौकिक समाधि एवं लोकोत्तर समाधि को प्राप्त करने के लिए यजुर्वेद के उपासकों द्वारा समाधि की अवस्था एवं आकांक्षा को ईशावास्यमिदं के प्रथम श्लोक के माध्यम से ज्ञान व आत्मज्ञान प्रयुक्त किया जा सकता है।

ईशावास्यमिदं सर्वयत्किंच जगत्याजगत ।
तेन भुक्तेनं भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।[13]

वह परमेश्वर जो सम्पूर्ण जगत पर शासन करता है। वह समस्त जीवों की आत्मा होते हुए प्रत्यगात्मा रूप में होने के कारण उसी रूप वाले आत्मा से यह आच्छादनीय है। जिस प्रकार चंदन अंगरू आदि जल से संबंध में होने पर गीलेपन से उत्पन्न होने वाली पारमार्थिक गंध भी आच्छादित हो जाया करती है। अतएव त्याग पूर्वक आत्मा का पालन करे यही वेदार्थ तत्व है योग जनों को योग सिद्ध प्राप्त होती है ऐसा श्रुतियों में कहा गया है –

यदेवं विद्या करोति।
श्रद्धयोपनिषदात देववीर्यत्तरं भवतीति।।

अर्थात् जो मनुष्य विद्या श्रद्धा योग से युक्त होकर जिस कर्म को साधना रुपी अभ्यास के द्वारा करता वहीं उसकी साधन रूपी अभ्यास अत्यधिक बलवती हो जाती है और वहीं सिद्धि प्रद हो जाया करती है –

तमेव विद्वान न विभागमत्यो।

वहीं मनुष्य जो परमात्मा को जानने वाला है आत्मदर्शी योगी मृत्यु से भी भयभीत नहीं होता है –

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं बाधास्याहं

स्युष्टे सत्याइहाशिषः।।[14]

हे! परमपिता परमात्मा यदि मैं तु हो जाऊं और तु में मैं हो जाऊं तो इस लोक में तेरा आदेश एवं सहयोग की भावना सत्य सिद्ध हो जाएगी। तब योगी जन अपने योग के माध्यम से चरमोत्कर्ष को प्राप्त हो सकेगें–

वेदाहमेतं पुरूषमहान्तं

मादित्यवर्ण तमसः परस्तात

तमेव विवित्वाति मृत्युमति

नान्यः पन्थाविद्यतेऽन्येमान्या ।। [15]

श्यान के विषय में वेदों में कहा गया है :

आरोह तिमरोज्योतिः।

अर्थात, ध्यान करने से ध्यानी पुरुष को परम ज्योति मिलती है और उसके जीवन में अधंकार नहीं रह जाता है –

पुण्डरीकं नवद्वारंत्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।

तस्मिन यद् यक्षमात्मन्वत तद् वै ब्रह्मविदो विदुरू ।।[16]

ध्यान समाधि के द्वारा सभी प्रकार ज्ञान प्राप्त किये जा सकते है। धारणा की अवस्था में चित्तवृत्तियों को लगाया जाता है। इस संसार में जड़ चेतन सब कुछ परमात्मा का रचाया हुआ है। इसलिए उसके द्वारा हमें जो भी सौंपा जाए केवल उसी का उपयोग करना चाहिए। अनावश्यक पदार्थों का सेवन में हमें नित्यप्रति छोड़ देना चाहिए। क्योंकि यह धन किसी व्यक्ति विशेष का नहीं है उसी परव्रह्म का ही है जिस पर हमारा कोई अधिपत्य नहीं है इसके आगे प्राणिधानी का विवरण प्राप्त होता है।

कुवंन्नवेह कर्माणि जिजीबिषेच्छ्त समाः।

खं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरः।।[17]

परमात्मा द्वारा रचाये गए इस अनुशासित जगत में मनुष्य की सौ वर्ष आयु योग एवं आयुर्वेद के माध्यम से बतायी गयी है। मानव जब अनुशासित होकर कर्म करता है तो उन कर्मों में लिप्त नहीं होता है। परमात्मा का संदेश इस प्रकार के जीवन जीने से बिकार मुक्त हो जाता है जिससे साधक का परम कल्याण होता है। इतना ही नहीं है। यजुर्वेद के एक मंत्र में व्रत का भी वर्णन प्राप्त होता है जिस तुलना स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यम से की हैं। और उसके अर्थ का निरुपण भी किया है –

व्रतेन दीक्षायाप्नोति,

दीक्षायाप्नोति दक्षिणाम्।

दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति,

श्रद्धाया सत्यमाप्यते।। 18

किसी व्रत को करने से साधक को जो दीक्षा प्राप्त होती है एवं दीक्षा में ईश्वर के द्वारा जो दक्षणा प्राप्त होती है। जिससे सत्याचरण के प्रयास से परमार्थ का सुख भी प्राप्त होता है। इस व्रत को यम के समकक्ष रख सकते है। क्योंकि पंतजलि योग सूत्र में महाव्रत की संज्ञा यम को दी गयी हैं।

निष्कर्ष :-

उपर्युक्त तथ्यों के विवेचन से स्पष्ट होता है कि वेदों में योग एवं आयुर्वेद का घनिष्ठ संबंध है योग के बिना व्यक्ति सुखी और निरोगी जीवन नहीं जी सकता है। योग के संबंधों का वर्णन वेदों में प्राप्त होता है वेदों की रचना स्वयं परमात्मा द्वारा की गयी है। परमात्मा की इस कृति में आदि दैविक, आदि भौतिक, अध्यात्मिक तीनों प्रकार भावों का समावेश। वेद एक ऐसी कृति या रचना है जिसमें समस्त विधाओं का वर्णन प्राप्त होता है। प्रत्येक कार्य के पीछे एक कारण अवश्य होता है। परमात्मा ने जब वेदों की रचना की होगी तो परमात्मा के गुण भाव भी इस रचना में अवश्य रहे होगें। वेदों के कारण भाव तो योग सिद्धि के उपरांत ही बने होगें क्योंकि अनेक ऋषियों मुनियों ने योग साधना के माध्यम से चित्त को एकाग्र किया इसके बाद वैदिक मंत्रों की उपासना की होगी तत्पश्चात् एक सूत्र में पिरोने का कार्य किया होगा। इसलिए योग साधना का वर्णन वेदों में कई स्थानों में देखा जा सकता है। योग एवं आयुर्वेद कोई नया अनुसंधान नहीं हैं यह तो पुरातन ही है जो वैदिक काल से चला आ रहा है। यह मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन है। अतः वेदों में वर्णित योग अंतर्विज्ञान है जो अध्यात्म की अनुभूति करता है और आयुर्वेद निरोगता का।

संदर्भ :-

1. ऋग्वेद 1/28/22
2. वही, 1/38/11
3. वहीं, 8/28/5
4. वही, 4/12/20
5. यजुर्वेद, 11/5
6. वही, 7/15
7. ऋग्वेद 1/8/17
8. प्रश्नोपनिषद, 1/4/11
9. यजुर्वेद, 34/1/1
10. ऋग्वेद, 1/33/711
11. योग सूत्र, 1/21/22
12. श्वेताश्वरोपनिषद, 2/10/22
13. पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, ऋग्वेद संहिता, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, 40/1
14. ऋग्वेद, 8/14/23
15. पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, यजुर्वेद संहिता, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, 3/18
16. पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, अथवर्वेद संहिता, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, 10/8/43
17. पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, ऋग्वेद संहिता, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, 40/2
18. वही, 19/3

मो. 9452466249, ई.मेल. drramkripalv@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 211-217

Importance of Innovative Activities in Higher Education

Dr. Satish Chand Mangal

(Research Project Supervisor)
Vice-Principal
Shri Agrasen Snatkottar Shiksha Mahavidyalaya, K.V.P., Jamdoli, Jaipur

Dr. Mukesh Kumar Sharma

(Principal Investigator)
Assistant Professor
Department of Education, Jagan Nath University, Jaipur (Rajasthan)

Mrs. Rukmani Sharma

(Co-Investigator)
Assistant Professor
Department of Education, Jagan Nath University, Jaipur (Rajasthan)

Abstract :

In the dynamic landscape of the 21st century, higher education institutions are under increasing pressure to evolve in response to global, technological and societal shifts. Innovation in teaching, learning, administration and outreach has emerged as a critical pillar in ensuring that higher education remains relevant, responsive and resilient. This article explores the multifaceted importance of innovative activities in higher education. It presents 15 distinct dimensions- ranging from pedagogical reforms and technological integration to global competitiveness and institutional identity- emphasizing their roles in fostering a quality-driven, student-centric academic environment. The discussion goes beyond conventional perspectives, offering unique insights into how innovation acts as a transformative force for higher education systems worldwide.

Keywords:

Educational Innovation, Student-Centered Learning, Digital Pedagogy, Higher Education Reform, Interdisciplinary Curriculum.

Introduction :

Higher education stands at a historic crossroad. In an age dominated by artificial intelligence, shifting work paradigms, climate crises and global interconnectedness, the conventional models of higher learning are no longer sufficient. What once thrived in static classrooms, fixed curricula and rigid institutional structures must now evolve into adaptive, creative and student-centric ecosystems. In this emerging context, innovation is not merely an enhancement—it is the very foundation upon which the relevance, sustainability and excellence of higher education rests.

The word 'innovation' often evokes images of high-tech classrooms or flashy tools, but its real essence in education is far more profound. Innovation in higher education refers to the development and integration of novel ideas, practices, pedagogies, structures and values that significantly enhance the process of teaching, learning, evaluation, research and community impact. It is about breaking away from the predictable and embracing possibilities that can transform not just how knowledge is delivered, but how it is experienced, applied, and co-created.

Today's learners are digital natives, but more importantly, they are global citizens grappling with complexities unknown to prior generations. They demand education that is flexible, interdisciplinary, experiential and socially relevant. Innovative activities address this demand by offering blended learning environments, outcome-based curricula, project-driven classrooms, entrepreneurial ecosystems and inclusive access. These are not merely technical upgrades- they represent a shift in the very philosophy of education from information delivery to human empowerment.

Furthermore, innovation is the answer to many systemic challenges in higher education- declining student engagement, rising dropout rates, outdated content, faculty stagnation and a widening academia-industry disconnect. It enables data-driven decision-making, promotes internationalization, nurtures faculty development and supports personalized learning journeys.

This article explores the importance of innovation in higher education as a driving force for positive change. It highlights how innovative practices serve as powerful tools to improve learning, teaching and institutional performance. Rather than viewing innovation as a single or isolated effort, this study considers it as a broad and ongoing transformation that influences every part of the education system. By focusing on innovation as a foundation for change, the article aims to show how higher education can become more inclusive, effective and future-ready in the 21st century and beyond.

Importance of Innovative Activities in Higher Education :

1. Redefining Learning through Student-Centered Pedagogy -

One of the most significant impacts of innovation is the shift from teacher-centered to learner-centered models. Techniques such as flipped classrooms, project-based learning (PBL) and inquiry-

based instruction engage students as active participants in their educational journey. This transformation improves critical thinking, autonomy and deeper knowledge retention, making learning a more meaningful and personalized experience.

2. Bridging the Academia-Industry Gap -

Innovative activities such as industry-linked projects, collaborative research and skill-based curriculum development ensure that higher education aligns with real-world requirements. These connections foster employability and relevance, making students better prepared for job markets that demand adaptability, technical know-how and soft skills.

3. Enhancing Accessibility and Inclusion -

Technological innovations- such as e-learning platforms, AI-driven support systems and multilingual digital content- enhance accessibility for differently-abled and socio-economically disadvantaged students. Inclusive education, once a challenge, is now more achievable through these tools, ensuring equity and justice in academic participation.

4. Fostering Global Citizenship and International Competence -

Innovative international programs, such as dual degrees, global classrooms and virtual exchanges, enable students to gain cross-cultural exposure. These initiatives build global competencies, linguistic diversity, and openness, preparing learners for a borderless, interconnected world.

5. Revolutionizing Assessment Practices -

Traditional assessment methods are increasingly being replaced with alternative strategies such as formative assessments, portfolio-based evaluations, peer reviews and open-book exams. These innovations focus on skill mastery rather than memorization, encouraging a more holistic and ethical approach to student evaluation.

6. Faculty Empowerment and Professional Development -

Innovative faculty development programs empower educators with modern pedagogical tools, research opportunities, and technology integration. Action research, microteaching platforms and collaborative knowledge communities boost motivation, teaching quality and institutional loyalty.

7. Promoting Entrepreneurial Mindsets and Innovation Culture -

Entrepreneurship cells, innovation labs and incubation centers encourage students to turn ideas into ventures. These initiatives cultivate risk-taking, creativity and design thinking- skills essential in today's innovation economy. Students learn to become job creators rather than mere job seekers.

8. Creating Sustainable Campuses and Green Learning Environments -

Innovative sustainability initiatives- like green buildings, zero-waste policies and renewable energy projects- in higher education promote environmental awareness and social responsibility.

Such practices reinforce the role of institutions as models for sustainability and ethical leadership.

9. Enriching Student Support Systems -

AI-driven academic advising, real-time feedback dashboards, mental health apps and personalized learning analytics contribute to an ecosystem where student well-being is prioritized. Innovation enhances academic tracking and early intervention, reducing dropout rates and increasing graduation success.

10. Enabling Lifelong and Self-Paced Learning -

With MOOCs, micro-credentials and flexible credit transfer systems (like the Academic Bank of Credits), learners can pursue knowledge at their own pace. This flexibility supports continuous learning, professional upskilling and education beyond formal degrees.

11. Strengthening Institutional Identity and Rankings -

Innovative practices positively influence institutional accreditation, rankings and public reputation. Agencies now evaluate institutions based on innovation indices, research productivity, digital infrastructure and industry linkages, all of which are enhanced through strategic innovations.

12. Building Data-Driven Decision-Making Systems -

Analytics tools, dashboards and AI-enhanced planning systems support evidence-based institutional governance. Data innovation enables accurate monitoring of student performance, faculty efficiency, infrastructure usage and academic outcomes- leading to more informed policy decisions.

13. Encouraging Interdisciplinary and Transdisciplinary Learning -

Innovation facilitates curriculum models that integrate science, arts, technology, and vocational studies. Students engage in problem-solving that transcends traditional disciplines, fostering broader perspectives and adaptable thinking in a complex world.

14. Expanding Research Innovation and Knowledge Production -

Innovation drives research through open-access publishing, collaborative digital platforms and simulation-based experimentation. This not only increases publication output but also ensures that research has practical societal relevance and outreach.

15. Transforming Administrative Efficiency and Institutional Resilience -

Digital governance, paperless administration, biometric systems and automated workflows enhance efficiency and transparency in institutional operations. Such innovations support long-term resilience in times of crisis, such as pandemics or natural disasters.

16. Encouraging Ethical Thinking and Value-Based Education -

Innovative teaching methods such as dilemma-based learning, service learning and real-life case simulations help instill ethical decision-making and human values. These approaches develop

students' moral reasoning and social responsibility- qualities that are essential for responsible global citizens and future leaders.

17. Strengthening Community Engagement and Social Innovation -

Through outreach projects, community-based research and innovation for rural development, higher education institutions are increasingly becoming agents of social change. Such activities enhance students' understanding of societal challenges and equip them with the tools to co-create sustainable, inclusive solutions.

18. Stimulating Cognitive Flexibility and Adaptability -

In a rapidly changing world, cognitive flexibility- the ability to switch thinking modes- is a vital skill. Innovative learning environments that involve role-play, scenario-based training and interdisciplinary problem-solving nurture mental agility, making students more adaptable and open to change.

19. Policy Impact and Educational Reform -

Innovation in higher education contributes to national policy transformation. Models and best practices developed at institutional levels often inform educational reforms, curriculum frameworks and accreditation standards, thus influencing the broader direction of national and international education systems.

20. Boosting Emotional Intelligence and Psychological Resilience -

Modern education innovations focus not only on academic achievement but also on emotional growth. Activities such as mindfulness training, emotional learning modules and interactive group exercises enhance empathy, resilience, and stress management- crucial traits for success in both academic and life contexts.

21. Empowering Students as Co-Creators of Knowledge -

Innovative higher education models are increasingly shifting students from passive recipients to active co-creators of knowledge. Through collaborative research, student-led seminars, curriculum co-design and open innovation platforms, learners are empowered to contribute to academic content and institutional practices. This participatory approach fosters ownership, leadership and intrinsic motivation, cultivating a more democratic and dynamic academic environment. It also builds a sense of responsibility and strengthens the student-university relationship, making education more meaningful and transformative.

Conclusion :

The importance of innovative activities in higher education extends far beyond modernizing classrooms. It reshapes how institutions function, how students learn, how teachers teach and how

societies benefit. In an era characterized by volatility, uncertainty, complexity and ambiguity (VUCA), innovation is not optional- it is imperative. By embracing a culture of innovation, higher education institutions can build a learning ecosystem that is inclusive, future-ready and capable of shaping leaders for tomorrow. As the global education paradigm shifts, those institutions that innovate will not only survive but thrive.

Moreover, innovation fosters interdisciplinary thinking and adaptability among learners. It empowers faculty to continuously evolve their teaching practices. It enhances global competitiveness by aligning education with 21st century skills. Innovation also drives equity by addressing diverse learner needs. It encourages entrepreneurial thinking, preparing students to become job creators. Technological innovation enables scalability and access to quality education in remote areas. It promotes ethical reasoning and value-based learning for a responsible future. Ultimately, innovation in higher education is the engine of sustainable academic and societal progress.

References :

1. Chatterjee, S., & Nath, A. (2022). Faculty development for innovation-driven pedagogy in higher education. *International Journal of Instruction, 15*(3), 75–90.
2. Gokhale, R., & Sinha, R. (2023). Reimagining assessment practices in Indian universities through innovation. *Asian Journal of Distance Education, 18*(2), 44–61.
3. Kumar, M., & Mehta, A. (2021). Digital transformation and higher education in India: A roadmap for innovation. *Journal of Educational Planning and Administration, 35*(4), 101–115.
4. Lee, J., & Lim, C. (2020). Peer mentoring and flipped learning in digital classrooms: An innovative approach. *The Internet and Higher Education, 47*, 100758.
5. Mishra, S. (2021). COVID-19 and innovations in teaching–learning: A new model for higher education in India. *Open Learning, 36*(3), 253–267. https://doi.org/10.1080/02680513.2021.1902245
6. OECD. (2022). *Educating for Innovation: Good Practices in Promoting Collaborative Problem Solving in Schools and Higher Education*. OECD Publishing. https://www.oecd.org/education
7. Palvia, S., Aeron, P., Gupta, P., Mahapatra, D., Parida, R., Rosner, R., & Sindhi, S. (2023). Online education: Worldwide status, challenges, trends, and innovations. *Education and Information Technologies, 28*(1), 1–37.
8. Singh, R., & Jain, P. (2024). Outcome-based education and innovation in Indian higher education institutions. *Journal of Educational Reform, 5*(1), 22–38.

9. UNESCO. (2023). *Harnessing innovation to transform education: A global review*. Paris: UNESCO Publishing. https://unesdoc.unesco.org/

10. World Economic Forum. (2024). *Education 4.0: Reimagining learning for the future of work*. Geneva: WEF.

Dr. Mukesh Kumar Sharma

Assistant Professor, Department of Education,

Jagan Nath University, Jaipur

NH-12, Tonk Road, Chaksu Bypass, Chaksu, Jaipur (Rajasthan) Pin Code-303901

E-Mail: sharmamukeshg85@gmail.com

Contact No.: 9636460039

E-Mail: satishmangal009@gmail.com

Contact No.: 8005508625

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 218-221

राष्ट्रीय चेतना और मैथिलीशरण गुप्त का काव्य

डॉ. बालकृष्ण शर्मा
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
महारानी श्री जया राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर।

हिंदी साहित्य राष्ट्रीय चेतना का इस्पाति दस्तावेज रहा है, न केवल मैथिलीशरण गुप्त अपितु सैकड़ो कवियों ने राष्ट्रीय भावना को भारतीय जनमानस के रग रग में बसा दिया। भारतेन्दु हरीशचन्द्र, राधाचरण गोस्वामी, रामनरेश त्रिपाठी, लोचन प्रसाद पाण्डेय, सियाराम शरण गुप्त, गया प्रसाद शुक्ल सनेही, नाथूराम शंकर, बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामधारी सिंह दिनकर ने देश प्रेम, स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीयता की भावना को व्यक्त किया है। सुभद्रा कुमारी चौहान की राष्ट्रीय भावना से लवरेज कविता 'झांसी की रानी' बच्चे बच्चे की जुबान पर चढ़ी हुई है, इस कविता को सुनकर सभी देशवासियों का देश प्रेम चरम पर पहुंच जाता है :–

"**बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी।**
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।।"

माखन लाल चतुर्वेदी की 'पुष्प की अभिलाषा' कविता आज भी देश भक्तों का कंठाहार है। यह कविता देश पर बलिदान हो जाने हेतु प्रेरित करती है :–

"**मुझे तोड़ लेना वन माली, उस पथ पर तुम देना फेंक।**
मातृभूमि पर शीश चढाने, जिस पथ जायें वीर अनेक।।"

हिन्दी कवियों ने राष्ट्र प्रेम को उद्दीप्त करने वाली कवितायँ लिखकर समाज में ये सन्देश दिया कि जीवन में राष्ट्र का स्थान प्रथम होना चाहिये। ये देश प्रेम से रहित व्यक्ति को नर पशु और मृतक के समान मानते हैं

"**जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।**
वह नर नहीं, नर पशु निरा है,और मृतक समान है।।"

ठीक इसी प्रकार मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में भारत की महिमा के गुणगान के साथ–साथ अतीत के गौरवपूर्ण चित्र मिलतें हैं, उनके काव्य में राष्ट्र प्रेम की भावना कूट–कूट कर भरी हुई है। मातृभूमि एवं मातृभाषा के प्रति अटूट श्रद्धा और विश्वास के दर्शन होते के साथ–साथ भारत की गौरवपूर्ण संस्कृति के प्रति हमें तीव्र अनुराग दिखाई देता है। गुप्त जी की धारणा है कि साहित्य का उद्देश्य मात्र मनोरंजन करना नहीं अपितु उसमें लोक कल्याण की भावना का वेग होना चाहिए। उन्होंने इस तथ्य को अपनी कविता में लिखा भी है :–

"**केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।**
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।।"

गुप्त जी ने आजन्म राष्ट्रीय भावों की गंगा को अपने काव्य के माध्यम से जन–जन के जीवन में बहाने का प्रयास किया, उन्होंने सर्वप्रथम भारत भारती लिखकर देश की दुर्दशा की ओर भारतीय जनमानस का ध्यान आकर्षित किया। इस काव्य में अतीत की गौरवमयी झांकी के साथ–साथ वर्तमान जीवन की स्थिति का यथार्थ चित्रण हुआ है। गुप्त जी ने बैतालिक, किसान, अनघ, हिंदू, शक्ति, वन वैभव, गुरुकुल, नहुष, अर्जन और विसर्जन, काबा और कर्बला, विश्व वेदना, अर्जित, जय भारत, राजा और प्रजा, आदि कविताओं की रचना करके राष्ट्रीय चेतना की बयार को देश के कोने–कोने तक पहुंचाया। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के शब्दों में "राष्ट्र की और युग की नवीन स्फूर्ति, नवीन जागृति के स्मृति चिन्ह हमें हिंदी में सर्वप्रथम गुप्त जी के काव्य में मिलते हैं।"[1]

गुप्त जी की कविता राष्ट्रीयता के भावों को इस तरह प्रकट करती है कि वह जनमानस के हृदय को राष्ट्रीयता के उद्दीप्त भावों से सराबोर कर देती है इसलिए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने गुप्त जी को राष्ट्रकवि की सर्वोच्च पदवी से विभूषित किया और इस राष्ट्रकवि ने जीवन पर्यंत उस उत्तरदायित्व को अपनी लेखनी द्वारा निभाया। डॉक्टर सत्येंद्र ने गुप्त जी की राष्ट्रीयता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है 'राष्ट्रीयता गुप्त जी का उद्देश्य है पर संस्कृति शून्य राष्ट्रीयता उन्हें ग्राह्य नहीं है।"[2] तत्कालीन समय में गुप्त जी की कृति भारत भारती ने अतीत के गौरव का गुणगान और परतंत्रता की बेड़ियां तोड़ने का आह्वान किया, इस प्रकार समाज में क्रांति की भावना ने अंग्रेजी सरकार को हिला दिया था। इसलिए अंग्रेजी सरकार ने भारत भारती को जप्त कर लिया। राष्ट्र सेवा और राष्ट्र रक्षा गुप्त जी की कविता में नीम की ईंट की तरह विद्यमान है। गुप्त जी की कविता कि यह विशेषता है कि वे अतीत दर्शन के साथ–साथ वर्तमान चिंतन और भविष्य पर भी अपनी पैनी दृष्टि रखते हैं। वे भारतवासियों को उनके अतीत के गौरवमयी इतिहास का स्मरण दिलाते हुए उन्हें फिर से राष्ट्र के प्रति समर्पित होने के लिए प्रेरित करते हैं :–

"**देखो हमारा विश्व में कोई नहीं उपमान था।**
नरदेव थे हम और भारत देवलोक सामान था।।"[3]

मैथिलीशरण गुप्त की कविता में राष्ट्रीय भावना का स्वर सर्वाधिक प्रबल है, वे भारतीय सभ्यता और संस्कृति के पोषक, गांधीवाद के समर्थक, विदेशी शासन के विरोधी, समाज सुधार की कल्पना और देश भाषा एवं साहित्य के पोषक रहे हैं। उनकी कविता को यदि हम कहें तो वह राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता है, उनकी दृष्टि इतनी उदार और व्यापक है कि उसमें जातिवाद और सांप्रदायिकता के लिए कोई स्थान नहीं है। मातृभूमि के प्रति सर्वस्व समर्पण, निस्वार्थ प्रेम, त्याग और बलिदान की प्रेरणा से ओत प्रोत है। गुरुकुल कविता में उन्होंने कहा भी है :–

"**जाति धर्म या संप्रदाय का, नहीं भेद व्यवधान यहां।**
सब का स्वागत, सबका आदर, सबका सम सम्मान यहां।
राम, रहीम, बुद्ध, ईशा का सुलभ एक सा ध्यान यहां।
भिन्न–भिन्न भव संस्कृतियों की गुण गौरव का ज्ञान यहां।।"[4]

'स्वदेश संगीत' कविता में गुप्त जी ने परतंत्रता को मानव जीवन के लिए घोर निराशाजनक माना है, पराधीन मानव जीवन में सुख की कल्पना नहीं कर सकता है। इसलिए उन्होंने भारत माता के लाडलों की सुप्त चेतना को जगाने का प्रयास किया है। 'अनघ' कविता में गांधी जी के सत्याग्रह की प्रेरणा देते हुए, राष्ट्र सेवा

की भावना का निरूपण किया है। 'वक संहार' कविता में अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने हेतु प्रेरित किया है। 'साकेत' में स्वावलंबन का पाठ पढ़ाते हुए समाज सुधार हेतु प्रेरित किया है। 'यशोधरा' और 'द्वापर' में एक सशक्त नारी जीवन का संदेश दिया है एवं राष्ट्र और समाज में उसकी भूमिका का बोध कराया है। काव्य संकलन 'वैतालिक' के जागरण गीतों द्वारा भारतवासियों के स्वाभिमान को जगाने का प्रयास किया है। 'किसान' नामक कविता में भारतीय किसान की दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए, उसके शोषण और पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान की है तथा उसकी इस स्थिति में सुधार हेतु समाज से आह्वान किया है। 'राजा और प्रजा' नामक काव्यग्रंथ में शासक और प्रजा को कर्तव्य बोध कराया गया है। 'जय भारत' काव्य महाभारत के कथानक पर आधारित है, जिसमें कवि ने भारत के अतीत का गौरवगान किया है। 'विश्व वेदना' काव्य में उन्होंने 'युद्ध' का राष्ट्र पर क्या असर पड़ता है, मानवता की किस तरह हत्या होती है,यह समझाने का प्रयास किया है।

गुप्त जी भारतवासियों को अपने पौरुष से भारत को देवलोक के समान बनाने के लिए प्रेरित करते हैं। उनका मानना है कि अपने अतीत पर अभिमान करना अच्छी बात है लेकिन उस गौरव को वर्तमान में बनाए रखना उचित होगा। इसके लिए मनुष्य को अपने पुरुषार्थ से देश हित में सदा कार्य करते रहना चाहिये :–

"**कौन थे क्या हो गये और क्या होंगे अभी।**
आओ बिचारें आज मिलकर ये समस्याएं सभी।।"[5]

मैथिलीशरण गुप्त स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग के पक्षधर थे, वे विदेशी वस्तुओं को देश की अर्थव्यवस्था के लिए उचित नहीं मानते थे। वे पश्चिमी देशों के अंधानुकरण के विरोधी थे। उन्होंने अपनी कविता के माध्यम से भारतीय जनमानस को यह समझाने का प्रयास किया कि विदेशी भारत को केवल अपनी 'व्यापारिक मंडी' के रूप में उपयोग कर रहे हैं। स्वदेशी का भाव राष्ट्र के प्रति निष्ठा को अभिव्यक्त करता है, अतः गुप्त जी विदेशी वस्तुओं के उपयोग के स्थान पर स्वदेशी को अपनाने पर जोर देते हैं।

"**केवल विदेशी वस्तु ही क्यों, अब स्वदेशी है कहां,**
वह वेशभूषा और भाषा, सब विदेशी है यहां,
गुण मात्र छोड़ विदेशियों के हम उन्हीं में सन गये,
कैसी नकल की वाह, हम नक्काल पूरे बन गये।।"[6]

गुप्त जी देशवासियों को स्वार्थ का परित्याग करने हेतु संकल्पित करते हैं। वे स्वार्थ के स्थान पर भारत की मान मर्यादा तथा इसके गौरव को अपने बनाए रखने का आह्वान करते हैं। राष्ट्र के प्रति समर्पण केवल विचारों से ही नहीं होता है अपितु उसकी हर एक छोटी सी छोटी वस्तु के प्रति भावात्मक लगाव और उसकी रक्षा करना ही सच्चे देशभक्त की निशानी बनती है। कथनी एवं करनी में अंतर रखने वालों के प्रति गुप्त जी अपनी चिंता अभिव्यक्त करते हैं :–

"**कुछ काल में ये जीर्ण चिन्ह भी मिट जायेंगे,**
फिर खोजने से भी न हम सब मार्ग अपना पायेंगे,
जातीय है जीवनदीप अब भी स्नेह पावेगा नहीं,
तो फिर अंधेरे में हमें कुछ हाथ आवेगा नहीं।।"[7]

अंत में कई युवाओं को देशोद्धार हेतु प्रेरित करते हैं, वे राष्ट्र निर्माण हेतु नवयुवकों को तन, मन, धन से आगे आने के लिए संकल्पित करते हैं। वे भारत को आने वाले समय में एक शक्तिशाली देश बनाने हेतु प्रेरित करते हैं।

"हे नव युवाओं, देश भर की दृष्टि तुम पर ही लगी,
है मनुज जीवन की तुम्ही से ज्योति सब में जगमगी,
दोगे ना तुम तो कौन देगा योग देशोद्धार में,
देखो कहां क्या हो रहा है आजकल संसार में।।"[8]

मैथिलीशरण गुप्त की कविता राष्ट्र के प्रति पूर्ण समर्पित दिखाई देती है, वे अपनी कविता में देश की आर्थिक विपन्नता, सामाजिक असमानता, सामाजिक कुरीतियों, रूढ़ियों का विरोध करते दिखाई देते हैं तथा नारी की स्थिति में सुधार हेतु प्रयत्न करते हैं। डॉ द्वारिका प्रसाद सक्सेना गुप्त जी के सम्बन्ध में लिखते हैं – "हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में जीवन की दिशा को श्रंगार की कीचड़ से निकाल कर राष्ट्रीय भावों की पुनीत गंगा की ओर मोड़ने का सर्वाधिक श्रेय गुप्त जी को ही है।"[9] वे जातिवाद तथा सांप्रदायिक भेदभाव को राष्ट्र के लिये विकास के लिए बाधक मानते हैं, वे राष्ट्र के प्रति उदार और व्यापक दृष्टिकोण के पक्ष में रहे हैं। मातृभूमि के लिए सर्वस्व बलिदान करने की भावना उन्हें सच्चे देशभक्तों की श्रेणी में खड़ा कर देती है। ईर्ष्या, राग, द्वेष और स्वार्थ को त्याग कर मानवता को अपनाने पर विशेष जोर देते हैं। विदेशी वस्तुओं के त्याग एवं स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग पर जोर देना, उन्हें विशिष्ट कवियों की श्रेणी में खड़ा कर देती है। उनकी रचनाओं में राष्ट्र पर बलिदान होना गौरव का विषय माना जाता है, वह अपनी कविता के माध्यम से भारत के अतीत पर गौरव करने के साथ–साथ अपने पौरुष से देश के नवनिर्माण करने के लिए नवयुवकों को प्रेरित करते हैं। उनकी कविता में देश के प्रति भावात्मक लगाव उच्च स्तर का है, आदर्श जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा करके गुप्त जी देश को सशक्त बनाने का प्रयास करते हैं, उनकी इसी समर्पित दृष्टि के कारण उनकी कविता को राष्ट्रीय जागरण की कविता और उन्हें राष्ट्र का सच्चा सेवक कहा जाता है।

सन्दर्भ :-

1. आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, हिन्दी साहित्य 20 वीं शताब्दी, पृष्ठ–39
2. डॉ. सत्येन्द्र, गुप्त जी की कला, पृष्ठ–85
3. मैथिलीशरण गुप्त, भारत भारती, पृष्ठ–27
4. मैथिलीशरण गुप्त, गुरुकुल, पृष्ठ–130
5. मैथिलीशरण गुप्त, भारत भारती, पृष्ठ–4
6. वही, पृष्ठ– 103
7. वही, पृष्ठ– 154
8. वही, पृष्ठ– 172
9. डॉ द्वारिका प्रसाद सक्सेना, हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, पृष्ठ– 74

ईमेल – sharmabalkrishan815@gmail.com
मोबाइल –9414628241

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 222–228

PROBLEM OF CHILD LABOUR IN INDIA IN INFORMAL AND UNORGANISED SECTORS AND LAWS: ISSUES AND CHALLENGES

Dr. Mukta Verma
Assistant Professor, Faculty of Law, University of Allahabad Prayagraj, U.P.

Abstract :

Child labour continues to be a socio-legal menace in India, particularly in the vast and unregulated informal and unorganised sectors. Despite constitutional safeguards under Article 24 and the enactment of the Child and Adolescent Labour (Prohibition and Regulation) Act, 1986, children are routinely employed in sectors such as agriculture, domestic work, construction, bidi-making, and small-scale manufacturing. It highlights the limited reach of key labour statutes, including the Factories Act, Minimum Wages Act, and the recently enacted labour codes primarily designed for formal workplaces. The informal nature of employment, absence of contracts, lack of registration, and poor inspection infrastructure allow exploitative practices to continue unchecked. By drawing on legal analysis, recent judgments, international standards (such as ILO Conventions), and government reports, this study argues that child labour in the informal sector is not merely a socio-economic problem but a legal failure of employment law frameworks. It recommends structural reforms aimed at integrating informal workers into the protective scope of employment law, enhancing inspection and monitoring mechanisms, and ensuring convergence with educational and social welfare policies. A rights-based, child-centric approach to employment regulation is essential for eliminating child labour and upholding the dignity and future of India's children.

Keywords : Child Labour, Informal Sector, Employment Law, Legal Enforcement Gaps, Child Labour Act 2016, child rights in India.

1. The Problem of Child Labour in India

1.1. Introduction :

India's narrative in the 21st century is one of a striking, almost jarring, paradox. It is a nation

celebrated for its rapid economic ascent and a burgeoning youth population, yet this story of progress is haunted by the silent, relentless exploitation of its most vulnerable citizens: its children. Millions of them remain ensnared in labour, their childhoods sacrificed at the altars of agriculture, domestic service, and countless unregulated workshops. This paper examines the menace of child labour, particularly within the vast, shadowy realms of the informal and unorganised sectors, is not simply a tragic byproduct of poverty. Rather, it represents India's legal architecture's deep and systemic failure. Despite a robust Constitution and a dedicated statute, the Child and Adolescent Labour (Prohibition and Regulation) Act, 1986, the legal framework is riddled with deficiencies that, when combined with a near-total collapse of enforcement, render its protections meaningless for those who need them most. This study will therefore dissect the legislative regime, its flawed amendments, the role of the judiciary, and the monumental enforcement challenges to argue that anything less than a rights-based, child-centric legal overhaul will fail to dismantle this national shame.

1.2. Position of Child Labour in the Informal and Unorganised Sectors :

The problem of child labour in India is may be due the nature of its economy. The informal, or unorganised, sector is not a fringe element; it is the behemoth that employs over 90% of the nation's workforce. Characterised by a lacks legal recognition, formal contracts, social security, and adherence to labour statutes this sector is a world away from the regulated environments for which our laws were designed. It stretches from the vast agricultural plains where children toil alongside their parents, to the anonymity of urban homes where they serve as domestic help, and into the dimly lit, unregistered workshops that churn out goods for global supply chains. It is within this sprawling, unregulated space that the vast majority of India's child labourers are lost. The International Labour Organization (ILO) has repeatedly drawn attention to this reality. Employers in this sector operate with a sense of impunity, knowing full well that the state's inspection machinery is ill-equipped and often unwilling to venture into these hidden domains of work.

1.3. Meaning and Contents of Child Labour :

The very concept of 'child labour' has been a contested terrain in policy circles. The international consensus, articulated in ILO Convention C182, defines it as any work that is dangerous to a child's mental, physical, or social development, or that interferes with their schooling. Indian law, however, has often clung to a perilous distinction between 'child work' and 'child labour', permitting activities deemed non-hazardous. This is a false dichotomy. Work that may appears benign on the surface such as assisting in a family shop becomes deeply exploitative when it robs a child of the time and energy needed for education, play, and rest. The 2016 amendment to the primary child labour law dangerously broadened this loophole, giving legal sanction to what is often disguised exploitation. From a rights-

based perspective, therefore, any work that infringes upon a child's fundamental rights under Articles 21 (Right to Life) and 21A (Right to Education) must be treated as unacceptable labour.

2. The Socio-Economic and Legal Aspects on Child Labour

2.1. Factors responsible for Child Labour :

One cannot, of course, ignore the crushing socio-economic realities that propel children into work. Persistent poverty is, without question, the most powerful driver. For millions of families trapped in a cycle of deprivation, a child's income is not supplemental but essential for survival. The statutory bodies like the National Commission for Protection of Child Rights (NCPCR) have consistently demonstrated this grim correlation between household poverty and the prevalence of child labour. The education system, meant to be the great equaliser, often acts as another powerful factor. The promise of free and compulsory education, enshrined in the Right to Education Act of 2009, remains unfulfilled for many. Crumbling infrastructure, a shortage of qualified teachers, and a curriculum that seems disconnected from the realities of their lives lead to high dropout rates, pushing children directly from the classroom into the workforce. Add to this the deeply entrenched social norms that legitimise child work, especially for girls who are often steered towards domestic chores and sibling care, and the scale of the challenge becomes apparent.

2.2. International Law on Child Labour :

India's commitment to curb child labour is not just a domestic policy goal; it is an international legal obligation. As a signatory to the UN Convention on the Rights of the Child (UNCRC), India is bound to uphold the best interests of the child as a primary consideration in all actions. More specifically, India has ratified the two cornerstone ILO Conventions on child labour: Minimum Age and Worst Forms of Child Labour. Ratifying these instruments is not a symbolic gesture; it legally binds the state to harmonise its national laws with these global standards. Convention 182, for instance, demands immediate and effective measures to eliminate the worst forms of child labour, a category that includes all forms of slavery, trafficking, and work which, by its nature, is likely to harm the health, safety or morals of children. Yet, as we will see, a chasm exists between India's commitments on the world stage and the reality of its domestic legal framework, particularly in its narrow and outdated definition of what constitutes hazardous work.

3. Constitutional Measures and Legislation on Child Labour :

3.1. Provisions of the Indian Constitution to Protect Child Labour :

The framers of the Indian Constitution envisioned a nation where childhood will be protected. This vision is enshrined in Article 24, which unequivocally states: No child below the age of fourteen years shall be employed to work in any factory or mine or engaged in any other hazardous employment.

This is not a directive principle; it is an enforceable fundamental right. The Supreme Court of India, in its finer moments, has breathed life into this provision by connecting it to the very heart of the Constitution. In the celebrated case of *Unni Krishnan, J.P. v. State of Andhra Pradesh*, the Court declared that the right to education was an integral part of the Right to Life under Article 21. This judicial insight paved the way for the 86th Amendment, which inserted Article 21A and made education a fundamental right. The judiciary's message was clear: a child's right to a life of dignity is inseparable from their right to be in school and free from labour.

3.2. The Child and Adolescent Labour (Prohibition and Regulation) Act, 1986 :

The Child Labour (Prohibition and Regulation) Act of 1986 stood as the primary legislative instrument. The Act, however, was built on a flawed premise. It adopted a bifurcated strategy: it prohibited the employment of children in a list of specified hazardous occupations, but merely regulated their working conditions in all other sectors. This approach was fundamentally problematic. By regulating child labour in so-called non-hazardous work, the law was, in effect, legitimising it. It sent a message that some forms of child labour were acceptable, failing to grasp that the very denial of a normal childhood is a harm in itself. Furthermore, its schedule of hazardous processes was notoriously incomplete, leaving out scores of dangerous activities, especially in agriculture and the services sector, where the majority of children worked. The Act was a product of compromise, a regulatory framework in a field that demanded outright abolition.

4.0 An Analysis of the 2016 Amendment of Child Labour Act :

The 2016 amendment to the Child Labour Act was touted as a landmark reform. It introduced, on paper, a complete ban on all forms of employment for children under age of 14. This seemingly progressive move, however, was immediately undone by two devastating exceptions. The first, and most damaging, is a provision that allows a child to help their family or family enterprise after school hours or during vacations, as long as the work is not hazardous. This clause was met with dismay by child rights activists, including the Bachpan Bachao Andolan (BBA), who rightly saw it as a catastrophic step backwards. It is a loophole large enough to drive a truck through. So much of India's informal economy from bidi-rolling and carpet weaving to gem polishing is structured around home-based, family-run units. These spaces are impenetrable to labour inspectors, making it impossible to verify working conditions or hours. The provision, in effect, sanitises exploitation, rebranding it as family help and pushing millions of children deeper into the shadows, beyond the law's reach. The second exception for child artists similarly opens the door to abuse in an industry known for its lack of regulation.

4.1 An analysis of Labour Law in the present socio-legal scenario :

The failure is not confined to the primary child labour law. The broader ecosystem of Indian employment law has consistently ignored the informal sector. Foundational statutes like the Factories Act, 1948, and the Minimum Wages Act, 1948, were written for a different era and a different kind of economy. Their application is triggered by thresholds such as number of workers, the use of power that the vast majority of informal units are designed to fall under. A child working in a small roadside dhaba or as a domestic helper is invisible to these laws, with no legal claim to minimum wages, fixed working hours, or safe conditions. Even the recent, much-publicised consolidation of labour laws into four Codes does little to change this. The Code on Social Security, 2020, and the Occupational Safety, Health and Working Conditions Code, 2020, largely carry over the old threshold-based system, thus perpetuating the historic exclusion of the very workers who are most in need of protection.

5. The Role of the Judiciary :

5.1. Judicial Interventions for Child Labour :

In the void left by legislative and executive failure, it has often been the judiciary that has held up the torch for children's rights. The Supreme Court's judgment in *M.C. Mehta v. State of Tamil Nadu* stands as a powerful example of this judicial activism. The Court did not just condemn child labour; it laid down a detailed blueprint for action. It ordered the creation of a Child Labour Rehabilitation-cum-Welfare Fund in every district, to be financed by fines levied on guilty employers and matching contributions from the state. Similarly, in *Bandhua Mukti Morcha v. Union of India*, the Court interpreted the prohibition of forced labour under Article 23 expansively, a ruling with huge implications for the countless children trapped in debt bondage. These judgments were pivotal in shifting the discourse from one of mere welfare to one of inalienable rights.

5.2. The Limits of Judicial Activism :

Judicial intervention has its limits. The unfortunate reality is that the powerful directives issued by the courts have largely been ignored in practice. The ambitious scheme laid out in the *M.C. Mehta* case remains unimplemented or poorly implemented in many parts of the country. The welfare funds, where they exist, are often underfunded and mismanaged. This exposes the fundamental limitation of judicial intervention: the courts can pronounce the law, but they do not command the administrative machinery required to enforce it on the ground. The wide gulf between the Supreme Court's vision and the grim reality for a child labourer illustrates that court orders alone cannot solve a problem so deeply entrenched in our social and economic fabric.

6.0 Role of Social Welfare: Importance of Policies :

6.1. Role of Rehabilitation and Rescue Efforts :

The government's main rehabilitation program, the National Child Labour Project (NCLP), is built around the idea of weaning children away from hazardous work and transitioning them into formal schools via special bridge centres. While the intent is laudable, the project's track record is mixed at best. Independent evaluations and CAG reports have pointed to a host of problems: dilapidated infrastructure in NCLP schools, a lack of motivated and qualified teachers, and a curriculum that fails to hold the children's interest. Consequently, many rescued children eventually drop out and relapse into labour because the root cause their family's poverty remains unaddressed. Rescue without meaningful and sustained rehabilitation is a revolving door, not a solution.

6.2. The Disconnect between Labour, Education, and Social Welfare Policies :

Perhaps the most frustrating failure is the state's inability to connect the dots. The various ministries that are supposed to protect children Labour, Education, Women and Child Development operate in their own bureaucratic silos. There is a stunning lack of convergence. A child might be rescued by the Labour Department, but if that action is not followed by immediate enrolment in a quality school and the provision of social support to their family, the rescue is meaningless. An effective strategy demands a seamless continuum of care that links law enforcement with the Right to Education Act, the Integrated Child Protection Scheme (ICPS), and social security programmes like MGNREGA. Without this holistic, integrated approach, our efforts will continue to be fragmented, inefficient, and ultimately, ineffective.

7.0 Reimagining Legal and Policy Frameworks :

7.1. Towards a Uniform and Inclusive Definition :

The first order of business must be to fix the broken law. This requires abandoning the ambiguous and dangerous exceptions introduced in 2016. The law must be amended to repeal the clause permitting work in family enterprises. The location of work is irrelevant; what matters is its impact on the child. We need a clear, uniform definition of 'child' and 'hazardous work' that is in line with our international commitments, one that recognises that any work that denies a child an education and a healthy upbringing is inherently hazardous.

7.2. Structural Reforms to Employment Law :

Tackling child labour in the informal sector demands that we finally find a way to bring this sector under the rule of law. The old, threshold-based models of our labour laws are obsolete. We need creative thinking about how to regulate the informal economy perhaps through universal registration of all businesses, regardless of size, coupled with a simplified compliance system that does not place an undue burden on small entrepreneurs. The objective must not be to exempt the informal sector, but to find intelligent ways to formalise it and extend legal protections to all workers

within it.

7.3. Strengthening Enforcement and Monitoring :

The enforcement system needs to be rebuilt form the ground up. This means hiring a vastly larger number of labour inspectors, training them properly, and giving them the resources and autonomy to do their jobs without fear or favour. But state action alone will not be enough. We must institutionalise community-based monitoring, empowering local bodies like Panchayats and School Management Committees to act as the eyes and ears of the system. These local institutions are far better positioned to identify and report child labour than any distant inspectorate.

Conclusion :

The continued existence of child labour on such a massive scale is a scar on the conscience of our nation. It is an indictment of a system that has failed its most vulnerable. It is the failure of a legal framework that is full of holes, and the failure of an enforcement regime that is, for millions of children, entirely absent. The 2016 amendment, far from fixing the problem, tragically deepened the crisis by providing legal cover for exploitation within the home.

The only way forward is through a fundamental shift in our approach. We must move decisively from a weak, regulatory, welfare-based model to a strong, abolitionist, rights-based one. This means amending the law to close the loopholes, reforming our labour statutes to embrace the informal sector, and building an enforcement ecosystem which should be robust and accountable. The choice is clear to continue with a broken system that condemns millions to a lost childhood, and moral courage to ensure that every child in India is in a classroom, not a workshop. The future of our nation depends on it.

REFERENCES :

1. The Occupational Safety, Health and Working Conditions Code, 2020 (Act No. 37 of 2020).
2. International Labour Organisation, *Strengthening Labour Inspection Systems in India* (ILO Decent Work Team for South Asia, 2015).
3. National Crime Records Bureau, *Crime in India 2022* (Ministry of Home Affairs, Government of India, 2023).
4. P.K. Sahu, "Child Labour in India: A Critical Analysis of Magnitude, Determinants, and Policies", 45(4) *Indian Journal of Labour Economics* 789-801 (2002).
5. Comptroller and Auditor General of India, *Performance Audit of the National Child Labour Project Scheme*, Report No. 19 of 2013 (Ministry of Labour and Employment).
6. The Child and Adolescent Labour (Prohibition and Regulation) Amendment Act, 2016, S. 3.
7. Bachpan Bachao Andolan, *Critique of the Child Labour (Prohibition and Regulation) Amendment Bill, 2016*, available at: https://bba.org.in/resource/critique-of-the-child-labour-prohibition-and-regulation-amendment-bill-2016/

Email-mktverma6@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 229–235

पर्यावरण संरक्षण के प्रति जैनधर्म का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

Dr. Mukesh Kumar Dhaka
HANUMANGARH, RAJASTHAN.

आलेख सारांश :–

वर्तमान समय में हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या पर्यावरण अवनयन की है। प्राकृतिक संसाधनों के प्रति मानव की उपेक्षा अनवरत चलती आ रही है और वर्तमान काल में अब इस समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया है। प्रस्तुत शोध में हम जैनधर्म में पर्यावरण संरक्षण की वैज्ञानिक दृष्टिकोण की समीक्षा की गई है। जैन धर्म के अनुयायियों की संख्या विश्व कम होने के बावजूद भी पर्यावरण संरक्षणमें बहुत बड़ा योगदान है। अगर संमूर्ण विश्व में जैनधर्म के सिद्धांतों का अनुसरण किया जाए तो पर्यावरण अवनयन की समस्या जड़ से खत्म हो जायेगी। जैनाचार ने मानव को जीवन मूल्य दिये है जिन्हें अंगीकार कर जैन अनुयायी व्यक्तिगत सामाजिक और आध्यात्मिक समृद्धि की ओर अग्रसर होता रहा हैं। जिन अथवा जिनवाणी का अनुसरण करने वाले को जैन कहा जाता है।

मानव पर्यावरण व विशिष्ट स्थिति रखता हैं,वह पर्यावरण में जीता है एवं उसका उपयोग करता है। मानव पर्यावरण के अवनयन में भी प्रमुख भूमिका निभाता है। मानव के सभी क्रियाकलाप पर्यावरण द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण द्वारा निर्धारित होते है। मानव अपनी प्रगति के लिए पर्यावरण का शोषण करता है। मानव वैज्ञानिक एवं तकनीकी साधनों के उपयोग से पर्यावरण को हानि पहुंचाता है। स्वार्थ सिद्धी के कारण मानव का पर्यावरण अवबोध दिशाहीन हो गया है।

मूल शब्दावली : जैनधर्म, पर्यावरण संरक्षण, अहिंसा, अणुव्रत, अनेकान्तवाद, परस्परोग्रहो जीवानाम, मानव कल्याण

प्रस्तावना :–

पर्यावरण संरक्षण जैनधर्म का मूलाचार है। सम्पूर्ण जैन जीवनशैली में पर्यावरण विषयक सूक्ष्म चिन्तन व्याप्त है। महावीर के सिद्धांतों में जियो और जीने दो, अहिंसा परमोधर्मः एवं अपरिग्रह प्रमुख है जो यह दर्शाते है कि जैनधर्म में पर्यावरण को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। जैनधर्म आचार प्रधान धर्म है। जैनाचार ने मानव को जीवन मूल्य दिये है जिन्हें अंगीकार कर जैन अनुयायी व्यक्तिगत सामाजिक और आध्यात्मिक समृद्धि की ओर अग्रसर होता रहा हैं। जिन अथवा जिनवाणी का अनुसरण करने वाले को जैन कहा जाता है। जिन से हमारा तात्पर्य जीव की सिद्ध बुद्धमुक्त दशा है। जैन मनीषियों ने जैन समाज को चार भागों में साधु, साध्वी श्रावक, श्राविका में बांट रखा है। इन विभागों को तीर्थ नाम से प्रतिष्ठित किया गया है। साधु और साध्वी के आचरण को साध्वाचार कहा जाता है। इस प्रकार आचार या आचरण प्रधान धर्म जिनानुयायियों की दैनिक चर्या को दो भागों

में किया जाता है, साध्वाचार एवं श्रावकाचार। साध्वाचार आधुनिक सन्दर्भ में अतिवादी को कहा जा सकता है जिसमें साधु पंच महाव्रतों अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि का तीन कारण एवं तीन तीन योग से जीवनपर्यंत पालन करता है। श्रावकाचार में भी इन पांच व्रतों की पालन किया जाता है किन्तु इन्हें महाव्रत के रूप में न अपनाकर अणुव्रतों के रूप में अपनाया जाता है अर्थात् एक करण एक योग से लेकर दो करण तीन योग तक। श्रावक को इन सभी व्रतों में सामान्य जीवन जीने के लिए आवश्यक सूक्ष्म हिंसा, असत्य आदि की छूट दी गई है।

जैनधर्म एवं पर्यावरण संरक्षण :-

हमारे आसपास दृश्य या अदृश्य वातावरण, जीव व अजीव पदार्थ की मौजुदगी और उनमें आपसी संबंध ही पर्यावरण है। पृथ्वी की उत्पत्ति के साथ पर्यावरण का निर्माण हो गया था। वैज्ञानिकों एवं धर्मगुरुओं ने पर्यावरण को अपनी–अपनी मान्यताओं के अनुसार समझने का प्रयास किया है। (डा. सनंत)

पर्यावरण वैज्ञानिकों की मान्यतानुसार इस विराट् सौरमण्डल के ग्रह पृथ्वी पर ऐसी अद्भुत जीवन संरचना है कि यहां अगाद्य सागर, उत्तुंग पर्वत, जीवन इस भरती नदियां और वायुमण्डल की छत्रछाया है। नदियों के जल का सिंचन पाकर इस उर्वरा भूमी पर हरे–भरे पेड़–पौधे उत्पन्न हुए है। पैड़–पौधों अपनी प्राणवायु से अन्य प्राणियों को सांसें दी तथा भोजन एवं अन्य आवश्यकताओं की समपुर्ती की है। पर्यावरण की सम्पूर्ण व्यवस्था प्राणियों की जीवनधारा को सुरक्षित बनाये रखने के लिए है (निहालचंद) भौतिक, रासायनिक तथा जैविक दशाओं का योग, जो एक जीव द्वारा अनुभव किया जाता है, जिसमें जलवायु, मृदा, जल, प्रकाश निकटवर्ती वनस्पति, व्यक्तिगत तथा अन्य प्रजातियां सम्मिलित है। (जे स्मिथ)

मानव पर्यावरण व विशिष्ट स्थिति रखता हैं,वह पर्यावरण में जीता है एवं उसका उपयोग करता है। मानव पर्यावरण के अवनयन में भी प्रमुख भूमिका निभाता है। मानव के सभी क्रियाकलाप पर्यावरण द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण द्वारा निर्धारित होते है। मानव अपनी प्रगति के लिए पर्यावरण का शोषण करता है। मानव वैज्ञानिक एवं तकनीकी साधनों के उपयोग से पर्यावरण को हानि पहुंचाता है। स्वार्थ सिद्धी के कारण मानव का पर्यावरण अवबोध दिशाहीन हो गया है। (डॉ. सक्सेना)

पर्यावरण संरक्षण कोई नया विचार नहीं है अपितु इसका प्रतिपादन एक नवीन विधारचारा है। पर्यावरण संरक्षण से तात्पर्य है, पर्यावरण के प्रति हमारे दृष्टिकोण अर्थात् हम पर्यावरण को किस रूप में देखते है। जन तक हमे पर्यावरण संरक्षण का ज्ञान नहीं होगा तब तक पर्यावरण अवनयन होता रहेगा। पर्यावरण संरक्षण में विभिन्न संगठनों, धर्मों, जातियों का विशेष योगदान रहा है जिसमें जैनधर्म प्रमुख है।

1. अहिंसा :

अहिंसा जैन श्रावक के लिए प्रथम अणुव्रत है। इस अणुव्रत में पांच अतिचारों का वर्णन हमें प्रतिक्रमण सूत्र से प्राप्त होता है। श्रावक ऐसे किसी भी जीव को ना मारने, ना मरवाने का संकल्प लेता है जिसने श्रावक के सगे संबंधी अथवा श्रावक को पीड़ा ना पहुंचाई हो। पांच अतिचार सूक्ष्म हिंसा को रोकने का कार्य करते हैं। किसी जीव को बंधन में रखना,किसी जीव का वध करना, सामर्थ्य अधिक भार लादना (इस अतिचार को अधीन कर्मचारियों में आवश्यकता से अधिक काम लेने के सन्दर्भ में भी देखा जाना चाहिए), छवि का छेदन करना, अन्न पानी का निरोध करना। ये पांच प्रकार के हिंसा रोकने के यत्न सभी जीवों को अभय दान देते है। यदि अभय

का यह स्वरूप सम्पूर्ण संसार में हो जाए तो सामाजिक पर्यावरण में कहीं खतरा कही रहेगा। अहिंसा पालन से जीवन जगत की दुर्लभ प्रजातियों के अस्तित्व पर मंडरा रहे खतरे को भी नियंत्रित किया जा सकता है। इस व्रत का अनुकरण करते हुए जैन श्रावक पानी को भी छान कर पीता है तथा पानी को मिव्ययिता से प्रयोग करता है। इस आचरण के फलस्वरूप जल प्रदूषण एवं जल संसाधन की कमी को राकने में श्रावकाचार सहयोग करते है। मन वचन और कर्म तीनों योगों के द्वारा अहिंसा का पालन होता है तो सामाजिक, प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरसा में व्याप्त हो रहे प्रदूषण को रोका जा सकता है।

'अहिंसा परमोधर्मः', 'अहिंसत्वं च भूतानाममृततत्वाय कल्पते' 'अहिंसा परमं सुखमं' 'जिओ और जीने दो' आदि सूत्र के परम्परागत पर्यावरण संरक्षण के तरीकों को बताते है। इन सूत्रों से सिद्ध होता है कि जीवों की सूरक्षा ही परम धर्म हैं, अमृत है, परमब्रह्म है, परमसुख स्वरूप है। जैन धर्मानुसार पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक एवं एकेन्द्रिय स्थावर जीव है तथा मनुष्य, पशु पक्षी, मछली आदि पंचेन्द्रिय त्रस जीव है। इन सबको क्षति न पहुंचाना अहिंसा है। भारतीय परम्परा में जो वृक्ष, नदी, पर्वत, अग्नि, जल, सूर्य, पृथ्वी आदि की पूजा की जाती है उसका मुख्य उद्देश्य इन सबकी सुरक्षा एवं संवृद्धि है। मुनि के समान गृहस्थी तो सभी प्रकार की हिंसा का त्याग नहीं कर सकता है परन्तु यथायोग्य अहिंसा अणुव्रत का पालन करता है।

2. सत्य :-

श्रावक का दूसरा अणुव्रत सत्य है। सत्य का पालन करते हुए उसे विचार शून्य होकर अन्य आत्माओं पर दोषारोहण करने, किसी की रहस्य वार्ता को प्रकट करने, स्व पति/पत्नि का भेद प्रकट करने, अन्य आत्माओं को मूखा भाषण देने, कुट अर्थात् धोखा देने वाले लेख लिखने की मनाही है। सत्य व्रत की पालना करते हुए श्रावक समाज अथवा परिवार में कलह को रोकने में अपना योगदान देता है। व्यापार में सत्य व्यवहार से व्यापारिक पर्यावरण में फैलते भ्रष्टाचार को स्वतः ही नियंत्रित किया जा सकता है।

3. अस्तेय :-

श्रावक का तीसरा अणुव्रत अस्तेय है जो संसार से भ्रष्टाचार को दूर रखने की क्षमता रखता है। इस व्रत के पालन में श्रावक संकल्प लेता है कि वह स्वामी के दिए बिना किसी भी वस्तु को ग्रहण नहीं रकेगा, किसी के घर में सेंध नहीं लगायेगा, किसी की जेब नहीं काटेगा, अन्य तालों को चाबी नहीं लगायेगा, मार्ग में किसी को लुटेगा नहीं और मार्ग में पड़ी बहुमूल्य वस्तु नहीं उठाएगा। इस व्रत में उससे कोई चूक ना हो जाये इसलिए उसे पांच अतिचारों से भी परे रखने का प्रावधान है चोरी की वस्तु लेना चोर की सहायता करना राज्य के विरूद्ध काम करना वस्त्रादि अथवा वस्तुओं का न्यनाधिक माप तोल करके बेचना। राज्य के विरूद्ध यदि श्रावक कोई काम नहीं करेंगे तो आज के युग की सबसे बड़ी आर्थिक समस्या कालाबाजारी एवं कर चोरी स्वतः ही समाप्त हो जायेंगी।

4. ब्रह्मचर्य :-

ब्रह्मचर्य श्रावक के लिए चौथा अणुव्रत है जो कामाचार की सीमा निर्धारित करता है। कालान्तर में संभवतः इसने एकपत्नी व्रत का रूप ले लिया परन्तु उपासक दशांग सूत्र के महाशतक प्रकरण के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि पुरूष ने जितनी स्त्रियों की सीमा निर्धारित की है तथा स्त्री के जितने पुरुषों की सीमा निर्धारित की

है उसके उपरान्त वे स्वेच्छादार से अन्य किसी के प्रति काम भाव को त्यागने का संकल्प लेते है। इस अणुव्रत के पांच अतिचार जो श्रावक/श्राविका को किसी भी प्रकार के व्यभिचार से परे रखते है वे किसी अन्य की परिग्रहीता के साथ गमन ना करना, ख. अपरिग्रिहीता के साथ गमन ना करना ग. अनंग काम क्रीड़ा ना करना घ. दूसरों का विवाह सम्बंध स्थापित नहीं करना ड़. काम भोगों की तीव्र अभिलाषा नहीं करना। मैथुन विरमण का ये व्रत श्रावकाचार का वह महत्वपूर्ण अंग है जो आज की नयी पीढ़ी को पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाववंश भारतीय संस्कृति के उच्च मूल्यों के ह्रास को रोकने में मदद करेगा। सांस्कृतिक पर्यावरण की सभी समस्याएं इस व्रत के पालन से समाप्त हो सकता है।

जनसंख्या वृद्धि से खाद्य समस्या, निवास की समस्या के साथ–साथ मनुष्य से उत्सर्जित मलमूत्र, अपशिष्ट आदि से जल, वायु, मृदा, प्रदूषण होता है। सघन बस्ती के कारण प्राणवायु की कमी होती है। कृत्रिम गर्मी बढ़ती है। यातायात के लिए प्रयोग से आने वाले परिवहन के साधनों से वायु प्रदूषण, ध्वनी प्रदूषण भी बढ़ता है। इसलिए भारत में साधु संत तो पूर्ण ब्रह्मचर्य में रहते हैं एवं गृहस्थ भी ब्रह्मचर्य अणुव्रत का पालन करें तो इन सभी पर्यावरणीय समस्याओं से मुक्ति मिल सकती है।

5. अपरिग्रह :–

अपरिग्रह जैनाचार का पांचवा अणुव्रत है जो मर्यादा निर्धारित करता है अर्थात् अपने अधीन वस्तुओं की सीमाएं निर्धारित करता है। इन वस्तुओं की सूची में गृहशालायें अथवा अन्य भूमि, सोडा चांदी, धन धान्य, मनुष्य एवं पशुधन एवं गृहस्थ जीवन में काम आने वाली सभी वस्तुओं की सीमा निर्धारित कर रोल के स्वामित्व के परित्याग का संकल्प लेता है। इन पांचों प्रकार के परिग्रह की सीमाओं का अतिक्रमण ना करना ही पंच अतिचारों के अन्तर्गत आता है। यदि श्रावकाचार का यह घटक आज संसार की सभी अर्थव्यवस्थाओं में लागु कर दिया जाए तो विश्व की सभी आर्थिक समस्याओं का उन्मूलन संभव है। आर्थिक पर्यावरण की सभी समस्याएं स्वतः समाप्त हो जायेगी।

'सादा जीवन उच्च विचार' भारत की एक महान् परम्परा है। इससे व्यक्ति का व्यक्तित्व महान्, पवित्र, उदार, उदात तो बनता ही है साथ ही पर्यावरण सुरक्षा में भी महान् योगदान मिलता है। उच्च विचारों के कारण यह किसी भी जीव को या विश्व के किसी भी घटक को क्षति नहीं पहुंचाता है। आडम्बर पूर्ण भौतिक सम्पन्नता युक्त विलासमय जीवन के लिए व्यक्ति को अधिक भौतिक साधन, धन सम्पदा चाहिए। इसके लिए प्रकृति को दोहन एवं शोषण होता है जिससे प्रकृति का सन्तुलन बिगड़ता है। फैक्ट्री आदि से धूआं, गंदा पानी, अपशिष्ट आदि निकलता है उससे जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण होता है। इसलिए भारतीय परम्परा में गृहस्थ लो सीमित परिग्रह (अपरिग्रह अणुव्रत) रखते है तथा साधु संत समाप्त परिग्रह त्याग कर देते है।

6. निव्रयसन :–

नैतिकपूर्ण, सादा, उच्च, आदर्शमय, स्वस्थ जीवन जीने के लिए मद्य–मांस, शिकार, चोरी, जुआ, वेश्यागमन, परस्त्री सेवन त्यागरूपी जीवन निव्रयसन कहलाता है। मद्य सेवन से भाव प्रदूषण होता है। मद्य तैयार करने में जल, वायु प्रदूषण होता है। मांसभक्षण करने से जीवों की हत्या से जल प्रदूषण पक्षी की हत्या से वायु प्रदूषण एवं स्थलचार जीवों की हत्या से स्थल प्रदूषण बढ़ता है। इसी प्रकार ऐसे ही दोष शिकार व्यसन में है। परस्त्रीगमन, वेश्यागमन, से शारीरिक एवं मानसिक रोगों के साथ सामाजिक प्रदूषण भी होता है। इस प्रकार चोरी,

जुआ से भी मानसिक प्रदूषण, आर्थिक प्रदूषण एवं सामाजिक प्रदूषण होता है। तम्बाकु, बीड़ी, सिगरेट, अफीम, गांजा आदि के सेवन भी मद्य व्यसन से सम्मिलित है। इससे भी आर्थिक, शारीरिक, मानसिक प्रदूषण होता है।

7. अनेकान्तवाद :-

जैन दर्शन का अनेकान्तवाद वास्तव में वैचारिक हिंसा रोकने के लिए सफल औषधि है। एक ही व्यक्ति में अनेक गुण विद्यमान होते है परन्तु यदि हम उसमें एक ही एकांत दृष्टि को लेकर बैठ जाये तो निश्चित ही झगड़ा होगा। जैन दर्शन 'ही' को छोड़ने तथा 'भी' को अपनाने की प्रेरणा देता है। जहा 'ही' है वहां विवाद है एवं जहां भी है वहां शांति है। वर्तमान समय में हमारे समाज में वैचारिक पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है उसके निवारण का उपाय जैन दर्शन का स्याद्वाद, अनेकान्त है। स्याद्वाद से तो सर्व सत्य विचारों का द्वार खुल जाता है, जैनधर्म केवल भौतिक पर्यावरण की शुद्धि के लिए ही जागरूक एवं प्रयत्नशील नहीं है बल्कि अन्तः पर्यावरण की विशुद्धि को भी एक अभिन्न अंग मानता है। जब तक आत्मा शुद्ध नहीं होगी, अन्तरंग परिणाम शुद्ध नहीं होंगे। तब तक पर्यावरण सुरक्षा संभव नहीं है। पर्यावरण की सच्ची सुरक्षा तभी मानी जावेगी। जब भौतिक व आध्यात्मिक पर्यावरण का ध्यान रखा जावे।

8. तीर्थकरों के चिन्ह् :-

समस्त चौबीस तीर्थंकर के अपने–अपने चिन्ह् है। वैज्ञानिक दृष्टि से अवलोकन किया जाये तो ज्ञात होता है कि यह चिन्ह् पर्यावरण के विभिन्न घटकों के प्रतीक है। बैल, बंदर, घोड़ा, सुअर इत्यादि पशु जगत के है तो कमल इत्यादि पौधों के वर्ग के है एवं जल एकेन्द्रिय जीव का प्रतीक है। ऐसा प्रतीत होता है कि सभी वर्गों के चिन्ह् प्रकृति के विभिन्न संघटकों के संरक्षण की प्रेरणा देते है।

चौबीस तीर्थंकरों के चिन्ह् पर्यावरण संरक्षण के हरस्य को समेटे हुए है। जैनधर्म प्रकृति वन्य पशु, वनस्पति जगत के प्रतीक चिन्हों से अपनी पहचान जोड़ दी, बारह थलचर जीव वृषभ, हाथी, घोड़ा, बन्दर, गैंडा, महिष, शुकर, सेही, हिरन, बकरा, सर्प और सिंह से हैं। जहां वृषभ अन्न उत्पादक का मुख्य घटक है। अस्पर्श समझा जाने वाला पशु शुकर जीवों के उत्सर्जित मल का भक्षण कर पर्यावरण को शुद्ध रखने वाला एक उपकारक पशु है। सर्प विषैले कीटों का भक्षण कर वातावरण को हानिकारक जीवाणुओं से रहित बनाता है। सिंह को छोड़कर शेष ग्यारह पशु शाकाहारी है जो शाकाहार की शक्ति का संदेश वाहक है। चक्रवाहक एक नभचर प्राणी है तथा मगर मछली और कछुआ जलचर पंचेन्द्रिय है जो जल प्रदूषण को समाप्त करने में सहायक जल जन्तु है। लाल, नीलकमल तथा कल्पवृक्ष वनस्पति जगत के प्रतिनिधि है। कमल वीतराग भाव का प्रतीक है जिसकी सुरभि पर्यावरण को सुवासित करती है और सौंदर्य का अवदान देती है। जड़ वस्तुओं में बड़कादण्ड, मंगल कलश, अर्धचन्द्र, शंख तथा स्वास्तिक सभी मानव कल्याण की कामना के प्रतीक हैं। ये सभी चौबीस चिन्ह् प्रकृति और पर्यावरण से जुड़ें मुख्य घटक है।

9. परस्परोग्रहो जीवानामः :-

'परस्परोग्रहो जीवानाम' अर्थात् परस्पर एक जीव दूसरे जीवों के लिए उपकार है। संसर में निरपेक्ष जीवन नहीं रह सकता है। एक बालक की योग्यता के निर्माण में उसके माता–पिता, गुरू सम्प्रदाय शासन, संगति एवं पर्यावरण आदि सभी का उपकार जुड़ा होता है। हर व्यक्ति पृथ्वी की गुरूत्वाकर्षण शक्ति से जुड़ा है और अन्य ग्रहों की अदृश्य शक्तियों से प्रभावित होता रहता है उसके अस्तित्व की दोर धर्म और अधर्म द्रव्य, आकाश, काल

और पुद्गल द्रव्य के उपकार से सम्बन्ध है। प्राणी एवं मनुष्य, वनस्पति जगत के उपकार से निरपेक्ष नहीं है। मनुष्य की त्याज्य अशुद्ध हवा जहां वृक्ष एवं पादपों के लिए ग्राह्य होती है, वहीं वनस्पतियों द्वारा उत्सर्जित वायु मानव व अन्य प्राणियों के लिए प्राणवायु है। इस अन्योन्याक्षय सिद्धांत पर प्रकृति और सम्पूर्ण पर्यावरण टिका हुआ है।

10. शाकाहार :-

शाकाहार एवं पर्यावरण का घनिष्ठ सम्बन्ध है। क्रूरताओं की शक्ति का बढ़ना इस शताब्दी का सबसे बड़ा अभिशाप है। इससे सम्पूर्ण पर्यावरण प्रदूषित होता है। प्रकृति वे मानव आहार के लिए वनस्पति एवं स्वादिष्ट फल मेवा दिये है। पशु पक्षी मानव के प्यार से इतने वफादार बन जाते है कि अपना सबकुछ नौद्दावर कर सकते है लेकिन मानव उन्हीं जीवों को अपना आहार बना लेता है। मांसाहार क्रूरता की जमीन से पैदा होने वाला आहार है जो सर्वथा प्रकृति के प्रतिकूल होता है। मांसाहार पृथ्वी पर जलाभाव के लिए उत्तरदायी है। प्राप्त आंकड़े बताते है कि प्रति टन मांस उत्पादन के लिए लगभग पांच करोड़ लीटर जल की आवश्यकता होती है। प्रति टन चावल के लिए 84 लाख एवं प्रति टन गेहूं के लिए 5 लाख लीटर जल की ही आवश्यकता पड़ती है। अमेरिका में कलकारखाने के कारण पर्यावरण विनाश की स्थिति पैदा हो गई है। चीन में आया 'कोरोना' वायरसस मांसाहार का ही परिणाम हो जिसके कारण मानव प्रजाति संकट में आ गई है।

निष्कर्ष :-

स्वच्छ एवं निर्मल पर्यावरण वर्तमान में विलुप्त हो गया है जिसका मुख्य कारण मानव की बढ़ती लालसा एवं विलसितापूर्ण जीवन पड़ती है। पर्यावरण प्रदूषण की विकटता का अनुमान हम इस बात से लगाया जा रहा है कि चीन में पर्यावरण प्रदूषण एवं मांसाहार के कारण आए वायरस कोरोना को काबु में करना कठिन हो गया है। चीन की सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय से 80,000 आम नागरिकों को मारने की अनुमति मांगी है। दुःख की बात है कि पर्यावरण प्रदूषण के दुष्प्रभाव इस प्रकार का संकेत दे रहे है कि मानव के आधुनिक लक्षण उसे पशुवत जीवन की ओर ले जायेंगे। इस गंभीर संकट के निवारण के लिए हमे प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं धर्म में प्रयुक्त उन संदेशों का प्रचार प्रसार करना होगा जिससे पूरे विश्व को प्राकृतिक पर्यावरण की महत्ता का ज्ञान हो जावे एवं सम्पूर्ण विश्व पर्यावरण के प्रति अपनी निष्ठुर भावना का परित्याग कर पर्यावरण संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाए।

यदि हम पर्यावरण संरक्षण करना चाहते है तो हमें खुद को प्रकृति के अधिक से अधिक करीब ले जाना पड़ेगा। जैनधर्म में विज्ञान के अनेक सिद्धांत एवं सूत्र दिये हुए है इनका समुचित पालन किया जावे तो कोई संदेह नहीं है कि पर्यावरण में कही भी असंतुलन अथवा विनाश की स्थिति उत्पन्न हो। जैनधर्म का मूलाचार अहिंसा है। अहिंसा केवल धर्म या दर्शन नहीं अपितु जीने की समग्र शैली है। पृथ्वी जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और प्राणी जगत की रक्षा जैनधर्म के आचरणों को अपनाकर की जा सकती है। अब समय आ गया है कि सम्पूर्ण विश्व को भौतिकवादिता का त्यागकर जैनधर्म के सिद्धांतों की पालना करनी चाहिए जिससे पर्यावरण संरक्षित हो और इसी सम्पूर्ण मानव जगत का कल्याण होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. गोयल, एम.के. 2014, पर्यावरण शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. गुर्जर, डॉ. रामकुमार, 2014, पर्यावरण अध्ययन, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
3. जैन, गरिमा, 2007, पर्यावरण अध्ययन सामाजिक एवं भौतिक व जैविक शिक्षण, युनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर।
4. भाटिया, डॉ. अरविन्द, 2015, पारिस्थितिक एवं पर्यावरण जैविकी, आर. बी. डी. पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 236–247

Sustainable Development and Geography : Theoretical Foundations and Frameworks

Nikita

Assistant Professor, Department of Geography, Vyapar Mandal Girls PG College, Hanumangarh Town

Abstract :

Sustainable development has become a prominent paradigm to address the multifaceted and interconnected issues of environmental decline, social disparity, and economic uncertainty. This paper questions and connects sustainable development's theoretical foundations and conceptual links to the topic of geography, highlighting how geographic thinking enriches sustainability knowledge. With leading models such as the Brundtland definition, the Three Pillars of Sustainability, and spatial planning theories, it presents geography as a source of unique analytical tools through notions such as regional analysis, human-environment interaction, and spatial justice. The paper further discusses recent constructs such as socio-ecological systems and place-based development and signals geography's contribution to integrative, place-specific sustainability strategies. After a critical literature overview of classic and recent sources, the study places geography not only as a background but as a critical, active discipline that informs sustainability transition across different scales and governance contexts. The paper concludes by indicating geographic perspectives as a priority element in designing adaptive and equitable pathways to a more sustainable future.

Key terms : Sustainable Development, Geography, Brundtland, Three Pillars of Sustainability, Human-Environment interaction, Sustainable future

Introduction :

In a world of growing climate change, environmental destruction, entrenched socio-economic injustices, and rapid urbanization, sustainable development has become a uniting framework for conceiving global policy and intellectual discourse. Originally articulated in the *Brundtland Report*, sustainable development is famously defined as "development that meets the needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their own needs" (World Commission on Environment and Development, 1987). After that, however, the notion has evolved as a complex,

many-sided paradigm that seeks to accommodate environmental sustainability, economic caution, and social equity. The Three Pillars Model that sums up these embracing aims has been a light both to intellectual and policy discourse (Purvis, Mao, & Robinson, 2019). As a compelling intellectual idea, however, its practical application is always erratic and uneven—between and within regions—highlighting a need for more foundational and geographically nuanced theoretical conceptualizations. This is where geography's discipline makes a critical contribution. Geography's focus on spatial relations, human-environment relations, and differences by place provides major interpretive and solution keys to sustainability challenges at scales as localized as hyper-local to as general as global (Adams, 2009; Castree et al., 2013). In looking at vulnerability of coastal megacities or adaptive potentials of rural towns, geographic views assist sustainability planning be place-based and reality-grounded. Furthermore, geography takes a further step over descriptive analysis; it provides normative knowledge through concepts such as spatial justice, scale, and place-based analysis that illuminate oft unequal environmental benefit and burden allocations (Swyngedouw, 2009; Scott & Storper, 2015). These paradigms are irreplaceable when crafting sustainability planning that is not only environmentally sustainable but also socially equitable and sensitive to place-specific contexts.

The emergence of sustainability science has further reinforced theoretical integration across disciplines and called for renewed exchange with geographic traditions such as environmental geography, political ecology, and spatial planning. Theories of resilience thinking, socio-ecological systems, and capability approaches have extended geography's application to critical domains of governance, adaptation, and sustainability transition (Folke et al., 2010; Deneulin & Shahani, 2009). These new developments in geography are increasingly recognized as critical to understanding and conceptualizing sustainability trajectories—particularly in a world exposed to linked risks, spatial inequality, and diverging agendas of development.

Here, geography is not only a background of sustainable development but is a core intellectual method that is used to construct substantive, spatially aware responses to global issues. This paper engages with these theoretical backgrounds and schemata, illustrating through geographies how they enhance conceptualization and practice of sustainability at a diverse set of spatial and temporal scales. This paper explores the theoretical roots and key concepts that connect sustainable development with the core concerns of geography. By drawing on both foundational models and current debates, it aims to show how geographic thinking deepens our understanding of sustainability and supports more integrated, locally grounded approaches to real-world challenges. In particular, it looks at how ideas like human-environment interaction, regional planning, and spatial justice shape efforts to build sustainability strategies that are both effective and fair.

The study is guided by three central questions :

- How have classical and contemporary ideas about sustainable development been shaped by geographic thinking?
- In what ways does geography help put sustainability principles into practice across different places and social settings?
- How do geographic frameworks influence the design of place-based, inclusive, and adaptive strategies for governing sustainability?

By engaging critically with these questions, the paper positions geography not as a secondary or purely descriptive field, but as a key player in interdisciplinary sustainability research—one that can help guide more just, resilient, and meaningful transitions toward sustainable futures.

The Concept of Sustainable Development: Origins and Debates :

The idea of sustainable development entered global conversation with the publication of *Our Common Future*—commonly known as the Brundtland Report—by the World Commission on Environment and Development (WCED) in 1987. It introduced the now widely recognized definition: "development that meets the needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their own needs" (WCED, 1987). More than just a memorable phrase, this definition marked a significant shift in development thinking—moving beyond a narrow focus on economic growth to embrace environmental responsibility and social inclusion.

The Brundtland Report emerged in response to mounting concerns about environmental degradation, growing consumption, and persistent global inequality. It framed sustainability as a shared global challenge, emphasizing the need for cooperation between wealthier and less affluent nations. Crucially, it recognized that environmental decline and economic underdevelopment are not isolated problems, but fundamentally interconnected (Adams, 2009). This integrated vision has since shaped major global agendas such as the United Nations Sustainable Development Goals (SDGs), which seek to align environmental protection, social equity, and economic development through 17 interconnected targets.

However, as sustainable development gained global traction, it also attracted substantial critique. Its broad and flexible nature—while useful for building consensus—has also led to ambiguity in both theory and practice. Scholars note that definitions of sustainable development often vary depending on which dimension is prioritized: ecological limits, social justice, or economic viability (Redclift, 2005; Hopwood, Mellor, & O'Brien, 2005). Some critics argue that the concept has been co-opted by technocratic and market-driven agendas, diluting its original transformative potential and avoiding deeper questions about structural inequality and ecological harm (Swyngedouw, 2007; Luke, 2005).

At the heart of these debates is a persistent question: Can economic growth, environmental protection, and social equity truly be pursued simultaneously—or are trade-offs inevitable? This tension has led to the emergence of more nuanced and interdisciplinary frameworks, many of which draw on geographical, ecological, and political-economic perspectives that emphasize the importance of local context, power dynamics, and relational thinking.

The Three Pillars of Sustainability :

One of the most well-known frameworks for understanding sustainable development is the "Three Pillars" model, which divides sustainability into environmental, economic, and social dimensions (Purvis, Mao, & Robinson, 2019). This model has been widely used in both academic and policy settings. It suggests that sustainable development can only be achieved when all three pillars are supported in balance.

Environmental sustainability involves protecting ecosystems, conserving biodiversity, and ensuring that natural resources are used within the Earth's ecological limits (Meadows et al., 2004).

Economic sustainability focuses on creating long-term economic value without undermining the social and environmental systems it depends on. This includes inclusive growth, decent employment, and responsible production.

Social sustainability emphasizes human rights, equity, access to essential services, and the well-being of communities—especially across different regions, genders, and generations (Dempsey et al., 2011).

While the Three Pillars model has been valuable, it has also faced criticism for treating the three domains as separate and equally weighted. In response, more recent thinking promotes a "nested" model, where the economy exists within society, and both are ultimately bounded by environmental limits (Giddings, Hopwood, & O'Brien, 2002). This perspective challenges development approaches that treat ecological constraints as optional and instead insists on recognizing the planet's natural boundaries as non-negotiable.

Geography's Role in Advancing Sustainable Development :

Geography provides a powerful intellectual foundation for understanding and promoting sustainable development. Grounded in the study of space, place, and scale, it encourages spatial thinking—pushing us to consider how sustainability challenges unfold differently across regions, landscapes, and communities. Beyond offering descriptive accounts of environmental change, geography equips us with critical tools to interpret patterns of vulnerability, inequality, and resilience (Goodchild, 2006; Cresswell, 2015).

One of the discipline's core strengths lies in its compatibility with systems thinking. Issues

like climate change, resource depletion, and urbanization are not isolated problems—they are part of larger, interconnected socio-ecological systems. Geography approaches these complexities by examining the dynamic relationships between natural environments and human societies, rather than viewing them in isolation. This aligns closely with socio-ecological systems theory, which understands people and nature as interdependent systems, shaped by feedback loops, thresholds, and the capacity to adapt over time (Berkes, Colding, & Folke, 2003).

Human-environment interaction has long been a central focus in geographic research. Whether it involves water management, tracking deforestation, or assessing disaster vulnerability, geographic analysis reveals how human activities shape ecological outcomes—and how environmental risks are unevenly distributed. These insights are crucial for understanding why some communities bear a disproportionate burden of environmental hazards while lacking the resources to respond effectively, reinforcing broader patterns of environmental injustice (Turner et al., 2003; Robbins, 2012).

Taken together, these perspectives position geography not just as a descriptive or observational field, but as a critical, integrative discipline within sustainability research. It connects spatial awareness with systems thinking, and combines empirical analysis with ethical reflection—making it an essential lens for developing sustainability strategies that are locally grounded, socially just, and environmentally responsible.

Conceptual Models of Sustainable Development in Geography :

Geography offers strong conceptual resources for applying sustainable development at diverse scales and in different contexts. The most visible among these is probably the regional geography viewpoint, whose emphasis is place specificity and socio-ecological systems. This prism helps planners and scholars produce place-specific agendas for sustainability that are sensitive to local culture, resource endowments, and governance capabilities (Adams, 2009; Castree et al., 2013). Regional views help draw out spatial inequities—such as uneven vulnerability to environmental risk or infrastructural differentials—which are normally obfuscated in global sustainability models (Scott & Storper, 2015).

Geographical Information System (GIS) use is also a prominent new component of sustainability planning activities. GIS enables environmental information to be visualized and examined spatially such that risk areas are identified, changes in ecosystems are monitored, and future developmental scenarios are modeled. The integration of GIS with sustainability planning promotes evidence-based decision-making, particularly in disaster risk planning, urban sprawl mitigation, and conservation zoning (Miller & Goodchild, 2015; Goodchild, 2006). In cities, GIS has been used to support resilience planning through mapping heat islands, flood-prone neighborhoods, and under-

resourced neighborhoods—gathering data that inform more equitable and ecologically supportive interventions (Cutter, 2006).

The third dominant model comes out of urban and rural sustainability planning, both now recognized as entailing related but different approaches. The urban models typically address issues of densification, green infrastructure, transportation systems, and energy efficiency (Wheeler, 2013). The rural models focus on land stewardship, sustainable agriculture, and conservation of ecosystem functions—commonly against a context of frailty of institutional capacity (McHarg, 1995; Dempsey et al., 2011). Both entail a spatial emphasis that considers interactions between ecological systems, human livelihoods, and institutions (Berkes et al., 2003; Turner et al., 2003).

These geographies, together, underpin the contention that sustainable development is not a technocratic nor a unidimensional but a contextual, a spatial, and a scale-sensitive process. Geography makes it possible for data, values, and practices to be linked together in a diverse set of contexts—such that sustainability efforts are not only theoretically sound but feasible and place-specific.

Theories and Models Informing Sustainability :

Sustainable development, albeit posited as a world desire, draws on diverse and sometimes conflicting theoretical traditions. These paradigms are responsible for how sustainability is visualized, contested, and interpreted over time and space. Within geography, three leading models—Ecological Modernization Theory, Political Ecology, and Resilience Theory—have significantly influenced concepts and practices of sustainability.

Ecological Modernization Theory (EMT) presumes environmental protection and economic growth are achievable through innovation, structural change of regulation, and adoption of green technologies. Sustainability is framed as a modernization process wherein cleaner production, eco-efficiency, and environmental policy integration lead to decoupling of economic activity and ecological harm (Mol & Sonnenfeld, 2000; Spaargaren & Mol, 1992). EMT has shaped sustainability strategies, particularly in the Global North, and shaped strategies like circular economy models and low-carbon shifts. Geography helps by showing spatial inequalities in such solution implementation, frequently highlighting that wealthier regions gain more through technological change while more exposed regions are subject to additional ecological risk.

Political Ecology presents a more critical viewpoint. It interrogates how environmental change is connected with relations of power, unequal histories, and socio-economic configurations. Instead of sustainability as a technical or managerial question, political ecology foregrounds that environmental devastation and injustice are frequently a result of unequal access to land, to water, and to political power (Robbins, 2012). Particular concern is given to spatial justice, which interrogates

how environmental ailments (like pollution, loss of forests, or climate impacts) are not randomly but rather unevenly spread—typically aligning with pre-existing configurations of race, class, and exclusion (Swyngedouw, 2009). Geography's analytical instruments of spatial analysis are employed to map and criticize these configurations and highlight the invisible geographies of injustice.

Ecologically-derived Resilience Theory adds a further layer by highlighting the capacity of socio-ecological systems to absorb shocks and adapt in response to change. The debate is shifted from conservation to transformation, and systems are mobilized that are capable of bouncing back—in a desirable direction—after shocks such as climate events, pandemics, or financial crises (Folke et al., 2010). Geography complements resilience thinking by highlighting context: resilience is not universally distributed and community response is framed through cultural belief, institutional configuration, and landscape-specific risk (Turner et al., 2003). This is congruent with geography's preoccupation with scale, place-specific governance, and adaptive capacity.

These three theories collectively demonstrate that sustainability is not a single course but a series of intersecting paths, each mediating politics, systems thinking, and spatial realities. Geography is that connector between them—between critique and planning, between world ambition and local response, and between theory and earthly practice.

Educational and Policy Perspectives :

Geography is at the heart of advancing sustainable development not only through theory and spatial analysis but through education, policy planning, and systems of governance as well. These sectors convert knowledge of geography into usable resources employed to build more equitable, resilient, and environmentally responsible societies.

Geography is a vital forum in advancing sustainability literacy in the education sphere. With its focus on place-based learning, thinking spatially, and systems thinking, geography educates learners to think critically around climate change, environmental justice, and global inequalities. Geography curricula are increasingly integrated with Education for Sustainable Development (ESD) principles, as UNESCO (2017) has prompted, combining equity, stewardship, and intergenerational responsibility as principles. Importantly, geography encourages localized learning—compelling learners to analyze issues of sustainability in their localities, thereby linking abstract debates with daily realities (Morgan, 2012). This synchronization renders geography a leading agent behind awareness and agency, preparing future citizens to make informed decisions in a closely interconnected world.

Beyond the classroom, geography is a substantial contributor to policy processes, particularly in advancing and localizing the United Nations Sustainable Development Goals (SDGs). SDGs require granular, spatially disaggregated data to support national and subnational scales of collective action

effectively. Geography meets that need through geospatial applications, planning indicators at a regional level, and spatial justice perspectives, so that local and national authorities are in a better position to track and tailor progress in goals such as sustainable cities (SDG 11), climate action (SDG 13), and life on land (SDG 15). Geographers are centrally engaged in localizing these international goals as locally applicable strategies that take cultural and ecological variations into account (Biermann & Kanie, 2017). Without that spatial anchoring, sustainability policies are more likely to be generic and unfocused in use contexts.

The subject of geography also informs a myriad of land use and spatial governance models essential to integrating sustainability principles in both the natural and built environment. Whether through urban planning zoning, park planning, or building out infrastructure, geographic paradigms help delimit allocation, regulation, and conflict over land use and occupation. Models such as collaborative planning (Healey, 2006) and territorial governance emphasize stakeholder engagement, multi-level governance, and spatial equity as sustainable land use and environmental stewardship keys. These models are particularly relevant in fissured societies, in which planning decisions must balance multiple and often competing agendas—economic, ecological, and social—while still responsive to long environmental constraints.

Together, these intellectual and policy agendas reflect geography's transformative possibilities for sustainability. By promoting critical thinking, enabling context-conscious governance, and informing policy with spatialities, geography ensures that sustainability is not only theorized but actually practiced inclusively, equitably, and place-wise.

Challenges and Critical Reflections :

Although sustainable development remains a key goal in global policy, it continues to face meaningful criticisms and practical obstacles. As the concept has been widely embraced by governments, corporations, and educators, scholars—especially geographers—have pointed out critical issues related to its core assumptions, practical challenges, and the kinds of knowledge it tends to exclude.

One ongoing challenge is the disconnect between theory and practice. Frameworks like the Sustainable Development Goals (SDGs) and the widely used Three Pillars model offer structured approaches, but their application on the ground is often patchy and uneven. Many initiatives are seen as symbolic gestures, where the language of sustainability is used without leading to real institutional change or measurable outcomes (Redclift, 2005; Biermann & Kanie, 2017). Geographic research has highlighted how limited local resources, fragmented governance, inadequate data, and top-down planning approaches often reduce the effectiveness of sustainability programs. For instance, some

development plans overlook marginalized communities or fail to consider local cultural and ecological contexts, creating a mismatch between global ambitions and local realities (Turner et al., 2003).

Another important critique focuses on the limitations of the Three Pillars framework. While useful in framing discussions around the environmental, economic, and social aspects of sustainability, it tends to treat these areas as separate and equally weighted, rather than interconnected and often unequal in priority (Giddings, Hopwood, & O'Brien, 2002). This can lead to trade-offs where economic growth is given precedence over environmental protection. Moreover, applying this model uniformly across contexts can ignore the diversity of political conditions, regional histories, and social inequalities (Hopwood, Mellor, & O'Brien, 2005). Geography offers an important counterpoint by arguing for an approach that incorporates spatial and justice-based perspectives—not just quantitative metrics.

A growing body of scholarship also critiques mainstream sustainability thinking for relying too heavily on Western, liberal, and technocratic worldviews. These approaches often prioritize control, efficiency, and technological fixes, sidelining ways of knowing that view humans as part of, rather than separate from, the natural world (Escobar, 2011). Indigenous perspectives, for example, emphasize relationships with land, responsibilities across generations, and spiritual reciprocity—values that are often absent from conventional sustainability frameworks (Whyte, 2018). Including these perspectives not only enriches ethical discussions but also challenges dominant power dynamics in environmental governance.

There is also increasing momentum behind calls for decolonial and pluralist approaches to sustainability—ones that emphasize local leadership, traditional knowledge, and epistemic justice. These approaches seek more than surface-level inclusion; they advocate for genuine power-sharing in shaping sustainability strategies. Geography provides essential tools for examining how space, power, and knowledge are intertwined—revealing which voices are heard, which are marginalized, and how governance structures can be reimagined to reflect a broader range of experiences.

Ultimately, while sustainable development remains a crucial global objective, it must be constantly reexamined, adapted, and expanded. Geography contributes to this process not by dismissing sustainability, but by uncovering its limits and helping to shape alternatives that are more inclusive, just, and rooted in local realities.

Conclusion :

This paper has explored the rich theoretical terrain that connects sustainable development and the discipline of geography, underscoring how geographic thought provides critical insights into the spatial, systemic, and social complexities of sustainability. From foundational models like the

Brundtland definition and the Three Pillars framework, to more critical and evolving perspectives such as political ecology, resilience theory, and indigenous knowledge systems, it is clear that sustainability cannot be understood or implemented through a one-dimensional lens.

Geography emerges as more than a contextual backdrop—it is a conceptual bridge that links global ambitions with local realities. Its tools, including regional analysis, GIS-based planning, and place-based policy design, allow for a more grounded approach to sustainable development—one that acknowledges the variability of environmental challenges across different scales, cultures, and political economies (Goodchild, 2006; Castree et al., 2013). Geography also exposes how environmental risks and benefits are distributed unevenly, making visible the importance of spatial justice and equity in the sustainability agenda (Swyngedouw, 2009; Scott & Storper, 2015).

At the same time, this review has shown that mainstream sustainability frameworks—while useful—are not without limitations. The Three Pillars model, for instance, has been critiqued for oversimplifying the relationship between economy, environment, and society (Giddings et al., 2002). Similarly, ecological modernization theory, though optimistic about green growth, may underestimate structural inequalities or ecological thresholds (Spaargaren & Mol, 1992). Critical geographers and scholars of political ecology remind us that sustainability must be situated in histories of power, marginalization, and resistance (Robbins, 2012; Escobar, 2011).

Looking forward, future research and planning efforts must grapple with three key imperatives. First, sustainability thinking must be contextualized—sensitive to regional and cultural variation, not applied uniformly. Second, planning must be participatory and justice-oriented, elevating marginalized voices and community knowledge systems, including those of Indigenous peoples (Whyte, 2018). Third, interdisciplinary research should move beyond the technocratic to embrace reflexivity, uncertainty, and adaptation, drawing on frameworks such as resilience thinking to guide responses to global shocks like climate change and pandemics (Folke et al., 2010; Turner et al., 2003).

Ultimately, the integration of geography into sustainability theory and practice enriches both fields. It brings spatial sensitivity, critical reflection, and practical tools to the challenge of building a future that is not only environmentally viable, but also socially equitable and deeply grounded in place. As global environmental and social crises intensify, the insights of geography are not just valuable—they are indispensable.

References :

1. Adams, W. M. (2009). *Green development: Environment and sustainability in a developing world* (3rd ed.). Routledge.

2. Berkes, F., Colding, J., & Folke, C. (Eds.). (2003). *Navigating social-ecological systems: Building resilience for complexity and change*. Cambridge University Press.
3. Biermann, F., & Kanie, N. (2017). Governing the SDGs: Introduction to a special issue. *Global Policy, 8*(S1), 5–15.
4. Castree, N., Demeritt, D., Liverman, D., & Rhoads, B. (Eds.). (2013). *A companion to environmental geography*. Wiley-Blackwell.
5. Cresswell, T. (2015). *Place: An introduction* (2nd ed.). Wiley-Blackwell.
6. Cutter, S. L. (2006). The geography of social vulnerability: Race, class, and catastrophe. *Social Science Quarterly, 87*(S1), 242–261.
7. Dempsey, N., Bramley, G., Power, S., & Brown, C. (2011). The social dimension of sustainable development: Defining urban social sustainability. *Sustainable Development, 19*(5), 289–300.
8. Escobar, A. (2011). *Encountering development: The making and unmaking of the Third World*. Princeton University Press.
9. Folke, C., Carpenter, S. R., Walker, B., Scheffer, M., Chapin, T., & Rockström, J. (2010). Resilience thinking: Integrating resilience, adaptability and transformability. *Ecology and Society, 15*(4), Article 20.
10. Giddings, B., Hopwood, B., & O'Brien, G. (2002). Environment, economy and society: Fitting them together into sustainable development. *Sustainable Development, 10*(4), 187–196.
11. Goodchild, M. F. (2006). GIS and spatial analysis in the social sciences. *Proceedings of the National Academy of Sciences, 103*(51), 19317–19323.
12. Healey, P. (2006). *Collaborative planning: Shaping places in fragmented societies* (2nd ed.). Palgrave Macmillan.
13. Hopwood, B., Mellor, M., & O'Brien, G. (2005). Sustainable development: Mapping different approaches. *Sustainable Development, 13*(1), 38–52.
14. Luke, T. W. (2005). Neither sustainable nor development: Reconsidering sustainability in development. *Sustainable Development, 13*(4), 228–238.
15. McHarg, I. L. (1995). *Design with nature*. Wiley.
16. Meadows, D. H., Randers, J., & Meadows, D. L. (2004). *Limits to growth: The 30-year update*. Chelsea Green Publishing.
17. Miller, H. J., & Goodchild, M. F. (2015). Data-driven geography. *GeoJournal, 80*, 449–461.
18. Mol, A. P. J., & Sonnenfeld, D. A. (2000). Ecological modernisation around the world: An introduction. *Environmental Politics, 9*(1), 3–16.
19. Morgan, A. (2012). Teaching geography for a sustainable world. *Journal of Geography in*

Higher Education, 36(1), 17–29.

20. Purvis, B., Mao, Y., & Robinson, D. (2019). Three pillars of sustainability: In search of conceptual origins. *Sustainability Science, 14*(3), 681–695.
21. Robbins, P. (2012). *Political ecology: A critical introduction* (2nd ed.). Wiley-Blackwell.
22. Scott, A. J., & Storper, M. (2015). The nature of cities: The scope and limits of urban theory. *International Journal of Urban and Regional Research, 39*(1), 1–15.
23. Spaargaren, G., & Mol, A. P. J. (1992). Sociology, environment, and modernity: Ecological modernization as a theory of social change. *Society & Natural Resources, 5*(4), 323–344.
24. Swyngedouw, E. (2007). Impossible "sustainability" and the post-political condition. In R. Krueger & D. Gibbs (Eds.), *The sustainable development paradox* (pp. 13–40). Guilford Press.
25. Turner, B. L., Kasperson, R. E., Matson, P. A., McCarthy, J. J., Corell, R. W., Christensen, L., … Schiller, A. (2003). A framework for vulnerability analysis in sustainability science. *Proceedings of the National Academy of Sciences, 100*(14), 8074–8079.
26. UNESCO. (2017). *Education for sustainable development goals: Learning objectives*. United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization.
27. Whyte, K. P. (2018). Indigenous science (fiction) for the Anthropocene: Ancestral dystopias and fantasies of climate change crises. *Environment and Planning E: Nature and Space, 1*(1–2), 224–242. https://doi.org/10.1177/2514848618777621
28. World Commission on Environment and Development. (1987). *Our common future*. Oxford University Press.

modinikita464@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 248-249

डॉ. मंजू चौहान : नारी संवेदना, सांस्कृतिक चेतना और आत्मबोध की सशक्त कवयित्री

डॉ. नरेश कुमार सिहाग
गुगन निवास, 26 पटेल नगर, भिवानी, हरियाणा।

परिचय :–

हिंदी कविता की समकालीन धारा में कुछ स्वर ऐसे हैं जो नारी संवेदना, आत्मानुभूति और सामाजिक सरोकारों को बहुत ही मार्मिकता से प्रस्तुत करते हैं। 'डॉ. मंजू चौहान', जो उत्तर प्रदेश के धामपुर से हैं, उन्हीं रचनाकारों में एक हैं जिनकी कविताएँ मन को छूती ही नहीं, बल्कि जीवन को भी दिशा देती हैं। उनकी रचनाएँ एक ओर स्त्री मन की गहराइयों को छूती हैं तो दूसरी ओर सामाजिक विसंगतियों पर गहरा प्रश्न भी खड़ा करती हैं।

1. कविता में आत्मीयता और अनुभव की गहराई :–

डॉ. मंजू चौहान की कविताएँ 'निजी अनुभवों और सामाजिक पर्यवेक्षण' का मिश्रण हैं। वे जीवन के यथार्थ को सादगी से कहती हैं, फिर भी उनका प्रभाव गहरा होता है। उनकी कविताओं में एक ऐसी स्त्री बोलती है, जो केवल पीड़िता नहीं, बल्कि 'सोचने, समझने और बदलने वाली चेतन सत्ता' है।

एक कविता में वह लिखती हैं :

'मैं सिर्फ माँ, बहन या बेटी नहीं,
मैं समय की बदलती लकीर भी हूँ।'

यह पंक्ति उनके समग्र रचनात्मक स्वर की दिशा दर्शाती है।

2. नारी चेतना और आत्मसम्मान का स्वर :–

उनकी अधिकांश कविताओं में 'नारी अस्मिता, आत्मनिर्भरता और सम्मान' के स्वर प्रमुखता से दिखाई देते हैं। वे स्त्री को परंपराओं में कैद करने की प्रवृत्तियों का विरोध करती हैं, परंतु यह विरोध किसी उग्रता में नहीं, बल्कि 'संवेदनशील प्रतिरोध और विवेकपूर्ण आलोचना' में व्यक्त होता है।

कई रचनाओं में वे स्त्री की चुप्पियों को आवाज देती हैं, और उसकी पीड़ा को सामाजिक विमर्श में लाती हैं।

3. भाषा और शिल्प :–

डॉ. मंजू चौहान की भाषा 'सरल, स्पष्ट, संवेदनशील और संप्रेषणीय' है। वे अनावश्यक बिम्ब या

शब्दाडंबर से बचती हैं और सीधे भाव को व्यक्त करने में विश्वास रखती हैं। उनकी कविताओं में 'मुक्तछंद' का प्रयोग अधिक मिलता है, जिससे वे विचारों को सहजता से बहने देती हैं।

उनकी शैली में 'कहीं–कहीं प्रतीकात्मकता, आत्मालाप, और संवादात्मक प्रवृत्तियाँ' भी दिखती हैं, जो पाठक को कविता के भीतर खींच लेती हैं।

4. सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना :-

डॉ. मंजू चौहान की कविताओं में 'भारतीय संस्कृति, पारिवारिक मूल्य, और सामाजिक जिम्मेदारियों' का गहरा बोध दिखाई देता है। वे आधुनिकता के नाम पर सब कुछ त्यागने की पक्षधर नहीं हैं, बल्कि एक 'संतुलित दृष्टि' से देखती हैं – जहाँ परंपरा और प्रगति के बीच संवाद होता है।

5. प्रकृति और जीवन-दर्शन :-

कई कविताओं में उन्होंने 'प्रकृति के तत्वों : वर्षा, धूप, चाँद, फूल, तितलियाँ : को प्रतीकों' के रूप में प्रयुक्त किया है। यह प्रयोग न केवल सौंदर्य रचता है, बल्कि 'जीवन–दर्शन' को भी उजागर करता है।

एक उदाहरण देखें :

''**जब फूलों ने मुस्कान लौटाई,**
मैंने सीखा : काँटों से डरना नहीं है..।''

यह एक साधारण पंक्ति होते हुए भी 'संघर्ष से उबरने का गूढ़ संदेश' देती है।

6. सामाजिक सरोकार और यथार्थवाद :-

उनकी कई कविताएँ 'समाज के दोहरे मानदंडों, जाति–भेद, स्त्री उत्पीड़न, और शहरी–ग्रामीण विसंगतियों' को उजागर करती हैं। वे न तो कड़े नारे लगाती हैं और न ही केवल करुणा बिखेरती हैं : बल्कि एक 'सचेत, विचारशील और परिवर्तनकामी दृष्टिकोण' से समाज का विश्लेषण करती हैं।

निष्कर्ष :-

'डॉ. मंजू चौहान' की कविताएँ समकालीन हिंदी कविता की उन रचनाओं में शामिल हैं जो 'हृदय से उपजती हैं और मस्तिष्क को छूती हैं। वे स्त्री की व्यथा नहीं, उसकी ''दिशा' हैं। वे समाज की पीड़ा नहीं, 'समाधान की चेतना' हैं।

उनका रचनात्मक अवदान केवल फेसबुक पोस्टों तक सीमित नहीं, बल्कि हिंदी कविता की स्तरीय यात्रा में एक मूल्यवान पड़ाव है। भाव, विचार और भाषा : तीनों स्तरों पर डॉ. मंजू चौहान की कविताएँ 'सार्थक, सजीव और समकालीन' हैं।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 250–255

नैतिक दर्शन एवं साहित्य

डॉ. अजित कुमार विश्वकर्मा
विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग
अन्नदा महाविद्यालय, हजारीबाग, झारखंड– 825301

भारतीय दर्शन में नैतिक मूल्यों की विशेष उपयोगिता रही है, जिसका प्रभाव हम साहित्य में भी देखते हैं। जब हम दर्शन शास्त्र में नैतिक सिद्धांतों की बात करते हैं तो भगवद्गीता विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

'भारतीय दर्शन का इतिहास' नामक ग्रन्थ में डॉ दास गुप्ता ने भगवद्गीता को नैतिक धार्मिक ग्रन्थ के रूप में स्वीकारा है।

भगवद्गीता का नैतिक सन्देश सार्वभौम है। गीता की रचना वेदव्यास के द्वारा की गई है। आधुनिककाल में बाल गंगाधर तिलक ने 'गीता रहस्य', महात्मा गांधी ने 'अनाशक्ति योग' तथा श्री अरविंद ने 'गीता निबन्ध' नामक ग्रन्थ लिखे। डॉ राधाकृष्णन के अनुसार –'गीता महाभारत काल का ग्रन्थ है।' – (indian philosophy, vol - 1] page - 529)

भगवद्गीता में निष्काम कर्म की प्रधानता है –

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।' –
(भगवद्गीता, अध्याय –2, श्लोक – 47)

प्रायः भारतीय दर्शन चाहे आस्तिक हो या नास्तिक, चर्वाक को छोड़कर सभी नैतिक कर्म की प्रधानता को स्वीकार करते हैं। चर्वाक दर्शन केवल सुख की प्राप्ति को ही नैतिक मानता है –

'यवज्जिवेत सुखम जीवेत।
ऋणम कृत्वा घृतं पीवेत।। – (Charvaka Shasti, page - 24)

(Let us eat, drink and be merry for tomorrow we may die. We should fully enjoy the present.)

चर्वाक का नैतिक सिद्धांत मदिरा, कामिनी व शारीरिक सुख है। इनका सुखवाद यूरोपीय सुखवाद Egoistic Hedonism से मेल खाता है।

भारतीय दर्शन और साहित्य में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहा है। किसी भी देश के साहित्य से वहाँ के दर्शन से गहरा संबंध होता है।

संसार की सबसे पुरानी सभ्यता के रूप में भारतीय सभ्यता की गणना की जाती है। नैतिक शास्त्रों का विशाल भंडार भारत में उपस्थित है जिसने सदियों से हमारी सभ्यता का मार्गदर्शन किया है। भारत में धर्म और

नैतिकता के मध्य गहरा संबंध है। नीति शास्त्र के अनुसार मनुष्य को अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना पड़ता है। नैतिकता दो प्रकार की होती है – व्यक्तिगत और सामाजिक। नैतिक शास्त्र मूल्यों तथा मानकों पर आधारित होता है।

मनुष्य जीवन में सामाजिक चेतना नैतिकता को मूल्य के रूप में स्वीकारती है और यही मनुष्य होने का प्रथम शर्त है। 'नैतिक' शब्द 'नीति' से निर्मित है। नीति अर्थात नियम। सामाजिकता में कुछ चीजें कर्तव्य रूप में वर्णित है तो कुछ अन्य चीजें वर्जित भी हैं। इसी से समाज में नैतिकता की स्थापना हुई है। नैतिकता ही सामाजिक मूल्य है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। प्रत्येक देश और काल के कुछ सामाजिक मूल्य बने होते हैं जिस पर उस समाज का मनुष्य जीवन जीता आया है। समय और समाज के आधार पर मूल्यों में परिवर्तन होता रहता है। भारतीय सामाजिक मूल्य और अमेरिकी सामाजिक मूल्य में अंतर होना स्वाभाविक है। ये शाश्वत और एक समान नहीं होते। नैतिक मूल्य ही वे मौलिक तत्व हैं जिनके आधार पर मनुष्य पशु से भिन्न होता है। बड़ों का सम्मान, पारिवारिक सम्बन्ध तथा मानवीय रिश्तों में आस्था, परोपकार, दानशीलता आदि गुण मनुष्य में पाए जाते हैं पशु में नहीं।

निश्चय ही समय और समाज के अनुसार नैतिक मूल्यों में अंतर आता है किंतु कुछ नैतिक मूल्य एक समय में सभी समाज में एक समान स्थापित होते हैं। इनमें कुछ परिवर्तित भी होते हैं। जैसे भारतीय सन्दर्भ में विवाह पूर्व यौन संबंध निषेध है किंतु यूरोपियन समाज में यह सहज प्रक्रिया स्वरूप मान्य है। यह वहां नैतिक मूल्य के रूप में स्थापित नहीं है। ठीक इसी प्रकार 'आदर' शब्द की परिभाषा भी समय सापेक्ष है। इस धरती को मनुष्यता के साथ मनुष्य के जीने योग्य बने रहने के लिये नैतिक मूल्यों का बने रहना आवश्यक है।

वास्तव में विचारणीय है कि नैतिकता का उत्स कहाँ है? इसे मनुष्य कैसे धारण करता है। यह सीखने के बजाय हमारे भीतर प्रस्फुटित होता है। इसके विकास में हमारे परिवार, माता–पिता, समाज, शिक्षण संस्थानों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसमें साहित्य की विशेष भूमिका है। हमारा बचपन अनगढ़ होता है तथा हमारी शिक्षा–दीक्षा पर ही हमारे व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इतिहास से यह ज्ञात होता है कि हमारे महापुरुष–गांधी, शिवाजी आदि, किसी न किसी कहानी या साहित्य की अन्यान्य विधाओं के प्रेरक प्रसंगों से अवश्य प्रभावित रहे हैं। इसलिए बच्चों को ऐतिहासिक, पौराणिक तथा सांस्कृतिक कथाओं से परिचित कराना चाहिए ताकि उनके जीवन में वीरता, साहस, परोपकारिता, देशप्रेम, न्याय, सच्चरित्रता, सम्मान व सत्यवादिता जैसे उद्दात गुणों का विकास हो। अच्छे कर्म का फल अच्छा एवं बुरे कर्म का बुरा फल होता है। संत रहीम की ये पंक्तियां परोपकारिता को बल देती हैं –

यो रहीम सुख होत है,उपकारी के संग।
बाँटनवारे को लगे, ज्यों मेहंदी के रंग।।

मानस में भी वर्णित है –

'परहित सरिस धरम नहीं भाई।'

'बच्चे स्वर्ग के देवताओं की अमूल्य भेंट हैं।' – पाश्चात्य विचारक 'पोलाक' के इस कथन के समान ही हमारे यहाँ भी श्बच्चे भगवान के रूप होते हैंश कहा गया है। आज के बच्चे ही भविष्य के नागरिक होते हैं। इसलिए उन्हें सक्षम और योग्य बनाने के साथ ही उनमें उच्च मानवीय मूल्यों का बीजारोपण करना चाहिए जिससे

वे राष्ट्र के विकास में अपना रचनात्मक सहयोग दे सकें।

'भारत एक सांस्कृतिक एवं धर्म प्रधान देश है। हमारी संस्कृति ही हमारी धरोहर है। ....सारा विश्व अशांत है, आतंकवाद का दानव समस्त विश्व को निगलने की ताक में है। आये दिन निर्दोष, निरीह प्राणियों को बम विस्फोट तथा प्रक्रियाओं द्वारा मौत के घाट उतारा जा रहा है। सभ्यता की भौतिक दौड़ में मानवीय मूल्य, आध्यात्मिक सोच, आत्मिक उन्नति सब खोते चले जा रहे हैं। 'अति सर्वत्र वर्जयते' की उक्ति आज की भौतिक चकाचौंध पर लागू होती है।'[1]

आज की गम्भीर और अशांत स्थिति पर कवि की लिखी पंक्तियां विचारणीय हैं –

'जान पड़ता है सब संकट बिसारकर
मानव है नाश के कगार पर
जागी है उसमें पाशविकता, बधिकता
देखता नहीं है कुछ वृद्ध- बाल
सबके लिए है काल
दस्युसम घात में है खड़ा
लज्जा नहीं आती है, आत्मा के हनन की।'

वर्तमान समाज में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। परिवार बदलें हैं, जीवन शैली परिवर्तित हुए हैं। टेलीविजन, इंटरनेट, सेटेलाइट चैनलों, मोबाइल आदि ने हमारे जीवन शैली को बहुत प्रभावित किया है। इनमें प्रस्तुत की जा रहीं सामग्रियों ने बच्चों व युवाओं के ऊपर नकारात्मक प्रभाव डाला है। ढहते नैतिक मूल्यों के इस दौर में साहित्य ही इन्हें संजोए और बचाएं रखने का अस्त्र सिद्ध हो सकता है। साहित्यकारों, मनोवैज्ञानिकों एवं समाजसेवियों द्वारा इसके सार्थक प्रयोग से ही अच्छे पठनीय सामग्री को बढ़ावा दिया जा सकता है।

वर्तमान समय उथल–पुथल भरा और अशांत है। निश्चय ही इसका मनुष्य जीवन पर भी स्पष्ट दिख रहा है। पुरानी जिंदगी हमें रास नहीं आ रही और तकनीकी युग मानसिक शांति प्रदान करने में पूर्णतः असमर्थ है। परिस्थितियों और सामाजिक परेशानियों से घिरा मानव बेबस नजर आ रहा है। बच्चों में नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना करने तथा सम्बन्धों में सामंजस्य तथा दायित्व निभाने की भावना क्रमशः लुप्त होते जा रहा है। कवि विलियम वर्ड्सवर्थ का कथन सत्य प्रतीत हो रहा –

'The World is too much with us, we have no time to stand and stare.'

समाज में तेजी से हो रहे मूल्य परिवर्तन से उपजने वाली समस्याओं से निपटने हेतु प्राचीन और नवीन के साथ कैसे सामंजस्य स्थापित किया जाए, इसके लिए प्रयत्न करना होगा। हमारी शिक्षा प्रणाली को मानवीय मूल्यों को स्थापित करने में सहायक बनाना होगा।

'शिक्षितों के तबके में मानवीय संवेदना, विश्वास, सम्मान आदि नैतिक तत्वों का अभाव परिलक्षित हो रहा है। हर रोज अखबारों की खबरें यह प्रमाण देने में काफी है कि उच्च शिक्षित होने का दम्भ भरने वाले समाज में दैत्य वृत्ति, निर्दयता, लालच, शोषण, घात, कत्ल, भ्रष्टाचार, ठगी आदि किस तरह से सामाजिक ताने–बाने को खोखला कर रहे हैं।'[2]

वर्तमान में जितनी भी समस्याएं एवं चुनौतियां हैं उन सबके मूल में बौद्धिक संभ्रम है। आज राष्ट्रीय एकता

व अखंडता को निगलने वाले तत्व अथवा आर्थिक विषमता की खाई को चौड़ी करने वाली समस्याएं या सामाजिक जीवन की शुचिता व नैतिकता को ध्वस्त करने वाला तत्व–सबके मूल में बौद्धिक–शैक्षिक पोषण ही है। साहित्य लोकमानस के निर्मिति के अलावा संस्कृति के संवर्धन में सहायक है। देश की समस्याओं और चुनौतियों का कारण राजनीतिक प्रदूषण भी है। जब राजनीति डगमगाती है तो उसे साहित्य ही राह दिखता है। इसके लिए साहित्य को भी अपने धर्म पथ पर अडिग होना पड़ेगा।

'समृद्ध साहित्य से ही भारतीय साहित्य और भारतीय संस्कृति में आत्मनिरीक्षण और पूर्वव्यापीकरण का माध्यम है एवं इसके माध्यम से नैतिकता और मूल्यों पर व्यवस्थित और वैचारिक विश्लेषण प्रभावित है जो मूल्य संवर्धन पर कालानुक्रमिक प्रभाव छोड़ता है।...नैतिकता सबसे बुनियादी तत्वों में से एक है जो अच्छे और बुरे के बीच की रेखा का सीमांकन करता है।'[3]

किसी भी व्यक्ति के जीवन मूल्यों पर ही उसकी प्रतिष्ठा आधारित होती है। दुनिया की कई संस्कृतियां इसीलिए लुप्त हो गईं क्योंकि उनके मूल तत्व दूषित हो चुके थे। भारत की अध्यात्मिकता में भारतीय संस्कृति और भारतीय मूल्य निवास करते हैं। हमारे बुजुर्गों, माता–पिता, गुरु, अतिथि आदि का सम्मान, पीड़ितों के प्रति करुण भाव, प्रकृति संरक्षण, अहिंसा, समन्वयवादी दृष्टिकोण, विविधता में एकता ही भारतीय संस्कृति का मूल तत्व है।

'साहित्य मानवीय संवेदनाओं का लिखित संग्रह होता है जिसका उद्देश्य मनोरंजन, शिक्षा, समाज सुधार आदि होता है। साहित्य हर सदी का उतार–चढ़ाव देखते हुए अमर हो जाता है। तुलसीदास, सूरदास, कालिदास आदि कवियों के काव्य आज भी हृदय को आंदोलित करते हैं। ....अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध नाटककार विलियम शेक्सपियर अपने नाटकों में सामाजिक, नैतिक एवं मानवीय शिक्षा के मूल्यों को बखुबी से सम्प्रेषण के कारण विश्व विख्यात हैं।'[4]

वर्तमान में 'पर्यावरण' शब्द का अर्थ बहुआयामी हो गया है। प्रदूषण और पर्यावरण आज सर्वव्यापी समस्या बनकर उभरी है। किसी भी प्रकार का प्रदूषण हो, वह विश्व के लिए अहितकर है। संसार का कोई भी धर्म हो, सभी वनस्पति, पशु–पक्षी, समस्त जीवों के संरक्षण व अहिंसा का समर्थन करता है। इन समस्त प्रदूषण–संरक्षण के मध्य हमारा ध्यान नैतिक प्रदूषण की ओर कम ही जाता है। देश में नैतिकता की स्थिति चिंतनीय है। दैनिक अखबारों या खबरों द्वारा प्राप्त समाचारों से यह सिद्ध होता है कि हम किस ओर जा रहे हैं ? चारो तरफ घूसखोरी, बेईमानी, मिलावट–खाद्य सामग्री से लेकर दवा तक, जमाखोरी, मुनाफाखोरी, ब्लैकमेलिंग, अपहरण, टैक्स चोरी, बिजली चोरी, चुनाव में अनुचित साधनों का प्रयोग, शासकीय सम्पत्ति का क्षति व दुरुपयोग, दंगे–फसाद कराना, धर्म भाषा सम्बन्धी विवाद खड़ी करना, आतंकवाद–नस्लवादी भावना को प्रश्रय देना, दूसरों को मानसिक–शारीरिक चोट पहुंचाना, मजबूरी का फायदा उठाना, स्त्रियों के साथ अभद्र एवं अमानवीय घटनाएं हमारे नैतिक प्रदूषण का प्रमाण है। वर्तमान समाज में असहिष्णुता चरम पर है। छोटी–छोटी बात पर लोग मारपीट पर उतर आते हैं। चंद पैसों अथवा वैमनस्यता के कारण एक दूसरे की जान लेने से नहीं हिचकते। परदुःखकातरता जैसी भावना उनमें कहीं नहीं दिखती है। किसी दुर्घटना में घायल व्यक्ति की मदद के बजाय उसकी वीडियो बनाने लगते हैं। बुजुर्गों एवं माता–पिता के प्रति संवेदनशीलता एवं सम्मान भाव लुप्त होता जा रहा। एक प्रोफेसर पुत्र ने अपनी बीमार मां से छुटकारा पाने के लिए छत से गिराकर मार डालता है।

हाल ही में वाराणसी में एक बुजुर्ग मां को उसके बच्चे उनसे छुटकारा पाने के लिए रात के अंधेरे में सड़क पर छोड़ जाते हैं। ऐसी तमाम खबरें मनुष्यता पर प्रश्न चिन्ह खड़ी करती हैं। आज स्वतंत्र भारत में भी मध्यकाल की तरह स्त्रियों को वस्तु रूप में देखा जाता है। प्रतिशोध की भावना का गाज स्त्रियों पर गिरता है। अगर वो किसी से असहमति प्रकट करती हैं या अस्वीकारती हैं तो उन पर तेजाब फेंक दिया जाता है या उन्हें जिंदा जला दिया जाता है। उनके साथ विभिन्न किस्म के पाशविक कृत्य किया जाता है। लोगों की अमानुषिक कृत्य, नैतिक पतन हमें झकझोर डालता है। लोग आपदा में भी अवसर तलाश रहे हैं।

इस प्रकार के नैतिक अधोपतन व्यक्ति के स्वार्थपरता, लालच, बुरी संगत, प्रतिस्पर्धा, अकर्मण्यता, अति महत्वाकांक्षी व चरित्रहीनता के कारण है।

वर्तमान समय में निरन्तर परिवर्तित समाज में व्यक्ति आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है। उसे एक दायित्व विहीन समाज पसंद आने लगा है। उसे एकाकी जीवन रास आने लगा है तथा अपनों के लिए उसके जीवन में कोई स्थान नहीं है। 'बदलती मानसिकता, उच्च स्तरीय जीवन शैली, भौतिक चकाचौंध, अपनेपन की चाह, अतिशय यांत्रिकता, सम्बन्धों की कृत्रिमता, भावों का अभाव, मूल्यहीनता आदि कितनी स्थितियां उत्पन्न हो गई हैं जिससे मूल्य गिरते जा रहे हैं। स्वछंद व खुला वातावरण जहां अत्याधुनिक का जन्म दे रहा, वहीं बदलती टेक्नीक व यांत्रिकता ने जहां व्यक्ति को घर बैठे सुविधाएं व सरल जीवन दिया है, वहीं सम्बन्धों से क्षीण कर दिया है।'[5]

तो आज आवश्यकता इस बात की है कि हम संसार की आध्यात्मिक शक्ति स्रोत ईश्वर की सत्ता में अपनी आस्था एवं विश्वास जगाएं। हमारी संस्कृति विकसित हो। हमारे व्यवहार में, सोच में सद्भावना, प्रेम, त्याग व सभ्यता झलके। साथ ही हमारे माता पिता, पूर्वज भी हमारे ऊपर गर्व कर सकें।

निष्कर्ष :-

वर्तमान समाज गिरते नैतिक मूल्य के साथ पतन की ओर बढ़ता प्रतीत हो रहा है। असहिष्णुता चरम पर है। स्वार्थपरता इतनी बढ़ गयी है कि लोग अपने अलावा कुछ और नहीं सोचते। ऐसी स्थिति से बचने के लिए हमें अपने साहित्य और संस्कृति की ओर वापस लौटना पड़ेगा। दर्शन व साहित्य हमारी सांस्कृतिक धरोहर है। इसके भावन से मनुष्य अपनी समस्याओं का समाधान व मानसिक तनाव कम कर सकता है। यह सत्यता से परिचित कराते हुए हमें जीवन जीना सिखाता है। एक अच्छा दर्शन साहित्य हमेशा हमारे विचारों व भावनाओं को शुद्ध एवं परिमार्जित करता है। दर्शन जीवन के सत्य एवं सुंदर प्रदर्शन के साथ 'जीवन जीने की कला' सिखाता है।

हमें देश तथा काल के अनुसार जीवन मूल्यों को पहचान कर समाज तथा राष्ट्र के लिए हितकारी बनना होगा। मूल्यों पर आधारित जीवन यापन करना पड़ेगा। भले ही हमें मूल्यों के निर्धारण में कष्टों का सामना करना पड़े लेकिन हमें त्याग व सत्य के मार्ग पर चलना ही होगा।

विज्ञान और अध्यात्म दर्शन में तादात्म्य स्थापित करके मानव मात्र के संदर्भ में विचारना होगा। मानवमात्र के हित में स्वहित ढूंढना जीवन का उद्देश्य होना चाहिए। दर्शन, धर्म, संस्कृति एवं नैतिकता एक ही सिक्के के दो पहलू की तरह आपस में जुड़े हुए हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से प्रेम, शांति व भाईचारे को संसार में स्थापित करना होगा।

सन्दर्भ संकेत :-

1. m-hindi.indiawaterportal.org, डॉ. जयश्री शुक्ल, प्रदूषण, धर्म, संस्कृति एवं नैतिकता का परिप्रेक्ष्य।
2. www.jagran.com, 7 अप्रैल– 2022, संजय पोखरियाल, नैतिक शिक्षा ही सामाजिक मूल्यों की स्थापना का सशक्त माध्यम।
3. m.sahityakunj.net, भारतीय जीवन मूल्य, डॉ सुनील कुमार शर्मा, 1 जुलाई –2020
4. m.sahityaKunj.net, रचना जैन, आधुनिक परिवेश में नैतिक मूल्यों के उत्थान में साहित्य का योगदान, 15 जनवरी– 2021
5. www.apanimaati.com, प्रवासी जीवन और गिरते नैतिक मूल्य, प्रणु शुक्ला, 25 फरवरी–2018

Impact Factor : 7.834

ISSN : 2321-8037

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

तालिका– 2

शैक्षणिक / शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसेः प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान / अभियांत्रिकी / कृषि / चिकित्सा / पशु–चिकित्सा विज्ञान संकाय	भाषा / मानविकी / कला / सामाजिक विज्ञान / पुस्तकालय / शिक्षा / शारीरिक शिक्षा / वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विधाएं
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान– अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
HOD Hindi, Tantia University
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834

Gina Shodh SANGAM

A Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना शोध संस्थान भिवानी के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज भिवानी से छपवाकर कार्यालय 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2321:8037